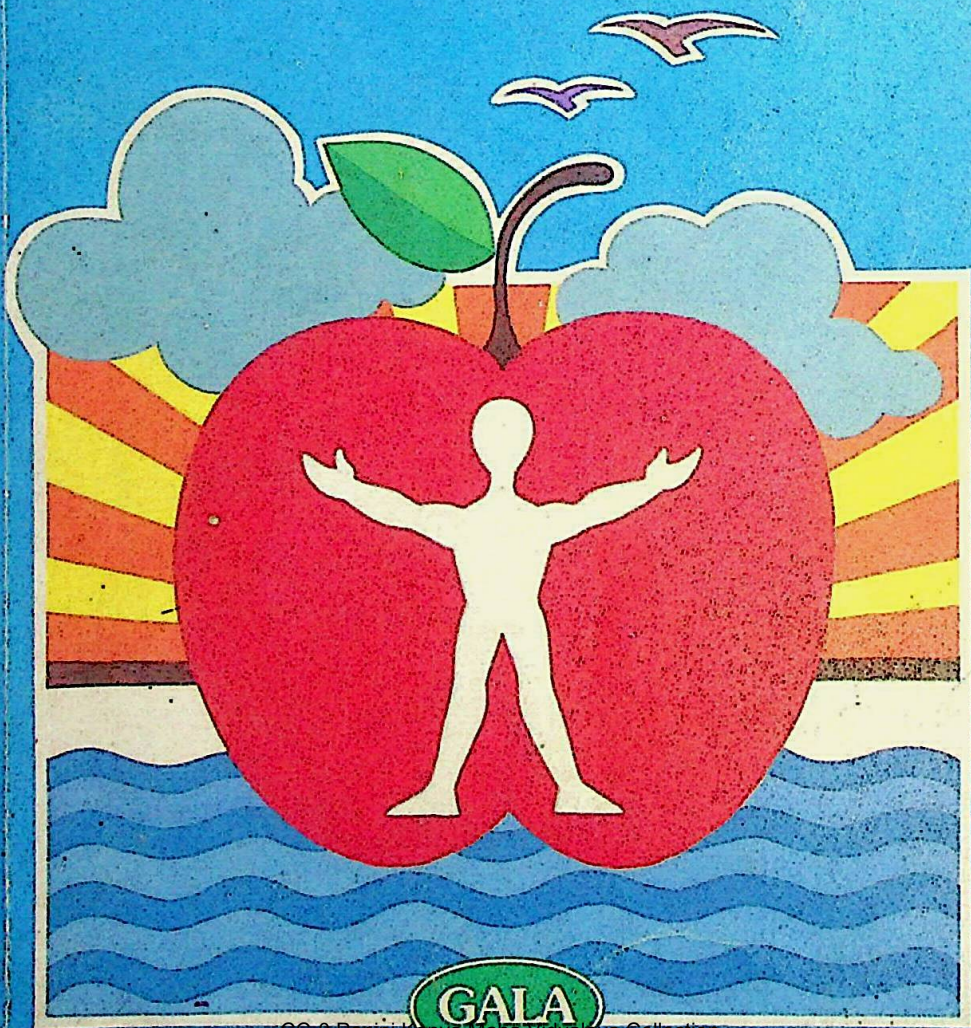


Digitized by eGangotri Foundation, Gangotri
न दवा, न इंजेक्शन; निरोगी रखिए तन-मन

9.3 स्वास्थ्य की सही दिशा प्राकृतिक चिकित्सा

डॉ. ध. रा. गाला * डॉ. धीरेन गाला * डॉ. संजय गाला



क्या आप दवाओं से लब चुके हैं?
 क्या आप दवाओं के प्रति-प्रभावों से परिचित हैं?
 क्या आपका रोग ऐसा है जो दवाओं से न मिटे?
 क्या आप जीवन से निराश हो चुके हैं?

तो प्राकृतिक चिकित्सा अपनाइए

स्वास्थ्य-रक्षा की समस्या का स्थायी और सच्चा हल अर्थात्

प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा शरीर की प्राकृतिक रोगप्रतिकारक शक्ति को सबल और सक्रिय बनाती है। परिणामस्वरूप रोग के केवल लक्षण ही नहीं, किन्तु स्वयं रोग भी जड़-मूल से नष्ट हो जाता है।

: संपर्क कीजिए :

Dr. Choukhambha Phone : 320414

चौखम्भा संस्कृत भवन

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

संस्कृत, आयुर्वेद एवं इन्डोलॉजिकल ग्रन्थों के
 प्रकाशक एवं वितरक

पोस्ट बाक्स नं० 1160, चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
 वाराणसी-VARANASI 221001 (भारत)

- अनुभवसिद्ध विशेषज्ञ परामर्श
- रोग-अनुसार आदर्श खान-पान का कोष्ठक
- रोग-अनुसार योगासन-योजना
- कटिस्नान, बाष्पस्नान, कटिस्नान
- ऎक्युप्रेशर/ऎक्युपंकचर
- इत्यादि बाह्योपचार
- लोहचुम्बक चिकित्सा

चिकित्सा-सम्बन्धी परामर्श पत्र-व्यवहार के माध्यम से भी दिया जाता है।
 विस्तृत फॉर्म के लिए रु. १००० का स्टैम्प भेजिए।

प्राकृतिक उपचार अर्थात् नेचर क्यॉर विषयक सर्वांगसंपूर्ण पुस्तक

स्वास्थ्य की सही दिशा प्राकृतिक चिकित्सा

लेखक

डॉ. धनलाल गाला

डॉ. धीरेन गाला

डॉ. संजय गाला

अनुवादक

कु. अर्चना जैन, बी.ए., बी.एड.

मूल्य : रु. २०.००



नवनीत पब्लिकेशन्स (इं) लिमिटेड

नवनीत हाउस

गुरुकुल रोड, मेमनगर,

अहमदाबाद-३८० ०५२।

फोन : ४५ ३९ ९५/४८ ३५ ३६

नवनीत भवन

भवानीशंकर रोड,

दादर, बम्बई-४०० ०२८।

फोन : ४३० ७२ ८६

धनलाल ब्रदर्स डिस्ट्रिब्यूटर्स

७०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई-४०० ००२।

फोन : २०५ ३७ १६/२०१ ७० २७

S 254

© सर्वाधिकार लेखक-सुरक्षित

लिखित अनुमति के बिना यह पुस्तक या इसका कोई भी अंश
मुद्रित या पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित न करें।

डॉ. घ. रा. गाला

२/२४ विजय चैम्बर्स, पदमजी मार्ग,

ट्रीमल्लेण्ड सिनेमा के पास, बम्बई-४०० ००४।

दूरभाष : ३८६ ७२ ७५

प्रकाशक :

एस. आर. गाला

नवनीत पब्लिकेशन्स (इं) लि.,

मेमनगर, अहमदाबाद-३८० ०५२।

टाईप-सेटिंग :

बी. ए. गाला

ममता टाईप-सेटिंग वर्क्स

गोमतीपुर, अहमदाबाद-३८० ०२१।

मुद्रक :

एच. आर. गाला

नवनीत प्रेस लि.,

गोमतीपुर, अहमदाबाद-३८० ०२१।

[25-9-94 (3) : 3]

प्रस्तावना

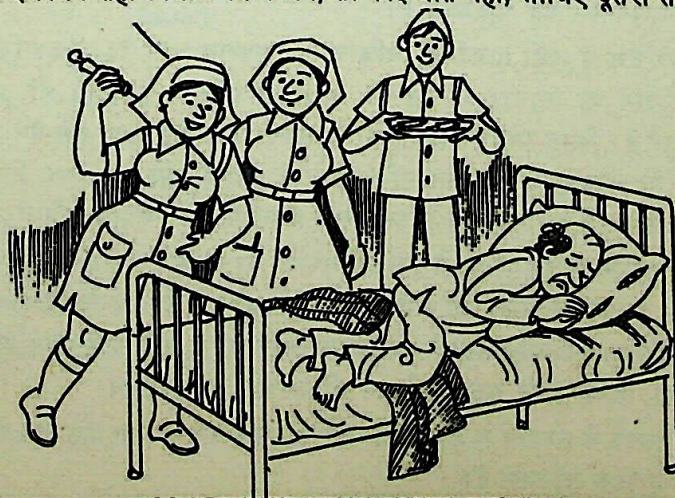
ऐसा मालूम होता है कि परंपरागत औषधि-विज्ञान के प्रति लोगों की श्रद्धा क्रमशः कम होती जा रही है। आज ज्यादातर लोग दवाओं को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे हैं और फलस्वरूप प्राकृतिक चिकित्सा की ओर मुड़ने लगे हैं।

सन् १९७० में ब्रिटन में किये गए एक व्यापक सर्वेक्षण से ऐसा ज्ञात हुआ था कि लगभग ९० प्रतिशत लोगों को अपने फॅमिली डॉक्टर के प्रति अटल श्रद्धा थी; किन्तु केवल दस वर्षों में ही परिस्थिति काफी बदल गई। सन् १९८० में किये गए एक अन्य सर्वेक्षण से यह तथ्य प्रकाश में आया कि अपने फॅमिली डॉक्टर के इलाज में पूर्ण श्रद्धा रखनेवाले लोगों की संख्या ४० प्रतिशत भी नहीं रह गई थी। यह परिवर्तन बड़ा ही सूचक है।

लगभग बीस वर्ष पहले ऐसा लगता था कि दवाओं की सहायता से रोगों के खिलाफ चलनेवाले युद्ध में देर-सबेर हमें विजय मिल सकेगी। निदान और उपचार के नित नए साधन आविष्कृत होते जा रहे थे और संक्रामक रोग भी एक के बाद एक नियंत्रित होते जा रहे थे। इसके बावजूद आरोग्य का दृश्य आज विशेष आशाप्रेरक नहीं है। लोग दवाओं के प्रति प्रभावों से धीरे-धीरे परिचित होने लगे हैं। यदि दवाएँ सचमुच प्रभावकारी हों तो प्रति-प्रभावों का जोखिम भी उठाया जा सकता है; किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। अमेरिका की सरकार अपने नागरिकों के आरोग्य की देख-भाल के लिए अन्य किसी भी देश की सरकार की अपेक्षा कई गुना अधिक खर्च करती है। फिर भी अमेरिका में रोगों की मात्रा तेजी के साथ बढ़ती रही है। आज युवावस्था में ही मौत के मुँह में जानेवाले अमेरिकावासियों की संख्या पहले की अपेक्षा अधिक है।

इस तथ्य को आज नकारा नहीं जा सकता कि दवाओं के द्वारा रोगों को पराजित करना असंभव है। वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि लोगों को इसकी प्रेरणा दी जाए कि वे अपने आरोग्य के विषय में सक्रिय रुचि लें। उन नियमों की शिक्षा भी आवश्यक है जिनका पालन करने से वे बीमार न हों। प्राकृतिक चिकित्सा का यही उद्देश्य है। प्राकृतिक

यदि एक इंजेक्शन सही निशान पर न लगे, तो कोई बात नहीं, लीजिए दूसरा तैयार है।



चिकित्सा में यह कहावत नहीं चलती 'लगा तो तीर नहीं तो तुक्का'। एक दवा कारगर न हो तो दूसरी दवा, दूसरी कारगर न हो तो तीसरी दवा' यह बात यहाँ नहीं है।

रोग-निवारण के लिए प्राकृतिक चिकित्सा का दृष्टिकोण ही भिन्न है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत रोग की परिभाषा इस प्रकार है—'स्वस्थता का अभाव ही रोग है।' अतः प्राकृतिक चिकित्सा रोग को भगाने का प्रयत्न नहीं करती, वरन् स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। प्राकृतिक चिकित्सा रोग पर सीधा आक्रमण नहीं करती। वह तो शरीर की प्राकृतिक रोगनिवारक शक्ति को प्रबल बनाने का प्रयास करती है। संक्षेप में, रोगनिवारण का कार्य शरीर करता है, चिकित्सक नहीं।

यह सच है कि आज अधिकाधिक लोग प्राकृतिक चिकित्सा की ओर उन्मुख हो रहे हैं, किन्तु अनेक लोग प्राकृतिक चिकित्सा को अन्य उपचार-पद्धतियों की दृष्टि से देखते हैं। वे प्राकृतिक चिकित्सा का मूल्यांकन अन्य पद्धतियों के मानदण्ड से करते हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए केवल एक उदाहरण पर्याप्त है। यदि कोई व्यक्ति अपनी किसी जीर्ण और पुरानी बीमारी के उपचार के लिए किसी प्राकृतिक चिकित्सक के पास पहुँचता है और यदि उससे कहा जाता है कि तुम्हें दो-चार दिनों के उपवास करने पड़ेंगे तथा इसके बाद कुछ दिनों तक प्रतिदिन केवल दो बार सादे या अपक्व आहार का सेवन करना होगा तो वह व्यक्ति कह उठता है : 'अरे, मेरे फॅमिली डॉक्टर तो मुझसे हमेशा यही कहते रहे हैं कि दिन में चार बार अत्यन्त पौष्टिक और प्रोटीनयुक्त आहार का सेवन करना चाहिए, अन्यथा अपोषण और अशक्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और शरीर क्षीण होने लगता है।' ऐसे समय उस व्यक्ति को यह बात समझाने में कठिनाई होती है कि शरीर की शक्ति (या वजन) बनाए रखने और रोग को शरीर से बाहर निकालने के ये दोनों कार्य एक साथ नहीं हो सकते। अब यदि रोगी अपने पुराने डॉक्टर का कथन बार-बार याद करके बेमन से उपवास करता है या अल्पाहार अपनाता है तो उसके शंकाशील मन का प्रतिघोष उसके शरीर पर पड़ता है, उसे सचमुच कमजोरी महसूस होती है और रोगनिवारण की गति मन्द पड़ जाती है। इस चर्चा का सारांश केवल इतना ही है कि प्रत्येक चिकित्सा-पद्धति के विशिष्ट नियम होते हैं। रोगी जिस चिकित्सा-पद्धति को अपनाता है उसके नियमों का श्रद्धापूर्वक पालन करे यह आवश्यक है।

हमारे देश में अभी प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचलन अल्प है। चमत्कारिक दवाओं और रोगनिदान या उपचार के बड़े-बड़े आधुनिक साधनों से लोगों की आँखें अभी चौधियाई हुई हैं; किन्तु जैसे-जैसे शिक्षा और समझदारी में वृद्धि होगी वैसे-वैसे दवाओं की निरर्थकता एवं भयंकरता से लोग परिचित होते जाएँगे और प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी बढ़ते जाएँगे यह निर्विवाद है। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा का भविष्य उज्ज्वल है।

यदि पाठक प्रस्तुत पुस्तक में निर्दिष्ट उपायों को समझकर उन्हें आचरण में लाएँगे तो वे रोगों के भय से मुक्त रह सकेंगे और पूर्ण स्वास्थ्य का उपभोग कर सकेंगे इसमें लेशमात्र भी शंका को स्थान नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा के ज्ञान से सम्पन्न होकर वे, न केवल अपना, किन्तु अपने कुटुंबीजनों का भी उपचार कर सकेंगे।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपने मत और सुझाव भेजने के लिए पाठकों एवं विशेषज्ञों को हमारा हार्दिक आमंत्रण है।

अनुक्रमणिका

विभाग १ : प्राथमिक जानकारी

१. प्राकृतिक चिकित्सा या प्राकृतिक जीवन?	...	६
२. प्राकृतिक चिकित्सा किस लिए?	...	८
३. क्या बीमारी अनिवार्य है?	...	१६
४. प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास	...	२२
५. प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांत	...	२७

विभाग २ : प्राकृतिक चिकित्सा के शास्त्र

६. आहार	...	३४	१२. सूर्यस्नान	...	९२
७. रसाहार	...	५४	१३. वायुस्नान	...	९५
८. उपवास	...	५६	१४. मालिश	...	९७
९. व्यायाम	...	५८	१५. लोहचुम्बक-चिकित्सा	...	९९
१०. जलोपचार	...	७६	१६. ऍक्युप्रेशर	...	१०४
११. मिट्टी	...	८९			

विभाग ३ : प्राकृतिक चिकित्सा—व्यवहार में

१७. विविध रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा (वर्णानुक्रम से)	...	१०७
१८. कुछ सफल उदाहरण	...	१३३
१. सर्दी	...	१३३
२. पुरानी खाज	...	१३४
३. अत्यार्तव (अतिशय मासिक स्राव)	...	१३५
४. उच्च रक्तचाप और छाती का दर्द	...	१३६
५. पुरानी कब्जियत	...	१३७
६. सिरदर्द	...	१३८
७. स्थूलता	...	१३९
८. ऍसिडिटी	...	१४१
९. ऍपेण्डिक्स की सूजन	...	१४१
१०. मलेरिया	...	१४२
११. ज्वर	...	१४४
१२. कैंसर	...	१४५

विभाग १ : प्राथमिक जानकारी



१. प्राकृतिक चिकित्सा या प्राकृतिक जीवन ?

प्राकृतिक जीवन (निसर्गोपासना) और प्राकृतिक चिकित्सा (निसर्गोपचार)—इन दोनों को कई लोग एक ही समझ बैठते हैं, किन्तु वास्तव में ये दोनों भिन्न हैं। दोनों के बीच के स्थूल एवं सूक्ष्म भेदों को समझना आवश्यक है।

जर्मनी के डॉ. एंडॉल्फ जस्ट और उनके अनुयायियों को हम निसर्गोपासना के प्रणेता के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। डॉ. जस्ट की पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' प्राकृतिक जीवन के समर्थकों की भगवद्गीता है। उनकी विचारधारा निम्नलिखित है :

"सृष्टि के समस्त प्राणियों का निरीक्षण कीजिए, उनके नित्यक्रम का परीक्षण कीजिए; उनकी जीवन-चर्या का अध्ययन कीजिए। सभी प्राणियों की जीवन-चर्या में एक बात समान रूप से दिखाई पड़ती है : वे प्रकृति का अनुसरण करते हैं और स्वास्थ्य का उपभोग करते हैं। प्रकृति का अनुसरण करने से प्रकृति ने उन्हें उदारतापूर्वक स्वास्थ्य प्रदान किया है। प्रकृति के इस बहुमूल्य उपहार का लाभ यदि किसी ने नहीं उठाया तो वह एकमात्र मानव है—विश्व की निखिल प्राणीसृष्टि का शिरोमणि ! इसका कारण यह नहीं है कि मनुष्य प्रकृति की अप्रिय सन्तान है। मानव तो ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ सृजन है। अतः उसके पास तो सम्पूर्ण, सहज आरोग्य होना चाहिए। फिर भी वास्तविकता यह है कि मानव अगणित रोगों से पीड़ित है। बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस परिस्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। अन्य प्राणी प्रकृति का अनुसरण करते हैं; जबकि मनुष्य उसे प्राप्त बुद्धि का दुरुपयोग करके प्रकृति के नियमों का निरन्तर उल्लंघन करता रहता है और रोगरूपी विपत्ति को अपना लेता है।"

वे प्राकृतिक जीवन के समर्थक मानव को प्रकृतिमय जीवन व्यतीत करने का अनुरोध करते हैं। उनके मतानुसार सभी अनिष्टों का मूल एकमात्र आधुनिक संस्कृति ही है। इस समस्या के निवारण का एकमात्र उपाय है—प्रकृति की ओर पुनः प्रस्थान। निसर्गोपासक हमें यह सलाह देते हैं—अग्नि से लेकर दूरदर्शन-रेडियो तक 'संस्कृति-निर्मित' सभी आविष्कारों का त्याग कीजिए, फलाहार कीजिए, खुले में रहिए, सरल जीवन जिएं।

यूरोप में इस विचारधारा का बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार हुआ। जर्मनी में तो प्राकृतिक जीवन के उपासकों ने बड़े-बड़े स्वास्थ्य-गृह अथवा आश्रम स्थापित किये। इन आश्रमों में हर अवस्था के स्त्री-पुरुष स्वावलम्बी जीवन जीते, फलाहार करते, भूमि पर सोते, पंचमहाभूतों के सम्पर्क में रहते और सम्पूर्ण नगनावस्था में विचरण करते। इस पंथ ने जर्मनी में अतिशय लोकप्रियता प्राप्त की। ई. स. १९३८ में जब हिटलर ने इन लोगों

को वस्त्र पहनने के लिए बाध्य किया, तब दुनिया को मालूम हुआ कि एकमात्र जर्मनी में ही दस लाख निर्वस्त्र निसर्गवादी थे !

अब हम प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थकों की विचारधारा देखेंगे ।

प्राकृतिक जीवन के अनुयायी प्रकृति की ओर लौटने में विश्वास करते हैं जबकि प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी प्रकृति से आगे बढ़ने में विश्वास करते हैं । प्राकृतिक जीवन के उपासक केवल प्रकृति को पूजा करके ही रुक जाते हैं; जबकि प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थक प्रकृति और संस्कृति, कुदरत और कला, भूत और भविष्य आदि परस्पर विरोधी किन्तु एक-दूसरे के पूरक तत्त्वों का समन्वय करने का प्रयास करते हैं । अद्यावधि संस्कृति की जो प्रगति हुई उसे वे निरुपयोगी नहीं मानते; फिर भी संस्कृति के विघातक, दूषित, विनाशक तत्त्वों के त्याग की सलाह देते हैं ।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमी प्रकृति के महत्त्व को स्वीकार करते हैं; किन्तु वे प्रकृति के रोगनिवारक प्रयत्नों का समर्थन करने के लिए तथा आरोग्यस्वास्थ्य-सुधार को गतिमान बनाने के लिए जलोपचार, उपवास, मिट्टी के प्रयोग, उचित खान-पान एवं लोह चुम्बकचिकित्सा, ऐक्युप्रेषर आदि बाह्योपचार अपनाने में नहीं हिचकते ।

प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञ रोगनिदान को अनावश्यक नहीं मानते । उपचार का आरंभ करने से पूर्व वे रोग का प्रकार, उसके कारण तथा अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए आवश्यक कसौटियाँ और परीक्षण करते हैं । इस तरह उपचार तर्कसंगत बनता है । उपचार के दौरान थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर पर वे सुधार और प्रगति का सर्वेक्षण करते हैं । निसर्गोपचार की पद्धति से सामान्य रोगों का उपचार सरल होता है; परन्तु यदि रोग जटिल हो तो उपचार में भी विविधता आवश्यक हो सकती है । किसी उदाहरण में यदि प्राकृतिक उपचार की सीमा दिखाई दे तो वे रोगी को अन्य चिकित्सा अपनाने की सलाह देने में भी नहीं हिचकिचाते ।

इस प्रकरण का निष्कर्ष यह है कि सम्पूर्ण प्राकृतिक जीवन एक आदर्श होने के बावजूद वर्तमान युग के लिए वह व्यावहारिक नहीं है । आज का उद्योग-प्रधान समाज परंपरागत जीवन-पद्धति को स्वीकार करे, यह आशा रखना अनुचित है । पूर्ण प्राकृतिक जीवन न अपनाने से लोगों को छोटी-बड़ी बीमारियाँ होंगी ही । ऐसे समय में खान-पान में परिवर्तन, व्यायाम, मिट्टी, पानी आदि प्राकृतिक चिकित्सा के विविध प्रयोग अपनाने से उन्हें अपना स्वास्थ्य पुनः प्राप्त हो जाएगा । यह चिकित्सा-पद्धति अन्य चिकित्सा-पद्धतियों की अपेक्षा अधिक सरल, अचूक एवं निर्दोष है ।

इस पद्धति को भली-भाँति समझकर अपनाते से व्यक्ति स्वयं ही अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा कर सकता है । इस उपचार-पद्धति से सामान्य रोगों का उपचार भी व्यक्ति स्वयं ही कर सकता है । यदि हम अपने स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहेंगे तो आरोग्य की नाड़ी अपने हाथों में रख सकेंगे; और तब छोटी-बड़ी तकलीफों के लिए दौड़कर डॉक्टरों के पास जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी ।

२. प्राकृतिक चिकित्सा किस लिए ?

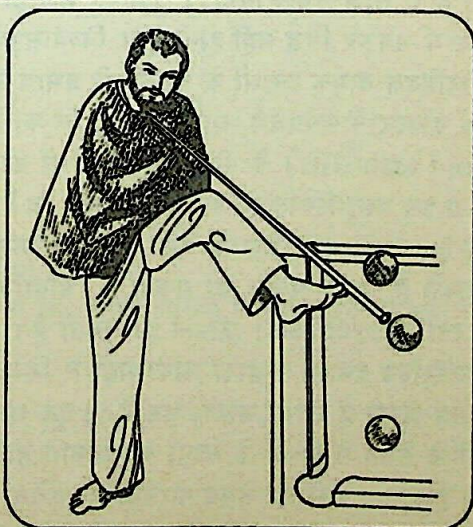
क्या प्राकृतिक चिकित्सा अन्य उपचार-पद्धतियों से श्रेष्ठ है ? क्या वह अन्य पद्धतियों से अधिक निरापद है ? इस प्रकार के प्रश्न किसी भी व्यक्ति के मन में उत्पन्न हो सकते हैं । आइए, हम यहाँ इसकी ब्यौरे वार चर्चा करेंगे ।

सबसे पहले तो हम अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के बारे में सोचें । अधिकांश चिकित्सा-पद्धतियों में रोग-निवारण के लिए दवाओं का उपयोग किया जाता है । दवाओं पर एकांत श्रद्धा रखनेवाले ऐसा समझते हैं कि दवाएँ शरीर पर असर करती हैं । किन्तु यह मान्यता भ्रांतिपूर्ण है । वास्तविकता तो कुछ और ही है । वास्तव में दवाएँ शरीर पर नहीं परंतु शरीर दवाओं पर कार्य करता है । यह विधान विचित्र अवश्य है किन्तु बिल्कुल सत्य है । हमारे शरीर में स्वास्थ्य की रक्षा करनेवाली एक शक्ति काम कर रही है । उसका नाम है 'प्राकृतिक रोगनिवारक-शक्ति' या 'जीवन-शक्ति' । यह शक्ति हमें निरोगी बनाए रखने के लिए चौबीसों घंटे निरंतर कार्य करती रहती है । शरीर को हानि पहुँचाने-वाला या आरोग्य का ह्रास करनेवाला कोई भी पदार्थ शरीर में प्रवेश करे तो यह जीवन-शक्ति उसे बाहर निकाल फेंकने के लिए कटिबद्ध बनती है । उदाहरण के लिए, यदि आँख में कोई रजकण चला जाए तो तुरंत ही आँखों से पानी टपकने लगता है । इन आँसुओं का एक ही आशय है : आँख में गए हुए रजकण को धो डालें । बाजार में आँखों की गर्मी को दूर करनेवाले अनेक प्रकार के सुरमे मिलते हैं । सुरमा आँजते ही आँखों में से पानी बहने लगता है । सुरमा खरीदनेवाले को यह संतोष होता है कि आँखों की गर्मी निकल गई । वास्तव में न तो गर्मी निकलती है और न ही ठंडक उत्पन्न होती है, किन्तु सुरमे का जहर कोमल आँखों को हानि न पहुँचाए इसलिए प्रकृति उसे आँसुओं के द्वारा बाहर निकाल देने का प्रयत्न करती है । इस प्रकार सुरमा आँखों पर नहीं, आँखें सुरमे पर असर करती हैं । जमालगोटे से लेकर मिल्क ऑफ मॅग्नेशिया तक की कब्ज-निवारण के लिए ली जानेवाली जुलाब की असंख्य दवाओं की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है । ये दवाएँ शरीर को नुकसान न करें इसलिए जीवन-शक्ति उसे यथासंभव जल्दी ही शरीर से बाहर फेंक देने का प्रयत्न करती है । जुलाब की गोलियाँ लेने के बाद शरीर में से मल के अलावा बहुत-सा पानी भी बाहर निकल जाता है । यह पानी कहाँ से आया ? यह खून में से ही खिचकर आता है । जिस प्रकार आँखों में से पानी रिसता है उसी प्रकार बड़ी आँत की आंतरत्वचा में से भी पानी रिसता है । शरीर के इस बहुमूल्य जीवनरस (serum) को यदि हम इसी प्रकार बार-बार नष्ट करते रहें तो उसका रिसना धीमे-धीमे कम हो जाता है ।

जुलाब की दवा का नियमित सेवन करनेवाला व्यक्ति यह अनुभव करता है कि ये दवाएँ अपेक्षित प्रभाव नहीं करतीं । अपेक्षित प्रभाव के लिए इन दवाओं की मात्रा में वृद्धि करनी पड़ती है । अंत में एक समय ऐसा आता है कि दवा चाहे जितनी मात्रा में ली

जाए लेकिन अपेक्षित प्रभाव नहीं होता। आँतों भी दवाओं का साथ नहीं देती। तब हम यही कहते हैं कि — 'दवा बेअसर हुई।' इस चर्चा का सार यही है कि यदि दवाएँ शरीर पर असर करती हों तो जिस दवा की अमुक मात्रा से प्रारंभ में सरलता से दस्त लगता था, उसी दवा की अनेकगुनी अधिक मात्रा कुछ समय पश्चात् क्यों कार्यसाधक सिद्ध नहीं होती? जीवनभर जुलाब की दवाएँ खानेवाले व्यक्तियों की आँतों ऑपरेशन के समय या मरणोत्तर परीक्षण में सींग के समान कठोर मालूम हुई हैं। जीभ जैसी मुलायम आँतों के सींग जैसा कठोर होने तक की अवधि के दौरान उन पर क्या-क्या बीती होगी इसकी कल्पना कीजिए।

ऐलोपथी की दवाएँ कई बार प्रति-प्रभाव उत्पन्न करती हैं। डॉ. जेम्स का मत है कि आज जिसका हम अधिक उपयोग करते हैं वह 'ऐस्पिरिन' भी निरापद नहीं है। अमेरिकास्थित युनिवर्सिटी ऑफ़ पेंसिलवेनिया ग्रेज्युएट स्कूल ऑफ़ मॅडिसिन के प्रोफेसर डॉ. रोथ ने पाचनतंत्र पर विविध दवाओं का प्रभाव मालूम करने के लिए इतना अधिक



चित्र २.१ : बॅलिडोमाइड दवा का दारुण प्रभाव

अनुसंधान किया है कि तद्विषयक उनका मत विश्वभर में प्रमाणभूत माना जाता है। डॉ. रोथ चेतावनी देते हुए कहते हैं — 'एँस्पिरिन का उपयोग करनेवाले ६० से ७० प्रतिशत लोग आंतरिक रक्तस्राव और पांडुरोग से पीड़ित होने लगते हैं।' एक समय था जब पेनिसिलीन चमत्कारिक मानी जाती थी किंतु आज उसके प्रतिप्रभाव से हम सब परिचित हैं। एक समय थॅलिडोमाइड की गणना निर्दोष निद्राकारक दवा के रूप में की जाती थी। किंतु उस दवा का सेवन करनेवाली सगर्भा स्त्रियाँ जब हाथ-पैरों की खामीवाले बच्चों को जन्म देने लगीं तो उसके उपयोग पर प्रतिबंध लगाना पड़ा।

क्या सिर्फ एँस्पिरिन, पेनिसिलीन एवं थॅलिडोमाइड ही प्रतिप्रभाव उत्पन्न करती हैं? क्या अन्य दवाएँ निरापद हैं? इसका उत्तर 'हाँ' में देना संभव नहीं। अमेरिकन मॅडिकल एसोसिएशन ने प्रतिप्रभाव उत्पन्न करनेवाली ७२ दवाओं की एक सूची प्रकाशित की है। इस सूची में सल्फा दवाएँ, एँण्टिबायोटिक दवाएँ, डायाबिटीस की दवाएँ, नशीली दवाएँ, नींद लानेवाली दवाएँ, जोंडों के रोग की दवाएँ, पीड़ाशामक दवाएँ, मूत्रपिंडों को उत्तेजित करनेवाली दवाएँ, फीट (मिरंगी) के आक्रमण की रोकथाम करनेवाली दवाएँ, थाइराइड की दवाएँ, रक्त को जमने से रोकनेवाली दवाएँ (anti-coagulants) इत्यादि का समावेश किया गया है।

सुप्रसिद्ध पत्रकार सिडनी केट्ज ने अनेक डॉक्टरों, फार्मैकोलॉजिस्टों, हॉस्पिटल के क्लिनिशियनों एवं अनुसंधानकर्ताओं से पूछताछ कर एक लेख तैयार किया था जो मॅक्लीन नामक सामयिक में प्रकाशित हुआ है। वे लिखते हैं, "आज उपयोग में ली जानेवाली दवाओं में से ९० प्रतिशत दवाओं का बीस-पच्चीस साल पहले अस्तित्व नहीं था। लगभग सभी एँण्टिबायोटिक दवाएँ, एँण्टिहिस्टामाइन दवाएँ और निद्राकारी दवाएँ नई मानी जा सकती हैं। आज उनके निरापद होने के भले ही अनेक दावे किये जाते हों फिर भी वे भविष्य में भयंकर सिद्ध नहीं होंगी ऐसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। सन् १९४८ में स्टीराइड्स नामक दवाओं के चमत्कारी प्रभाव प्रकाश में आए। विख्यात मेयो क्लिनिक के एक डॉक्टर ने सर्वप्रथम यह खोज की कि कॉर्टिजोन नामक दवा सन्धिवात (rheumatoid arthritis) के पीड़ाकारक लक्षणों को फौरन दूर करती है; किन्तु थोड़े ही समय में इस वस्तु-स्थिति का ख्याल आ गया कि ये दवाएँ भयंकर प्रतिप्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं। यदि इन दवाओं का अँघाघुंध उपयोग किया जाए तो आँतों के उपदंश फैल सकते हैं; क्षय पलटा खा सकता है, डायाबिटीस लागू हो सकता है या मानसिक अस्थिरता (psychosis) उत्पन्न हो सकती है। संधिवात से पीड़ित बच्चों का उपचार यदि स्टीराइड दवाओं के द्वारा लापरवाही से किया जाए तो अन्त में उनकी हड्डियाँ इतनी नरम-पड़ जाती हैं कि वे चलने भर से ही टूट जाती हैं। यौन हॉर्मोन्स जैसी स्टीराइड दवाओं के सेवन से पुरुषों के स्तनों का विकास हो सकता है या स्त्रियों को दाढ़ी भी उग सकती है। इस दवा का सेवन करनेवाली अनेक सगर्भा महिलाओं ने पुरुषों के जननांग धारण करनेवाली बालिकाओं को जन्म दिया है।"

रोगियों को रातों रात स्वस्थ करने के अत्युत्साह में उन्हें अँधाधुंध स्टीरॉइड्स या अन्य शक्तिशाली दवाएँ देनेवाले डॉक्टरों को चेतावनी देते हुए सिडनी केट्ज लिखते हैं : “उपचार करते समय संयम रखने और युद्धस्तर पर कदम उठाने की आवश्यकता है। यदि आज हम जाग्रत नहीं होंगे तो कल संसार में त्रुटिपूर्ण हृदयवाले, यकृत और मूत्रपिण्डों की क्षतिवाले, क्षतियुक्त दृष्टिशक्ति-श्रवणशक्ति-कामशक्तिवाले लोगों तथा विकृत अंगोंवाले बालकों की एक जमात खड़ी हो जाएगी।”

अमेरिका के बॉस्टन शहर के त्रिधाम हॉस्पिटल में औषधिशास्त्र-विभाग के अध्यक्ष डॉ. डेल फ्रेण्ड स्पष्ट शब्दों में कहते हैं, “किसी भी दवा को निरापद नहीं माना जा सकता।”

औषधिशास्त्र की दूसरी क्षति यह है कि वह रोग के प्रत्येक लक्षण का स्वतंत्र उपचार करने का अभिगम रखता है। न्यूयॉर्क नगरस्थित न्यूयॉर्क मॅडिकल कॉलेज के डॉ. विलियम गटमैन कहते हैं कि, “यह पद्धति प्रत्येक लक्षण के अलग-अलग उपाय का उपक्रम करती है। जैसे, पीड़ा के लिए पीड़ाशामक दवा, ज्वर में तापमान कम करनेवाली दवा, कब्ज में रेच लानेवाली दवा दी जाती है इत्यादि।”



पत्नी : (डॉक्टर से मिलकर लौटनेवाले बीमार पति के प्रति) :

क्या आपको इतनी सारी गोलियाँ लेनी हैं?

पति : बेशक, ये पीली गोलियाँ लिबर के लिए, ये हरी गोलियाँ पेट के लिए और ये सफेद गोलियाँ किडनियों के लिए हैं।

पत्नी : और ये लाल गोलियाँ?

पति : इनके बारे में तो डॉक्टर ने कुछ भी नहीं कहा; किन्तु ये गोलियाँ शायद अन्य गोलियों के 'ट्राफिक' को नियंत्रित करने के लिए होंगी।

आगे चलकर डॉ. गटमैन बताते हैं कि, "इसका अर्थ यह हुआ कि इस पद्धति का उपचार रोग और रोगी को समग्रतः नहीं देखता। जीवन-शक्ति के सचेतन होने तक अल्पकालीन आराम देने के लिए दवाएँ उपयोगी हो सकती हैं, किन्तु इससे अधिक उनका कोई उपयोग नहीं है। वास्तव में यदि जीवन-शक्ति प्रबल नहीं बनती तो किसी भी दवा से लाभ नहीं हो सकता।"

केवल लक्षणों में राहत देने के प्रयत्न में मूल रोग का विस्मरण हो जाता है। यह सच है कि प्रारम्भ में इन प्रयत्नों से रोग दब जाता है; किन्तु बाद में इनसे नई-नई मुश्किलें पैदा हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि एक-एक लक्षण के स्वतन्त्र उपचार के लिए दवा की भारी मात्रा आवश्यक बन जाती है। यह एक बड़ा गैरफायदा है। दवाएँ बन्द करने के बाद जब रोग और भी उग्र स्वरूप में पलटा खाता है तब अधिक शक्तिशाली या नई दवा का उपयोग करना पड़ता है। प्रत्येक रेचक दवा आँतों को अधिक निर्बल बनाती है; अम्लता (एँसिडिटी) कम करनेवाली दवा एक बार आराम देती है; किन्तु बाद में अम्लता और भी अधिक जोर पकड़ती है। इस प्रकार क्रमशः दवा के बड़े और अधिक बड़े डोज अथवा कभी नई शक्तिशाली दवा की आवश्यकता खड़ी होती है।

अमेरिका के डॉ. एल्टन गोल्डब्लूम कहते हैं : "लोगों को दवा देने के स्थान पर उनसे दवाएँ छीन लेने पर रोग-निवारण में मुझे अधिक सफलता मिली है।"

ऐसा दावा किया जाता है कि होमियोपथी या आयुर्वेद की दवाएँ प्रतिप्रभाव उत्पन्न नहीं करतीं। कदाचित् यह बात अंशतः सत्य हो सकती है। किन्तु एक दवा के स्थान पर दूसरी अथवा आवश्यकता से अधिक मात्रा में दवा दिये जाने पर हानि हो सकती है इस वास्तविकता का विरोध कोई डॉक्टर या वैद्य नहीं कर सकता। एक के स्थान पर दूसरी दवा दिये जाने या दवा की मात्रा में भूल हो जाने की घटनाएँ हमारी धारणा से अधिक संख्या में घटित होती हैं। तदुपरान्त दवाओं में होनेवाली मिलावट का प्रश्न भी विकट है। वर्म्बर्ड के सरकार-संचालित सुप्रसिद्ध जे. जे. हॉस्पिटल में मिलावटवाली दवाएँ दिये जाने के कारण अनेक लोगों की मृत्यु होने की घटना अभी-अभी घटित हुई है। तो फिर जिस पद्धति के द्वारा दवाओं के उपयोग के बिना ही रोग-निवारण होता हो तो यह उपचार-पद्धति अधिक तर्कसंगत है या नहीं ?

इस सम्बन्ध में दो मुद्दे गंभीरतापूर्वक विचारणीय हैं। आयुर्वेद को अपवाद रूप में छोड़ दिया जाए तो तर्कसंगत (rational) औषधशास्त्र का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। उसमें भी एँलोपथी की अमोघ मानी जानेवाली दवाएँ तो पिछले कुछ ही वर्षों के दौरान अस्तित्व में आई हैं। तो क्या प्राचीन काल में रोग दूर होते ही नहीं थे ? क्या हर छोटी-बड़ी बीमारी रोगी को मौत के द्वार पर ही घसीट ले जाती थी ? इसका उत्तर यह है कि रोग-निवारण तो आदि काल से होता ही रहा है। समाज में अपना उच्च स्थान बनाए रखने में डॉक्टरों को कभी कठिनाई नहीं हुई।

रोग-निवारण के लिए समय-समय पर रोगियों को पशु-प्राणियों का मल, मुर्दों का चूर्ण, लकड़ी का बुरादा, छिपकली की लार और खून, सुखाए हुए साँपों का चूर्ण, मेढकों

का वीर्य, केकड़े की आँखें, घास की जड़ें, पशुओं के सींग, प्राणियों की चरबी आदि पदार्थ दवाओं के रूप में दिये जाने का उल्लेख पुस्तकों में उपलब्ध होता है। आज हम जिसे नीम हकीमी मानते हैं, उन दवाओं के सेवन से यदि प्राचीन काल में रोग-निवारण होता था तो उस प्रक्रिया के लिए केवल एक ही कारण दिया जा सकता है : रोग-निवारण दवाओं के कारण नहीं वरन् दवाओं के सेवन के बावजूद जीवन-शक्ति की पुनर्वृद्धि के कारण ही हुआ।

इसके अतिरिक्त दूसरी विचारणीय बात यह है कि जिनके बीच स्नानसूतक का भी सम्बन्ध नहीं है ऐसी भिन्न-भिन्न औषधियों द्वारा कोई एक रोग कैसे दूर होता है ? किसी एक रोग के लिए दी जानेवाली ऍलोपथिक, होमियोपथिक, आयुर्वेदिक या यूनानी दवा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं; अर्थात् उन दवाओं में कोई साम्य नहीं होता फिर भी रोग के लक्षण दूर हो जाते हैं। इसके लिए केवल एक ही तर्कसंगत कारण दिया जा सकता है : रोग को दवाओं ने नहीं, वरन् जीवन-शक्ति ने दूर किया।

दवाओं के विरुद्ध अन्तिम आपत्ति यह है कि वे अत्यन्त महँगी होती हैं। ऐसे कई परिवार हमें दिखाई पड़ते हैं जो दवाओं के पीछे बेशुमार और बूते के बाहर खर्च करके बरबाद हो चुके हों। भारत जैसे गरीब देश के लिए औषधियों के पीछे इस कदर लाखों का व्यय असह्य है।



डॉक्टर ने मुझे विश्वास दिलाया था कि दो महीनों के भीतर ही वे मुझे चलता-फिरता कर देंगे और उन्होंने अपना वचन निभाया; उनका बिल चुकाने के लिए मुझे अपनी गाड़ी बेच देनी पड़ी!

पाठक के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि अधिकांश दवाएँ निरर्थक हैं तो आज यह दवावाद इतना अधिक पुष्पित-पल्लवित क्यों हुआ है ? इस प्रश्न का समाधान सरल है । दवाओं के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए उपयोग के लिए कुछ हद तक रोगी स्वयं ही जिम्मेदार हैं । आज हम 'शीघ्र' (instant) संस्कृति में जी रहे हैं । हम आजकल शीघ्र सेवा, शीघ्र आहार और शीघ्र परिणामों की अपेक्षा रखने लगे हैं । हम इस बात की अवगणना करते हैं कि रोग वस्तुतः अत्यंत दीर्घकालीन अयोम्य आहार-विहार का परिणाम है । अतः रोग का निवारण करने में भी अमुक समय तो लगेगा ही । औसत मनुष्य अपनी जीवन-पद्धति में उचित परिवर्तन करके स्वास्थ्य प्राप्त करने या उसकी रक्षा करने के लिए तैयार ही नहीं है । वह तो स्वास्थ्य के प्रत्येक नियम का निरन्तर उल्लंघन करते हुए बीमारी को आमंत्रण देता है । बीमारी लागू होने पर दवाओं के द्वारा उसे दबा देने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर देता है । अधिकांश डॉक्टर इस बात की गवाही देंगे कि लोगों में स्वास्थ्य पाने की सच्ची अभिलाषा ही नहीं है । बीमारी में वे कामचलाऊ पेबन्दनुमा इलाज चाहते हैं ताकि पीड़ादायक लक्षण दब जाएँ, आराम मिलते ही वे पुनः स्वेच्छाचार अपनाने के लिए तत्पर हो जाते हैं ।

ऊपर इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि कोई रोग रातोंरात उत्पन्न नहीं हो जाता । आज दिखाई पड़नेवाले रोग की जड़ें एक लम्बे समय के पूर्व जमी हुई होती हैं । अतः रोग-निवारण के लिए भी कुछ समय लगना स्वाभाविक है । फिर भी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग को दूर करने में लोगों की धारणा की अपेक्षा बहुत कम समय लगता है । जुकाम, खाँसी, फ्लू, ज्वर, फोड़े-फुंसी जैसी छोटी-छोटी बीमारियाँ तो एक-दो दिनों के उपवास से ही दूर हो जाती हैं । जटिल बीमारियाँ भी आयोजनपूर्वक किये गए उपवास, आहार सम्बन्धी परिवर्तन, व्यायाम, जलोपचार या अन्य प्राकृतिक उपचारों द्वारा शीघ्रता से दूर की जा सकती हैं । 'होमियोपथी' के एक अत्यन्त व्यस्त डॉक्टर और मेरे मित्र अपने प्रत्येक रोगी का उपचार इसी शर्त पर करते हैं कि वह रोगी कम-से-कम तीन माह तक उनकी दवा जारी रखेगा । छह महीने, नौ महीने या इससे भी अधिक समय तक दवाएँ लेते रहनेवाले लोग मिलते हैं । फिर प्राकृतिक चिकित्सा पर मन्द होने का दोषारोपण किस लिए ?

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का यह दुर्भाग्य है कि अन्य सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ आजमा लेने के बाद और विविध प्रकार की दवाओं से जीवन-शक्ति को निर्जीव तथा शरीर को जर्जरित कर चुकने के बाद लोग एक अन्तिम उपाय के रूप में प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाते हैं और साथ ही शीघ्र रोगनिवारण की अपेक्षा भी रखते हैं । ऐसे लोगों का यह सौभाग्य है कि प्राकृतिक चिकित्सा उन्हें निराश नहीं करती और उन्हें वह रोग-मुक्त करती है ।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रत्येक उपाय का एक ही आशय होता है : शरीर की प्राकृतिक रोगप्रतिकारक शक्ति अर्थात् जीवन-शक्ति को प्रबल एवं कार्यक्षम बनाना और शरीर में एकत्रित विषैले तत्वों को बाहर निकालना । प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग का निवारण

होना जीवन-शक्ति के सबल हो जाने का चिह्न है। इस बात का प्रमाण यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग दूर कर देने के बाद लम्बे समय तक कोई नया रोग नहीं होता।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति मानव को उसके अपने आरोग्य में सक्रिय रुचि लेने की प्रेरणा देती है। दवाओं का आश्रय लेनेवाला रोगी केवल एक मूक प्रेक्षक बनकर रह जाता है; किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के उपचारों में रोगी को स्वयं ही प्रमुख योगदान देना होता है, अतः इसके लिए उसे अपनी बीमारी, अपनी आदतों, अपने खान-पान, अपने रहन-सहन आदि का निरीक्षण करना अनिवार्य होता है। इस प्रकार वह स्वयं चिकित्सा-प्रक्रिया में सम्मिलित होता है। यदि अपनी बीमारी में और उसके निवारण के कार्यक्रम में रोगी स्वयं सक्रिय रुचि लेता है तो बीमारी को शीघ्र ही भागना पड़ता है यह निर्विवाद है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री. नॉर्मन कजीन्स ने अपने इलाज में सक्रिय रुचि लेकर जिस प्रकार 'एन्किलॉजिंग स्पोण्डिलोसिस' जैसे असाध्य रोग से मुक्ति प्राप्त की वह इस बात का ठोस प्रमाण है।

प्रस्तुत प्रकरण का सारांश यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा एक अनुपम विज्ञान है। उसकी रोग-निवारण क्षमता असीम है। जिनमें शल्यचिकित्सा अनिवार्य हो ऐसे अपवाद-रूप रोगों को छोड़ दिया जाए तो शेष सभी रोग प्राकृतिक चिकित्सा के सम्मुख गाय के समान दीन बन जाते हैं। यह पद्धति रोग के केवल लक्षणों को ही दूर नहीं करती, किन्तु रोग को भी जड़-मूल से उखाड़ फेंकती है। वह मानव को स्वस्थ जीवन जीने का सच्चा मार्ग बताती है एवं उसमें अनुशासन और संयम के गुणों का आरोपण करती है। इसके अलावा वह खर्चीली नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा इक्कीसवीं शताब्दी की प्रमुख उपचार-पद्धति सिद्ध होगी ऐसा कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।

३. क्या बीमारी अनिवार्य है ?

Prevention is better than cure — रोग के उपचार की अपेक्षा उसकी रोकथाम करना बेहतर है अर्थात् कभी बीमार मत पड़िए। आप फौरन कहेंगे कि भला बीमार कौन पड़ना चाहेगा ? फिर बीमार पड़ना या न पड़ना यह क्या हमारे बस की बात है ? जी हाँ, इसका उत्तर यही है कि बीमार न पड़ना या स्वस्थ रहना यह शत प्रतिशत प्रत्येक मनुष्य के अपने बस की बात है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में प्राकृतिक रोगप्रतिकारक शक्ति (जीवन-शक्ति) होती है। यदि वाधा न पहुँचाई जाए तो इस शक्ति में मानव को आजीवन निरोगी बनाए रखने का सामर्थ्य है। अर्थात् यदि जीवन-शक्ति की उचित देख-भाल हो या उसे सबल रखा जाए तो बीमारी उत्पन्न ही नहीं होगी; फिर भी यदि किसी अगम्य कारण से बीमारी आ जाए तो वह फौरन दूर हो जाएगी यह एक निर्विवाद बात है। आधुनिक औषधि-शास्त्र के जनक हिपोक्रैट्स का यह मत सूचक है कि “रोग का निवारण प्रकृति करती है, चिकित्सक नहीं करता।”

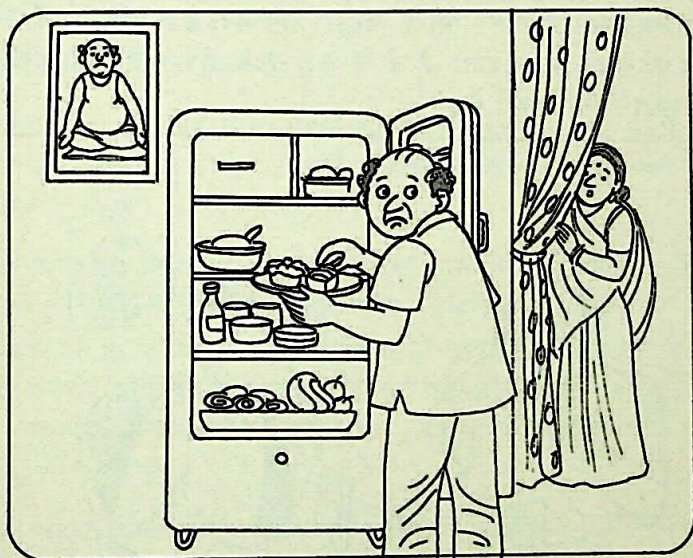
यदि बीमार न पड़ना हो तो जीवन-शक्ति को निर्बल बनानेवाले परिबलों के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। निम्नलिखित परिबलों के कारण जीवन-शक्ति का ह्रास होता है और शरीर में विषद्रव्यों का जमाव होता है।

(१) अनुचित आहार : हमारे पूर्वजों का आहार बिल्कुल सादा था। इसीलिए वे दीर्घायु भोगा करते थे। दूसरी ओर आज के हमारे आहार में अतिशय मसालेदार तीखे, तले हुए या अत्यन्त ठण्डे व्यंजनों और मिठाइयों की भरमार होती है। तदुपरान्त रिफाइन किये हुए, प्रक्रियायुक्त (processed) और जमाए हुए (frozen) खाद्य पदार्थों का उपयोग बहुत बढ़ गया है। ये पदार्थ शरीर में भारी मात्रा में अम्ल और विषद्रव्य उत्पन्न करते हैं। मांसाहार करनेवालों और दलहनों का अतिशय सेवन करनेवालों के शरीर में विषद्रव्यों का जमाव तेजी से होता है। शरीर में इन विषद्रव्यों का यह जमाव ही सारे रोगों का मूल कारण है।

खाद्य पदार्थों के संयोजन का विचार करना भी आवश्यक है। हम जिस आहार का सेवन करते हैं वह मुख्यतः प्रोटीन, चरबी और कार्बोहाइड्रेट्स से निर्मित है। इनमें कार्बोहाइड्रेट्स का पाचन मुँह और छोटी आंत में होता है; प्रोटीन का पाचन जठर में होता है, जबकि चरबी का पाचन आंतों में होता है। प्रत्येक घटक की पाचन-क्रिया भिन्न-भिन्न ढंग से होती है। यदि किसी एक भोजन में ये तीनों घटक भारी मात्रा में हों तो पाचन उचित ढंग से नहीं होगा; आहार पेट या आंत में सड़ता रहेगा और विषद्रव्य उत्पन्न होंगे।

आहार के औचित्य-अनौचित्य और उसके संयोजन से सम्बन्धित विस्तृत चर्चा प्रकरण ६ में की गई है।

आहार के प्रकार एवं संयोजन के अतिरिक्त आहार की मात्रा के विषय में भी विचार करना चाहिए। आज आहार की मात्रा में विवेक नहीं रखा जाता। आजकल आहार इतना मसालेदार और स्निग्ध होता है कि अधिक खाने का लालच रोका नहीं जा सकता।



चित्र ३.१

तदुपरान्त हमारे समाज में आहार को प्रेम का प्रतीक माना गया है। अतः हम अपने मेहमानों को भी आग्रहपूर्वक खिलाते हैं। अतिशय आहार पाचन-अवयवों के लिए बोझरूप हो जाता है और सारी पाचन-क्रिया को अस्त-व्यस्त कर डालता है। बार-बार खाते रहने से भी यही परिणाम आता है। एक बार खाया हुआ आहार अभी पच भी न पाया हो कि पाचन-अवयवों पर नए आहार को पचाने का बोझ डाल देना तर्कविहीन है। आरोग्यशास्त्री रेडी मॅलेट के ये शब्द अपने भोजनालयों में अंकित करने योग्य हैं : 'निरोगी रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को निरन्तर थोड़ा भूखा रहना चाहिए।'

शक्कर और नमक का उपयोग भी आजकल बहुत ही बढ़ गया है। ये दो पदार्थ भी स्वास्थ्य के लिए जोखिमभरे हैं। इस सम्बन्ध में सभी विशेषज्ञ एकमत हैं। शक्कर और शक्कर से बनी वस्तुएँ जैसे चॉकलेट, पिपरमीट, च्युइंग गम, जाम, जेली, मिठाइयाँ, डिब्बे में पॅक की गई वस्तुएँ आदि अधिक मात्रा में खाने से दाँतों की सड़न, डायबिटीस, हृदयरोग, आघातशीली और त्वचा तथा मूत्रपिण्ड के रोग उत्पन्न होते हैं। इसी कारण आहारशास्त्री शक्कर को मीठा जहर मानते हैं। ब्रिटन के प्रसिद्ध प्रोफेसर जॉन युडकिन असंख्य प्रयोग करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव-शरीर को ऊर्जा या ईंधन के लिए रिफाइण्ड शक्कर की आवश्यकता नहीं है। प्राकृतिक आहार से ही उसे आवश्यक शर्करा उपलब्ध हो जाती है।

शक्कर की भाँति आज नमक का उपयोग भी बेहद बढ़ गया है। दाल-साग में उचित मात्रा में नमक डालने की बात तो समझ में आ सकती है; किन्तु अब तो रोटी, छाछ और कचूमर में भी नमक डाला जाता है। उस समय तो सीमा का अतिक्रमण ही हो जाता है जब फलों पर नमक छिड़का जाता है। मूँगफली, बादाम, काजू, पिस्ता आदि को भी नमकीन बनाने का भारी चस्का लग गया है। यदि लोगों से नमक का उपयोग बन्द करने को कहा जाता है तो वे कह उठते हैं: 'अजी, नमकरहित भोजन करने से तो भूखा रहना अच्छा है।'



'बाने में परहेज? ठीक है साहब! जैसा आप कहें! किन्तु पिछले चालीस वर्षों से प्रातःकाल के नाश्ते में लम्बे-लम्बे चार-पाँच फाफड़े-गोंठिये बाने की आदत है। सो, वह एकदम तो छूटेगी नहीं। हर रोज एक-एक सेन्टिमीटर कम करते हुए बन्द कलें तो.... चलेगा?'

चित्र ३-२

नमक का अत्यधिक उपयोग हृदय और किडनियों को अपार हानि पहुँचाता है। नमक किसी भी प्रकार का हो, वह समुद्री हो या खनिज, स्वास्थ्य के लिए दोनों ही समान रूप से हानिकारक हैं। सिरदर्द, अनिद्रा, यकृत के रोग, साइन्युसाइटिस, तनाव, सन्धिवात, स्थूलता और कैंसर के लिए भी नमक कारणभूत हो सकता है ऐसा अनेक वैज्ञानिकों एवं आहारशास्त्रियों का अभिमत है।

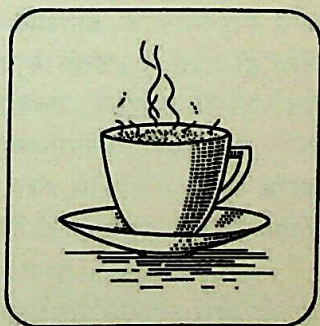
(२) परिश्रम का अभाव : वर्तमान समय में उद्योगीकरण ने मनुष्य को श्रम से विमुख बना दिया है। निष्क्रिय जीवन जीनेवाले बुद्धिजीवियों की समाज में भारी प्रतिष्ठा होती है, किन्तु इतना ध्यान रखें कि श्रम की महिमा अपार है। श्रम करने से रक्त-परिश्रमण की गति तेज होती है, रक्त में लाल एवं श्वेत कणों की संख्या बढ़ती है, स्नायु मजबूत बनते हैं, श्वासोच्छ्वास गहरे होते हैं, साथ ही पसीना अधिक होने से शरीर में भीतरी विषद्रव्य बाहर निकल जाते हैं।

निष्क्रिय जीवन जीनेवाले लोग आहार को भली-भाँति नहीं पचा सकते। वे हमेशा अनपच, गैस और कब्ज से पीड़ित रहते हैं। कब्ज अनेक रोगों की जननी है यह एक सर्वविदित तथ्य है।

(३) अनियमित जीवन : आज का मानव काम-धन्धे की दौड़-धूप में खाने-पीने या सोने-जागने के समय का निर्वाह नहीं कर पाता। परिणाम स्वरूप शरीर का प्राकृतिक जैविक ताल (biological rhythm) अस्तव्यस्त हो जाता है। ऐसा होने से सही समय पर भूख नहीं लगती; मल-विसर्जन नियत समय पर नहीं होता, शरीर सुस्त और निस्तेज हो जाता है; आँतों में मल का जमाव हो जाता है, यह परिस्थिति अन्ततोगत्वा किसी-न-किसी रोग में परिणत होती है।

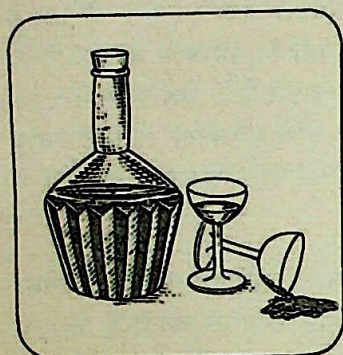
(४) व्यसन : भौतिक मौज-शौक को अहमियत देनेवाले वर्तमान युग के लोगों में व्यसन और बुरी आदतें फौरन घर कर जाती हैं। चाय, कॉफी, कोको, शराब या तम्बाकू आदि के सेवन से हम अपने शरीर में विषद्रव्यों के निर्माण को उत्तेजन देते हैं। इसी प्रकार पान की गिलौरियाँ लगातार मुँह में रखकर हम कैंसर जैसे भयंकर रोग को आमंत्रण देते हैं।

चाय, कॉफी और कोको—ये तीनों उत्तेजक पेय हैं। उनमें कैफिन या टैनिन नाम के अनिष्ट तत्त्व होते हैं। ये तत्त्व मस्तिष्क के निश्चित भाग पर प्रभाव डालकर ज्ञानतन्तुओं और स्नायुओं को उत्तेजित करते हैं। इनसे नाड़ी के स्पन्दन और श्वासोच्छ्वास तेज हो जाते हैं। कॉफी पीने से रक्त में चरबी की मात्रा बढ़ती है। ऐसी परिस्थिति लगातार बनी रहने पर रक्त की चरबी रक्त-नलिकाओं की भीतरी दीवारों पर जमने लगती है। परिणाम स्वरूप रक्तनलिकाएँ कठिन और सँकरी होने लगती हैं। धीरे-धीरे रक्त का दबाव बढ़ने लगता है, हृदय पर कार्यभार बढ़ने लगता है और हृदयरोग के आक्रमण की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।



चित्र ३:३

उपर्युक्त तीनों पेयों में कोई भी पोषक तत्त्व नहीं है। अतः इस पेय का उपयोग बन्द हो यह आवश्यक है।



चित्र ३-४

हृदयरोग और धूम्रपान के बीच सीधा सम्बन्ध है यह निर्विवाद है।

तम्बाकू में निकोटीन नामक तत्त्व होता है। वैद्यकीय शब्दकोश से स्पष्ट विदित होता है कि निकोटीन अत्यन्त शक्तिशाली एवं सक्रिय विष है। धूम्रपान करने से यह निकोटीन और कार्बन मोनोक्साइड नामक विषाक्त तत्त्व फेफड़ों में प्रविष्ट होते हैं।



चित्र ३-५

प्रयोगों के द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि निकोटीन के कारण रक्त में ऐंड्रिनालिन और नॉरैड्रिनालिन नाम के पदार्थों का स्त्राव अधिक मात्रा में होता है। फलस्वरूप रक्त में चरबी की मात्रा बढ़ती है। इसी कारण धूम्रपान रक्तनलिकाओं के कठिनीकरण की प्रक्रिया को तेज करता है। अन्य रक्तनलिकाओं की भाँति ही हृदय को पोषण देनेवाली धमनियाँ भी सँकरी और जरठ हो जाती हैं। इसके कारण हृदय पर जो दुष्परिणाम होते हैं उनमें अनियमित एवं तेज धड़कनों, हृदयशूल, उच्च रक्तचाप एवं हृदयरोग के आक्रमण का समावेश होता है।

हृदय और रक्तनलिकाओं के लिए प्रजीवक अत्यन्त आवश्यक हैं। धूम्रपान के कारण शरीर में संग्रहीत प्रजीवक नष्ट होने लगते हैं। एक संतरे में जितना प्रजीवक 'सी' रहता है उतना प्रजीवक 'सी' केवल एक सिगरेट पीने से नष्ट हो जाता है।

लम्बे समय तक तम्बाकू के सेवन से हाथ-पैरों की कँपकँपी, चक्कर आना और मिरगी जैसी तकलीफें उठ खड़ी होती हैं। तम्बाकू में स्थित ऐसे सोलह तत्त्व प्राप्त हुए हैं जो कैंसर उत्पन्न कर सकते हैं। वर्षों से तम्बाकू का सेवन करनेवाले लोगों के पैरों की नसें सँकरी हो जाती हैं। इस कारण थोड़ा-सा चलने से भी पैरों में भारी पीड़ा होने लगती है। इस व्याधि को 'बर्जर्स डिजीज' कहा जाता है।

कोई ऐसा न मान ले कि हृदय और सामान्य स्वास्थ्य को केवल धूम्रपान से ही हानि होती है। तम्बाकू खाने, दाँतों पर घिसने या सुंघनी के रूप में सुंघने से भी न्यूनाधिक मात्रा में हानि तो होती ही है।

वास्तव में बीड़ी-सिगरेट के पाकिटों पर ही यह चेतावनी छपी रहती है कि 'धूम्र-पान करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।' फिर भी अनपढ़ों को तो छोड़िए, किन्तु पढ़े-लिखे भी धूम्रपान अपनाते हैं और फिर इस व्यसन को छोड़ नहीं सकते। हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि लगभग ८० प्रतिशत डॉक्टर धूम्रपान करते हैं ! व्यसन की गुलामी की यह चरमसीमा है।

(५) मानसिक परिवर्तन : आज के स्पर्धात्मक एवं कोलाहलपूर्ण जीवन में मानसिक तनाव बेहद बढ़ गया है। आज अनेक लोग निषेधात्मक दृष्टिकोणवाले दिखाई पड़ते हैं। शरीर पर मन का सीधा प्रभाव पड़ता है। आज मनुष्य को पीड़ित करनेवाले अधिकांश रोग मनोशारीरिक (psychosomatic) हैं ऐसा अनेक निष्णातों का मत है।

(६) दवाओं का विवेकहीन उपयोग : अनेक दवाएँ विषैली होती हैं। वे शरीर में विषद्रव्य बढ़ाती हैं। वे अस्थियों की मज्जा को निष्क्रिय करके जीवनशक्ति को निर्बल बनाती हैं। जब जीवनशक्ति ही मृतप्राय हो तो कोई भी उपाय अथवा कोई भी दवा कारगर सिद्ध नहीं होती यह निर्विवाद है।

डॉ. एच. पी. पिकरील, एम. डी. के मतानुसार 'रोगी की रोगप्रतिकारक शक्ति में वृद्धि करना ही बीमारी के खिलाफ जमकर लड़ाई करने का एक मात्र तर्कसंगत मार्ग है।'

कॅनेडा की सास्केचेवान युनिवर्सिटी के औषधिशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डॉ. वेंडेल मॅकलोड का कथन है : 'प्राकृतिक रोगप्रतिकारक शक्ति में विश्वास रखने के बदले हम दवाओं के अधिकाधिक उपयोग की ओर झुकते जा रहे हैं यह खेदजनक है।'

न्यूयॉर्क के कॉलेज ऑफ़ फिजिशियन्स एण्ड सर्जन्स के डॉ. एच. जी. कॉक्ष, एम. डी. डॉक्टरों को टोकते हुए कहते हैं : "आप लोग रोगियों को जितनी कम दवाएँ दें उनके लिए उतना ही अच्छा है।"

इतिहास में जिनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है ऐसे महान औषधिशास्त्री एवं चिकित्सक डॉ. विलियम ऑस्लर के ये शब्द हम सबको अपने हृदय में अंकित कर रखने चाहिए : "मानव-शरीर एक ऐसा जटिल यंत्र है कि तत्सम्बन्धी हमारा ज्ञान अब भी अल्प ही माना जा सकता है। फिर भी, उसमें ऐसी दवाएँ उँडेली जाती हैं जिनकी कार्यपद्धति के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। सच्चा डॉक्टर वही है जो अपनी दवाओं की मर्यादा समझता है।"

दवाओं के विषय में अभिप्राय व्यक्त करने के लिए डॉ. ऑस्लर से बढ़कर अधिकारी व्यक्ति कदाचित् कोई नहीं होगा।

विज्ञान की प्रगति एवं औषधिविज्ञान के विकास से चौंधियाए हुए और वैद्यकीय यंत्रवाद को अहोभाव से देखनेवाले डॉक्टरों को उपर्युक्त विधान कदाचित् अयोग्य एवं पूर्वाग्रहयुक्त जान पड़ेंगे; किन्तु डॉ. ऑटो मॉसिट का मत ऐसा है कि, "विज्ञान का स्थान प्रकृति के वाद ही आता है। रसायनशास्त्र ने भले ही खूब प्रगति कर ली हो फिर भी शरीर के एक-एक कोष में चलनेवाली सूक्ष्म एवं अत्यन्त सुनिश्चित प्रक्रियाओं की तुलना विश्व की समस्त प्रयोगशालाएँ एकत्रित होकर भी नहीं कर सकतीं।" सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थॉमस आल्वा एडिसन ने यथार्थ ही कहा है कि, "जब तक मनुष्य निर्जीव पदार्थों से घास का एक तिनका नहीं बना लेता तब तक प्रकृति उसके वैज्ञानिक ज्ञान की हँसी उड़ा सकती है।"

४. प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति कोई नई पद्धति नहीं है। ऐसा कहा जा सकता है कि आज से २५०० वर्ष पहले हिपोक्रेट्स के समय में इसका जन्म हुआ था। भ्रमवश लोग हिपोक्रेट्स को औषधविज्ञान का पिता मानते हैं, किंतु वस्तुतः प्राकृतिक नियमों पर आधारित रोगोपचार के प्रचार के कारण ही उसे ख्याति प्राप्त हुई थी। फिजीस अर्थात् प्रकृति। इसी से 'फिजिशियन' शब्द की उत्पत्ति हुई है। प्राकृतिक चिकित्सादर्शन के मेरुदण्ड के समान 'उफान की क्रिया' का उसने गंभीर अध्ययन किया। इसी उफान की क्रिया को औषधोपचारक रोग की उग्र (acute) स्थिति मानते हैं।

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा-आंदोलन को आज से लगभग १५० वर्ष पहले गति प्राप्त हुई। इसका श्रेय विश्वविख्यात चिकित्सक डॉ. विन्सेण्ट प्रीस्निज को है। ई. स. १८२६ में जर्मनी के ग्रॅफ़नबर्ग में उन्होंने एक चिकित्सागृह की स्थापना की। कई वर्ष तक स्वयं प्रीस्निज भी अस्वस्थ रहे थे। आरोग्य की प्राप्ति के लिए इस सूक्ष्मदर्शी और आंतरदृष्टि-संपन्न मानव ने शीतल जल की रोगनिवारक शक्ति पर विपुल अनुसंधान किया। शीतल जल के प्रयोगों द्वारा स्वयं स्वस्थ होने के पश्चात् उन्होंने अन्य असंख्य रोगियों पर जल-चिकित्सा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया।

जलचिकित्सा के कारण प्रीस्निज की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। दूर-दूर से लोग उनसे मिलने आने लगे। ग्रॅफ़नबर्ग का चिकित्सागृह आरोग्य-इच्छुकों के लिए तीर्थ-स्थान बन गया। उनकी स्वर्णिम सफलता उस समय के प्रणालिकागत चिकित्सकों को आँख की किरकिरी की तरह खटकती थी। रूढ़िचुस्त समाज ने अन्य कितने ही उन्नायकों की तरह प्रीस्निज का भी प्रबल विरोध किया; निंदा, उपहास, गालियों आदि की भारी बौछार की। इतना ही नहीं, वरन् उन पर बार-बार कानूनी कार्यवाही भी की गई। इसके बावजूद अंत में सत्य की ही विजय हुई। इस उत्पीड़न और उसका सफलतापूर्वक सामना करने के कारण प्रीस्निज की कीर्ति और प्रसिद्धि कम होने के बजाय बढ़ गई। विरोधी उनके लिए विज्ञापन का साधन ही बने।

अनुभव के आधार पर डॉ. प्रीस्निज इस दृढ़ मान्यता पर पहुँचे थे कि अयोग्य आहार-विहार से शरीर में जमा होनेवाले विषद्रव्य ही रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं। यदि शरीर की रोगनिवारक शक्ति को ही तीव्र बनाया जाए तो रोग अपने आप विदा हो जाते हैं। उनके मतानुसार कोई भी रोग अचानक उत्पन्न नहीं होता। लंबे समय तक क्रमशः शरीर में होनेवाले विषसंचय के कारण रोग उत्पन्न होता है। अतः रोगनिवारण की प्रक्रिया कुछ धीमी होती है। लगन और धीरज से उपचार चालू रखने की आवश्यकता रहती है। डॉ. प्रीस्निज के चिकित्सालय के बाहर लगी तख्ती 'आपको धैर्य रखना होगा' इस बात का संकेत करती है। डॉ. प्रीस्निज के मत का खंडन करना आज भी संभव नहीं है।

उन्हीं दिनों चैकोस्लोवाकिया के लिडेवीज नामक स्थान पर डॉ. जोहानीस स्क्रोथ नामक एक ऑस्ट्रियन चिकित्सक ने एक अन्य स्वास्थ्यकेन्द्र की स्थापना की। प्रारंभ में वे केवल घोड़े, कुत्ते आदि प्राणियों का इलाज करते थे। सफल अनुभवों के आधार पर उन्होंने मानव का उपचार करना आरंभ किया। सफलता प्राप्त होने के कारण धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। ईर्ष्या ने फिर सिर उठाया। जो घटनाएँ डॉ. प्रीस्निज के साथ घटित हुई थीं उन्हीं घटनाओं के पुनरावर्तन का स्क्रोथ ने भी अनुभव किया। उनके समकालीन डॉक्टरों ने उनका विरोध करने में कोई भी कसर नहीं रखी। लगभग बीस वर्ष तक डॉ. स्क्रोथ ने धृणा और अपमान का डटकर मुकाबला किया। उन्होंने कारावास को भी स्वीकार किया। ई. स. १८४६ में उनके भाग्योदय का प्रारंभ हुआ। बात यों बनी थी : विण्टमबर्ग के ड्यूक के पैर में चोट लगी। प्रारंभ में मामूली लगनेवाली इस चोट ने थोड़े ही समय में भयानक रूप धारण किया। उस समय के अग्रगण्य डॉक्टर औषधों के द्वारा ड्यूक को स्वस्थ करने में असफल रहे। अंत में ड्यूक को पैर कटवा देने की सलाह दी गई। डॉक्टरों का अभिमत था कि यदि ऐसा नहीं किया गया तो ड्यूक का जीवन खतरे में पड़ जाएगा। विकलांग जीवन की कल्पनामात्र से ड्यूक काँप उठे। परावलंबी जीवन से तो मृत्यु अच्छी—ऐसी उनकी धारणा उन्हें जोहानीस स्क्रोथ के द्वार पर खींच लाई। स्क्रोथ ने उन्हें सांत्वना दी और उपचार प्रारंभ किये। कुछ ही महीनों में ड्यूक ने संपूर्ण स्वस्थ होकर विदा ली।

इस घटना से देशभर में सनसनी फैल गई। स्क्रोथ के विरोधी हिम्मत हार बैठे। ड्यूक ने अपनी कहानी एक रसमय पुस्तक के द्वारा प्रकाशित की। घर-घर इस पुस्तक का प्रचार किया गया। अनेक डॉक्टरों ने स्क्रोथ की पद्धति को मान्यता दी; इतना ही नहीं, कइयों ने तो उसका अध्ययन भी आरंभ कर दिया। इसके बावजूद अब भी अपवाद-रूप कुछ विरोधी सामने आते, लेकिन उनके विरोध का दंश दूर हो चुका था। प्रीस्निज ने जलचिकित्सा का महत्त्व बढ़ाया तो स्क्रोथ ने ठंडे पानी में भिगोए हुए कपड़े की पट्टी (लपेट) को प्रधानता दी और लोगों को आहार का महत्त्व भी समझाया।

इसके बाद बवेरिया (जर्मनी) के फादर सैंवेस्टियन नीप ने खूब प्रसिद्धि प्राप्त की। फादर नीप केवल प्राकृतिक चिकित्सक ही नहीं थे, किंतु शिक्षक और समाज-सेवक भी थे। जलचिकित्सा पर आधारित एक स्वास्थ्य-गृह का उन्होंने पेंतालीस से भी अधिक वर्षों तक संचालन किया। प्रत्येक प्रकार के रोग को दूर करने में उन्हें अप्रतिम सफलता प्राप्त हुई। 'My Water Cure' नामक उनकी जलचिकित्सा विषयक पुस्तक का आज भी अध्ययन होता है। भिन्न-भिन्न रोगों के लिए भिन्न-भिन्न तापमानवाले पानी का उपयोग यह उनकी मुख्य विशेषता थी।

पिछली शताब्दी के अग्रगण्य चिकित्सकों में ऑस्ट्रिया के वारनॉल्ड स्किली का भी समावेश होता है। उन्होंने पानी के साथ-साथ हवा और सूर्यकिरणों की महत्ता प्रस्थापित की। वे मानते थे कि कब्ज ही सभी रोगों का मूल है। इसलिए वे कब्ज के निवारण को प्रथम स्थान देते थे। वे स्वयं कट्टर शाकाहारी थे। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में विभिन्न

बीमारियों से पीड़ित रहे किन्तु उत्तरावस्था में उन्होंने आरोग्य प्राप्त किया और उसको बनाए रखा। अतः वे प्राकृतिक चिकित्सा के जीवित उदाहरण बने। उन्होंने ९७ वर्ष की दीर्घायु का उपभोग किया।

प्राकृतिक चिकित्सा के विकास में जर्मनी के डॉ. हेंरिक लेमन का योगदान भी महत्वपूर्ण है। ड्रेसडन में उनके द्वारा स्थापित चिकित्सा-केन्द्र में योग्य आहार को प्रधानता दी जाती। मनुष्य के आहार में स्वास्थ्य के लिए कौन-से गुण और तत्त्व होने चाहिए, उनके से शरीर को कैसी हानि होती है तथा मद्यपान जैसे व्यसन किस प्रकार हानिकारक हैं यह सब जानने के लिए उन्होंने विपुल अनुसन्धान किया। इसके लिए आहारविज्ञान सदा ही उनका कृतज्ञ रहेगा।

प्राकृतिक चिकित्सा के सबसे महान समर्थक संभवतः जर्मनी के लूई कुहने थे। बीस वर्ष की छोटी अवस्था में ही उनके स्वास्थ्य का सम्पूर्ण ह्रास हो चुका था। वर्षों तक दवाओं का सेवन करते-करते वे ऊब चुके थे। 'डूबते को तिनके का सहारा' इस कहावत के अनुसार वे प्राकृतिक चिकित्सा की ओर मुड़े। शीघ्र एवं चमत्कारिक सुधार ने उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा का अनन्य भक्त बना दिया। उन्होंने प्राकृतिक उपचारशास्त्र का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया। ई. स. १८८६ में उन्होंने जर्मनी के लिप्जिग में आरोग्य-केन्द्र की स्थापना की। रोग-निवारण के लिए उन्होंने जिन प्रयोगों को अपनाया था उनमें सूर्यस्नान, वाष्पस्नान, कटिस्नान, मेहनस्नान इत्यादि का समावेश होता था। लूई कुहने के कथनानुसार यदि शरीरशुद्धि एवं रक्तशुद्धि हो जाए तो कोई भी रोग अवश्य ही दूर होता है। चेहरे और गरदन के निरीक्षण के आधार पर रोग का निदान करने की पद्धति के वे आविष्कर्ता थे। 'धी न्यू सायन्स ऑफ़ हिलिंग' और 'धी सायन्स ऑफ़ फेसियल एक्सप्रेसन' नामक उनके ग्रन्थों से उन्हें अतुलित यश मिला। उपर्युक्त ग्रन्थों में से प्रथम ग्रन्थ का अनुवाद तो संसार की प्रायः सभी भाषाओं में हुआ है। लूई कुहने ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि, 'सभी रोगों का मूल कारण एक ही है और वह है विषसंचय; मूल स्वरूप में सभी रोग समान हैं।' यह सिद्धान्त आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा की एक आधारशिला है।

जर्मनी के ही एक अन्य निसर्गवादी डॉ. एडॉल्फ जस्ट की गणना भी प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सकों में होती है। वे हार्ज पर्वतश्रेणी में 'जंगवान' नामक स्वास्थ्यगृह का संचालन करते थे। ये चिकित्सक मिट्टी के प्रयोगों के जन्मदाता थे। वे सम्पूर्ण प्राकृतिक जीवन के प्रखर हिमायती थे। उनकी 'रिटन टु नेचर' नामक पुस्तक ने अप्रतिम सफलता एवं लोकप्रियता प्राप्त की। प्राचीन मनुष्य के जीवन-क्रम का अनुकरण करने से अर्थात् कृत्रिमता का पूर्णतः बहिष्कार करने से कायाकल्प होता है यह उन्होंने सिद्ध कर दिखाया। डॉ. एडॉल्फ जस्ट टीके (vaccine) लगवाने के कट्टर विरोधी थे।

प्राकृतिक चिकित्सा के विकास में यूरोप के अतिरिक्त अमेरिका का भी बड़ा योगदान है। अमेरिका में प्राकृतिक उपचार के अग्रणी डॉ. जैम्स सी. जैक्सन थे। ३५ वर्ष की

अवस्था में वे रोगग्रस्त हो गए। औषधोपचारकों ने उनके रोग को असाध्य बताकर अपनी असमर्थता प्रकट की। सभी ओर से निराशा मिलने के बाद वे डॉ. विन्सेण्ट प्रीस्तिनज के शिष्य डॉ. सिलास ग्लिसन की शरण में आए। प्राकृतिक चिकित्सा ने फिर अपनी शक्ति का परिचय दिया। इस उपचार का अपेक्षित सुन्दर परिणाम आया। अब जॅक्सन डॉ. ग्लिसन के मरीज न रहकर उनके सहकार्यकर्ता बन गए। साथ ही उन्होंने वहाँ के मेडिकल कॉलेज में भी प्रवेश प्राप्त कर लिया। वहाँ से उन्हें डॉक्टरी का परवाना प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होंने न्यूयॉर्क के डॅन्सविल में जॅक्सन सॅनेटोरियम की स्थापना की। डॉ. जॅक्सन ने दवाओं का बहिष्कार किया। जल, वैज्ञानिक व्यायाम, आहार, मानसोपचार, विश्राम और अन्य प्राकृतिक उपचारों की सहायता से वे रोगों का निवारण करते थे।

अमेरिका के एक अन्य चिकित्सक डॉ. रसॅल ट्रॉल ने भी काफी ख्याति प्राप्त की। मेडिकल कॉलेज में परंपरागत शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद आगे चलकर उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा अपनाई। न्यूयॉर्क के फ्लॉरेन्स में उन्होंने 'हाइजिनिक थॅराप्यूटिक कॉलेज' शुरू किया। प्राकृतिक जीवन एवं रोगोपचार विषयक विपुल साहित्य का उन्होंने सृजन किया।

डॉ. रसॅल ट्रॉल के समान ही प्रसिद्धि अमेरिका के डॉ. जे. एच. कॅलॉग ने भी प्राप्त की। मिशीगन के विश्वप्रसिद्ध 'बॅटलक्रीक सॅनेटोरियम' के वे संचालक थे। जलोपचार, सूर्यस्नान, मालिश इत्यादि प्रयोगों के समर्थक डॉ. कॅलॉग ने भी असंख्य पुस्तकें लिखी हैं।

डॉ. हॅन्नी लिण्डल्हेर एक अन्य अमेरिकन चिकित्सक थे। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली की विचारधारा एवं कार्यों पर निर्णायक प्रभाव डाला। 'प्रत्येक तीव्र रोग प्रकृति की रोगनिवारक शक्ति की अभिव्यक्ति है' — इस सिद्धान्त का उन्होंने प्रतिपादन किया। यह सिद्धान्त प्राकृतिक उपचारशास्त्र का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधारस्तम्भ है। प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न पक्षों को संगठित और संकलित करके उसे एक पूर्ण विज्ञान का स्वरूप प्रदान करने में उन्होंने असाधारण कार्य किया। वे चक्षुर्विज्ञान (Iris diagnosis) के प्रबल समर्थक थे। उनके द्वारा लिखित 'आइरिस डायग्नोसिस' और 'घी फिलोसॉफी ऑफ़ प्रॅक्टिस ऑफ़ नेचरल थॅराप्यूटिक्स' नामक दो पुस्तकें अति प्रसिद्ध हैं। निसर्गोपचारक बनने से पूर्व डॉ. लिण्डल्हेर भी ऐलोपथी की ही प्रॅक्टिस करते थे। एक बार उन्हें स्वयं अपनी बीमारी में ही औषधियों की विफलता देखकर उनकी व्यर्थता का ज्ञान हुआ। इस घटना से उनके जीवन में एक नया मोड़ आ गया। दवाओं और दवाओं द्वारा किये जानेवाले उपचारों को उन्होंने तिलांजलि दे दी। सर्वप्रथम वे स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में गए और बाद में उन्होंने एक महान प्राकृतिक चिकित्सक के रूप में ख्याति प्राप्त की।

अमेरिका के सभी प्राकृतिक चिकित्सकों में डॉ. जे. एच. टिल्डन का स्थान कदाचित् सर्वोपरि माना जा सकता है। यदि मनुष्य अयोग्य आहार-विहार का त्याग कर दे और उचित ढंग से जीवन व्यतीत करने की पद्धति सीखकर उसे आचरण में रखे तो आरोग्य सुलभ होता है यह बात उन्होंने सिद्ध कर दिखाई। वे महान लेखक एवं चिन्तक थे। 'इम्पेडेड हेल्थ' उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक है।

विश्व के कोने-कोने में जाने-माने एक समर्थ एवं लोकप्रिय प्राकृतिक चिकित्सक डॉ. बनारि मॅकफेडन का स्थान भी अत्यन्त ऊँचा है। वे उपवास, दुग्धकल्प एवं वैज्ञानिक व्यायाम के प्रबल समर्थक थे। उनके द्वारा लिखित महाग्रन्थ 'धी एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ हॅल्थ' इस विषय में लिखे गए ग्रन्थों में सबसे बड़ा ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आठ भागों में मुद्रित हुआ है। इस ग्रंथ में प्राकृतिक उपचार सम्बन्धी प्रत्येक पहलू की विशद छान-बीन की गई है।

यदि यहाँ डॉ. बॅनेडिक्ट लस्ट के नाम का उल्लेख न हो तो प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास अधूरा ही रहेगा। वे फादर नीप के शिष्य थे। बीमारी में रसाहार के तो वे प्रबल समर्थक थे। इसी प्रकार डॉ. ड्युइ, डॉ. मॅकॅन (सुप्रसिद्ध आहारशास्त्री), डॉ. स्टिल (ऑस्टिओपथी के जन्मदाता), डॉ. डॅनियल पामर (काइरोप्रेक्टिक के आविष्कर्ता) आदि चिकित्सकों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. बिल्ज, डॉ. ऑटो जुटनेर, डॉ. जोशिआ ऍल्सेकर, डॉ. जे. एम. पीबल्स, डॉ. ऑल्डफिल्ड, डॉ. हर्बर्ट शॅल्टन, डॉ. ऍन विग्मोर आदि ने भी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रसार के लिए खूब परिश्रम किया है।

हमारे देश के कतिपय समर्थ चिकित्सकों का भी इस क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान है। इनमें पू. महात्मा गांधी, श्री मोरारजी देसाई, डॉ. दीनशा मेहता, डॉ. लक्ष्मण शर्मा, डॉ. जानकीशरण वर्मा, डॉ. कुलरंजन मुखर्जी, डॉ. विट्ठलदास मोदी, डॉ. जे. एम. जस्सावाला, डॉ. एम. एम. भमगरा, डॉ. एस. जे. सिंह, डॉ. रमणलाल एंजिनियर, डॉ. कृष्णवर्मा, डॉ. शंकरभाई दवे, डॉ. भूपतराय दवे आदि का समावेश किया जा सकता है।

प्राकृतिक उपचारशास्त्र में मॅग्नोटोथेरेपी, ऍक्युपंचर, ऍक्युप्रेशर, योगचिकित्सा, वर्णचिकित्सा आदि उपचार-पद्धतियों का भी समावेश किया जा सकता है। इन सभी उपचारों के संकलन के कारण प्राकृतिक चिकित्सा आज अधिक पूर्ण और शीघ्र लाभ पहुँचा सकती है यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

५. प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांत

‘रोगों के कारणों की एकता का सिद्धांत’ प्राकृतिक उपचारशास्त्र का प्रथम सिद्धांत है ।

इस सिद्धांत के अनुसार सभी रोगों की उत्पत्ति का एक ही कारण है—शरीर में विषों और विजातीय तत्त्वों का जमाव अर्थात् विषसंचय (toxaemia) ।

इस विषसंचय के कई कारण हैं । हमारा शरीर अनगिनत कोषों का बना हुआ है । प्रतिदिन अनेक कोष नष्ट होते हैं एवं उनका स्थान नए कोष लेते हैं । नष्ट होनेवाले कोष विजातीय तत्त्व बनते हैं । तदुपरांत, सजीव कोषों में चलनेवाली कुछ प्रक्रियाओं से भी विषद्रव्य उत्पन्न होते रहते हैं । किंतु विषसंचय का सबसे बड़ा कारण तो हमारा अप्राकृतिक जीवनक्रम है । गलत और त्रुटिपूर्ण जीवनपद्धति के कारण शरीर में भारी मात्रा में विष उत्पन्न होते हैं । शरीर में से इन विषों का यथाशीघ्र निष्कासन न हो तो उनका संचय होने लगता है । अंत में शरीर रोगग्रस्त हो जाता है । संक्षेप में, शरीर में होनेवाले विष-संचय के लिए व्यक्ति अधिकांशतः स्वयं जिम्मेदार होता है ।

शरीर अपने अंदर जमा होनेवाले विषों को दूर करने का प्रयत्न करता है तब ज्वर, सूजन, दर्द आदि भिन्न-भिन्न लक्षण उत्पन्न होते हैं । विष-निष्कासन के लिए शरीर के द्वारा किये गए प्रयास हमें शरीर के जिस भाग से दृष्टिगोचर होते हैं हम उसे उस भाग का कोई रोग मान बैठते हैं । संक्षेप में, तीव्र रोग अर्थात् प्राकृतिक रोगनिवारक शक्ति की अभिव्यक्ति । हम भले ही रोगों को भिन्न-भिन्न नाम दें, लेकिन एक हकीकत स्पष्ट है कि रोग कोई भी हो और शरीर के किसी भी हिस्से में दिखाई दिया हो, उसका कारण एक ही है—शरीर के भीतर होनेवाला विषसंचय ।

शरीर के भीतर होनेवाला विषसंचय सभी रोगों का मूल कारण है । इन संचित विषों को बाहर निकालने के शरीर के प्रयासों को ही हम रोग के लक्षण कहते हैं ।

आज अर्वाचीन औषधिविज्ञान बैक्टीरिया, वाइरस, फंगस आदि सूक्ष्म जीवाणुओं पर रोगोत्पादन का दोषारोपण करता है । अतिशय प्रचार के कारण अधिकांश लोग भी इस हकीकत को स्वीकार करने लगे हैं । किंतु रोग होने का कारण जीवाणु हैं यह मान्यता केवल एक भ्रांति है । इस विषय की विस्तारपूर्वक चर्चा यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगी ।

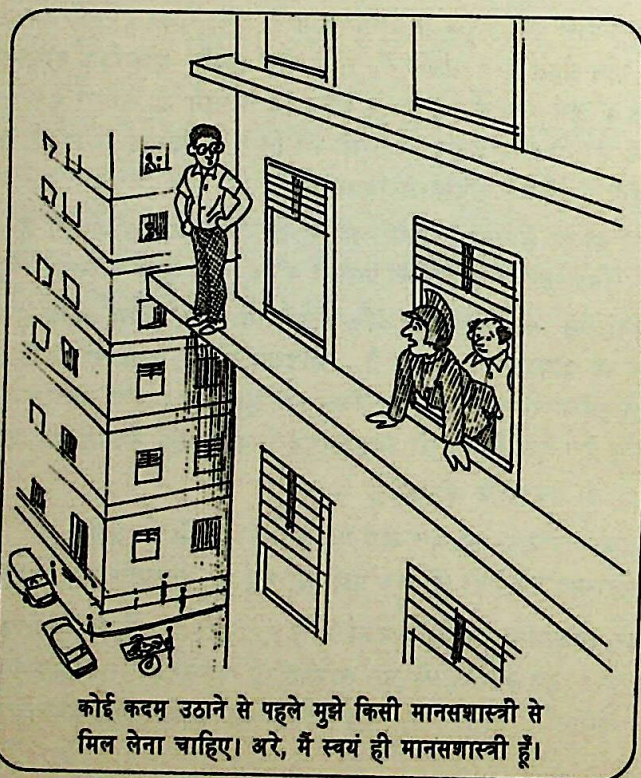
पृथ्वी पर दो प्रकार के जीवाणु हैं —

- (१) सॅप्रोफाइटिक—जो मृत जैव पदार्थों पर निभते हैं, और
- (२) पैरासाइटिक—जो जीवित प्राणियों पर या वनस्पति पर निभते हैं ।

पृथ्वी पर विद्यमान कुल जीवाणुओं में से ९८ प्रतिशत जीवाणु सॅप्रोफाइटिक किस्म के मालूम हुए हैं । इन जीवाणुओं को साफसफाई करनेवाले सफाई-कर्मचारी कहा जा सकता है । वे जमीन के भीतरी मृत जैव पदार्थों का रूपांतर ऐसे पदार्थों में करते हैं जो

नई उगनेवाली वनस्पति के लिए अनिवार्य होते हैं। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रत्येक जीव के लिए वनस्पति ही पोषण का मुख्य स्रोत है। एक प्रकार से ऐसा कहा जा सकता है कि सेंप्रोफाइटिक जीवाणुओं के निरंतर कार्य के बिना वनस्पतिजीवन संभव नहीं है। ये जीवाणु ऐसे रासायनिक परिवर्तन भी करते हैं जो वनस्पति या प्राणी स्वयं उत्पन्न नहीं कर सकते। संक्षेप में, ये जीवाणु न हों तो वनस्पति या प्राणी जीवित नहीं रह सकते। उनके बिना धरती पर लाशों का अंबार लग जाए।

शेष दो प्रतिशत जीवाणु पैरासाइटिक प्रकार के हैं। इनके लिए ऐसा कहा जाता है कि ये अन्य जीवित प्राणियों पर निभते हैं। ये अपनी चयापचय की प्रक्रिया के द्वारा अन्य प्राणियों के शरीर में विषैले पदार्थ उत्पन्न करते हैं और रोगों को जन्म देते हैं। इस मान्यता के जनक थे प्रसिद्ध वैज्ञानिक और जीवाणुशास्त्री लुई पाश्चर। अपनी इस खोज से उत्साहित होकर पाश्चर ने घोषणा कर दी कि मानव-जाति अब निश्चिन्त होकर जी सकेगी। किन्तु वे स्वयं जीवनभर जीवाणुओं के संक्रमण से आतंकित होकर ही जिए। जीवाणुओं का भूत उनके सिर पर इतना अधिक हावी था कि वे केले को भी उबलते पानी में डुबोए बिना खाने का साहस न जुटा पाते; कहीं ऐसा न हो कि जीवाणु केले की छाल भेदकर भीतर प्रविष्ट हो गए हों! जिस पानी में तांजे अंगूर धोए गए



कोई कदम उठाने से पहले मुझे किसी मानसशास्त्री से मिल लेना चाहिए। अरे, मैं स्वयं ही मानसशास्त्री हूँ।

थे उसे वे एक बार अनजाने में पी गए। बाद में परिस्थिति का ख्याल आते ही उन्होंने जवर्दस्त हो-हल्ला मचा दिया। जीवाणुओं के दुर्भाग्य से उन्हें कोई रोग नहीं हुआ। रोगोत्पत्ति के लिए एकमात्र जीवाणुओं को ही जिम्मेदार माननेवाले और आहार-व्यायाम इत्यादि बातों को गौण समझनेवाले पाश्चर मध्य अवस्था में ही उच्च रक्तचाप, मस्तिष्क के रक्तस्राव एवं पक्षाघात के शिकार हो गए।

क्या यह मान्यता सत्य है कि अधिकांश रोग पॅरासाइटिक जीवाणुओं के संक्रमण के कारण उत्पन्न होते हैं? अनेक चिकित्सक और जीवाणुशास्त्री इस मान्यता से सहमत नहीं होते।

प्राकृतिक चिकित्सा के एक समर्थ उपचारक एवं शास्त्रज्ञ डॉ. हर्बर्ट शैल्टन सीना ठोकर कहते हैं कि जीवाणु स्वयं रोग उत्पन्न नहीं करते; किन्तु विषैली भूमिका में ही वे अपनी विषैली प्रवृत्तियाँ शुरू करते हैं। अयोग्य आहार-विहार के कारण जब हमारे शरीर में विषैली भूमिका या विषैला वातावरण तैयार होता है अर्थात् विषसंचय होता है तब ये जीवाणु उन विषों को खा जाने और अन्त में उन्हें शरीर में से दूर करने में प्रवृत्त होते हैं। डॉ. शैल्टन की इस मान्यता को जीवाणुशास्त्रियों ने स्वीकार किया है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज जीवाणुशास्त्री सर रिचार्ड डग्लास पॉवेल ने कुछ वर्ष पूर्व इस बात को स्वीकार किया था कि जब टीटेनस या गॅस गेन्यून के जीवाणुओं को दूषित वातावरण में से दूर किया जाता है तब वे हानिकारक नहीं रहते। संक्षेप में, इन जीवाणुओं का विषैला स्वभाव विषैली भूमिका पर आधारित है। अर्थात् विषमय भूमिका (शरीर में होनेवाला विषसंचय) ही उनकी विषैली प्रकृति को उत्तेजित करती है।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि जीवाणुओं से रोग उत्पन्न होते हों तो रोग के लक्षण प्रकट होने के पहले ही शरीर में उन जीवाणुओं का अस्तित्व मिलना चाहिए। ताकिक ढंग से तो कार्य के पूर्व कारण उत्पन्न होना चाहिए। वैज्ञानिक अनुसन्धान से यह बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से मालूम हुई है कि रोग के लक्षण उत्पन्न होने के बाद ही शरीर में जीवाणुओं का अस्तित्व खोजा जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि रोग का लक्षण (विषसंचय) ही कारण है और जीवाणुओं की वृद्धि उसका परिणाम है।

तथाकथित भयंकर जीवाणु रोग उत्पन्न नहीं करते इस बात को सिद्ध करने के लिए असंख्य प्रयोग हुए हैं। डॉ. हण्टर ने ऑस्ट्रेलिया के कुछ नागरिकों पर अनेक प्रयोग किये। प्रथम प्रयोग में डिफ्थेरिया के ५० हजार जीवाणु पानी में मिलाकर पिलाए गए। थोड़े दिन प्रतीक्षा करने के बावजूद उन लोगों पर कोई असर मालूम नहीं हुआ। दूसरे प्रयोग में डिफ्थेरिया के डेढ़ लाख जीवाणु दूध में मिलाकर पिलाए गए; किन्तु प्रयोगाधीन लोगों को कुछ भी नहीं हुआ। तीसरे प्रयोग में डिफ्थेरिया के दस लाख जीवाणु आहार में मिलाकर खिलाए गए, किन्तु फिर भी कोई अनिष्ट नहीं हुआ। चौथे प्रयोग में डिफ्थेरिया के लाखों जीवाणु काकल (कौवे) पर, जीभ के नीचे और नाक के भीतर चुपड़ दिये गए। इतना सब करने के बावजूद रोग का कोई भी लक्षण प्रकट नहीं हुआ। ऐसे अनेक प्रयोग न्युमोनिया और टाइफाइड के जीवाणुओं के द्वारा भी किये गए; किन्तु एक भी उदाहरण में वे रोग उत्पन्न नहीं कर सके।

ऐसा माना जाता है कि खतरनाक मॅनिन्जाइटिस रोग के जीवाणु विशेषतः नथुनों की अन्तरत्वचा (mucous membrane) में पलते हैं। विशेष प्रयत्नों के द्वारा मॅनिन्जाइटिस के लाखों जीवाणु नथुनों के चारों तरफ, टर्बीनेट साइनस में, काकल पर, जीभ के नीचे और गले में चुपड़ दिये गए। फिर भी रोग लागू पड़ने का एक भी चिह्न मालूम नहीं हुआ।

‘लण्डन लॅन्सेट मॅडिकल जर्नल ऑफ कॅनेडा’ के जून १९१६ के अंक में छह डॉक्टरों के द्वारा किये गए एक ऐसे प्रयोग का उल्लेख है कि जिसमें लगातार ढाई वर्षों तक क्षय, डिप्थेरिया, न्युमोनिया और टाइफाइड के जीवाणु विविध तरीकों से शरीर में उड़ेंले गए। फिर भी किसी रोग के लक्षण उत्पन्न नहीं हुए।

विख्यात डॉक्टर और विएना युनिवर्सिटी में औषधिविज्ञान के प्रोफेसर डॉ. पॅटिन-कॉफर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जीवाणु स्वतंत्र रूप से रोग उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। अपना यह मत उन्होंने अनेक व्याख्यातों एवं लेखों में व्यक्त किया। प्रयोगशाला में डॉक्टरी के विद्यार्थियों को पढ़ाते समय कॉलेरा के करोड़ों जीवित जीवाणुओं से भरा हुआ गिलास पीकर उन्होंने छात्रों को चोंका दिया था।

अस्सी वर्ष की पुख्ता आयु में मृत्यु को प्राप्त होनेवाले कॅलिफॉर्निया के डॉ. थॉमस पॉवेल ने अन्य किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक जीवाणुओं को स्वेच्छा से अपने शरीर में दाखिल कर दिया था। उन्होंने अपने डॉक्टर मित्रों को चुनौती दी थी कि आप किसी भी प्रकार के जीवाणु को मेरे शरीर में दाखिल करके मेरे भीतर कोई बीमारी उत्पन्न नहीं कर सकेंगे। अनेक जीवाणु-शास्त्रियों ने उनका मुँह बन्द करने के लिए वर्षों तक अनेकानेक प्रयत्न किये। उन्हें कॉलेरा, प्लेग तथा अन्य कई प्रकार के जीवाणु खिलाए गए और इंजेक्शनों के द्वारा उनकी नसों में दाखिल किये गए। बार-बार उनका गला छीलकर उस घाव में डिप्थेरिया के जीवाणु रोपे गए; किन्तु डॉ. पॉवेल को एक बार भी कोई रोग लागू नहीं हुआ।

डॉ. वेड्ट ने तथाकथित रोगोत्पादक जीवाणुओं के द्वारा कर्नल पॅक को मार डालने के जो प्रयास किये वह किस्सा भी बहुत मशहूर है। डॉ. वेड्ट अनेक प्रकार के तथाकथित प्राणघातक जीवाणु कर्नल पॅक को खिलाते रहे; किन्तु कर्नल पॅक तो इन जीवाणुओं का आहार करके जैसे और भी अधिक हृष्ट-पुष्ट होते जाते थे। अन्त में परास्त होकर डॉ. वेड्ट को कर्नल पॅक का काँटा दूर करने के लिए क्लॉरोफॉर्म का उपयोग करना पड़ा और तकिये की सहायता लेनी पड़ी।

संक्षेप में, प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान जीवाणुओं को रोगों की उत्पत्ति का कारण नहीं मानता। हम जीवाणुओं को शरीर से दूर रख ही नहीं सकते। श्वासोच्छ्वास, पानी और भोजन के द्वारा केवल एक घण्टे में क्षय, डिप्थेरिया, टाइफाइड, कॉलेरा आदि रोगों के लगभग १४,००० जीवाणु हमारे शरीर में प्रविष्ट होते हैं। फिर हमें ये रोग क्यों लागू नहीं होते? यदि शरीर में इन जीवाणुओं की वंशवृद्धि एवं पोषण के लिए सानुकूल परिस्थिति न हो तो रोग लागू नहीं होते।

वास्तव में बीस मिनट जैसी सीमित अवधि में एक जीवाणु से बढ़कर दो हो जाते हैं। आठ घण्टे में तो यह संख्या बढ़कर एक करोड़ साठ लाख के बराबर हो जाती है और चौबीस घण्टे में तो यह संख्या पाँच हजार अरब तक पहुँच जाती है। जीवाणुओं की इतनी संख्या तो सम्पूर्ण मानव-जाति का संहार कर डालने के लिए पर्याप्त है। यह तो केवल एक जीवाणु की वंशवृद्धि का ही अनुमान है। हम तो प्रति घण्टे ऐसे चौदह हजार जीवाणुओं को शरीर में दाखिल होने देते हैं। किन्तु यदि हमारे शरीर में ऐसे जीवाणुओं के लिए योग्य आहार (विष एवं अन्य दूषित तत्त्व) न हो तो वे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। अन्त में वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

यदि किसी व्यक्ति के शरीर में उल्लेखनीय मात्रा में विषसंचय हुआ हो तो इन जीवाणुओं की वृद्धि होने लगती है। इतना याद रहे कि जब तक हम जीवाणुओं का आहार दूर नहीं करते और उनकी वंशवृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थिति को बदल नहीं डालते तब तक उनसे मुक्ति नहीं पा सकते। अवशिष्ट या बाहर से प्रविष्ट नए जीवाणु बढ़ते ही रहेंगे; क्योंकि उनका पोषण करनेवाले द्रव्य शरीर में विद्यमान हैं।

जीवाणुओं को ऐंण्टिबायोटिक दवाओं से नष्ट करने के प्रयत्न करना निरर्थक एवं दोषपूर्ण है। रोग के मूल कारण अर्थात् विषसंचय को दूर करने के बदले विषैली दवाओं से जीवाणुओं को मारना तो शरीर को विषैले प्रयोगों का युद्ध-क्षेत्र बनाने के समान है। इससे तो शरीर के कोषों पर बुरा असर पड़ता है और प्राणशक्ति क्षीण होती है। रोगों की उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार न हों ऐसे जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए ऐंण्टिबायोटिक दवाओं का सेवन करके प्रतिप्रभावों का खतरा मोल लेना या मौत को गले लगाना समझ-दारी का काम नहीं है। आज से लगभग सौ-सवा सौ वर्ष पहले डॉक्टरों ने अनेक रोगियों को भारी मात्रा में कैलोमल (calomel) नामक भयंकर विष देकर मौत के घाट उतारा था। उस समय यह कार्य विज्ञान के नाम पर किया जाता था। यह कार्य बुरा नहीं माना जाता था; किन्तु आज हम इस कार्य की कठोर शब्दों में निन्दा करते हैं। विज्ञान का मुखौटा लगाकर पेनिसिलीन दवा ने अनेक लोगों के प्राण ले लिये हैं। कई अन्य दवाओं के भी ऐसे ही प्रति प्रभाव हो सकते हैं। क्या हमारे वंशज इस प्रकार की बरबादी के लिए भविष्य में कठोर शब्दों में हमारी निन्दा नहीं करेंगे?

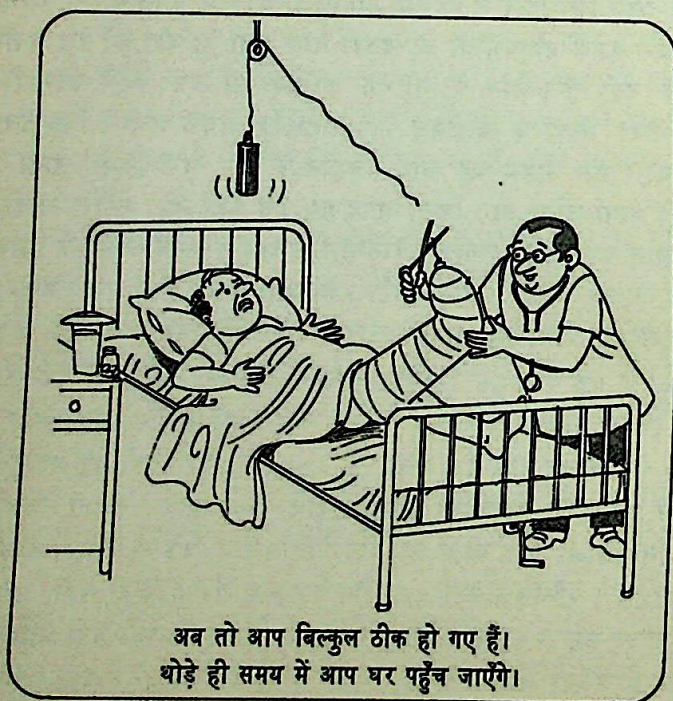
अमेरिका के फूड एण्ड ड्रग ऐडमिनिस्ट्रेशन के डिरेक्टर डॉ. हावर्ड विन्स्टीन के कथनानुसार अमेरिका में प्रतिवर्ष तीन-चार हजार मनुष्य पेनिसिलीन की गंभीर प्रतिक्रिया (reaction) के शिकार होते हैं। उनमें ३०० से ४०० व्यक्तियों की तो मृत्यु हो जाती है। वास्तव में प्रमाणभूत संख्या की अपेक्षा यथार्थ संख्या बहुत बड़ी हो सकती है। अति-शय गंभीर प्रतिक्रियाओं और मौतों का दोष पेनिसिलीन को न देकर बीमारी के माथे मढ़ दिया जाता है। पेनिसिलीन का उपयोग केवल अमेरिका में ही नहीं, अन्य सभी देशों में होता है। विश्व-स्तर पर उसके प्रतिप्रभावों की संख्या कितनी बड़ी होगी इसका तो केवल अनुमान ही किया जा सकता है। इसके अलावा अन्य अनेक दवाएँ भी पेनिसिलीन के जैसी ही जहरीली हैं। उनकी प्रतिक्रिया के उदाहरण भी मिलते हैं। इन घटनाओं

के बावजूद औषधिचिकित्सक ऐसे तर्क करते रहते हैं कि प्रतिप्रभाव (रिएक्शन) सभी को कहाँ होता है ? कभी-कभार किसी को ही होता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि न्यूनाधिक मात्रा में दवाओं का घातक प्रभाव मानव-शरीर पर होता ही है और उनके द्वारा प्राणशक्ति क्षीण होती ही रहती है।

कोई शिक्षित व्यक्ति ये तर्क कर सकता है : (१) यदि जीवाणु रोग उत्पन्न नहीं करते तो फिर संक्रामक रोग कैसे फैलते हैं ? (२) यदि जीवाणु सचमुच प्रकृति के सहायक हों अर्थात् शरीर के भीतरी विषद्रव्यों को बाहर निकाल फेंकने की प्रवृत्ति करते हों तो रोगों से रोगी मरते क्यों हैं ? (३) जीवाणुनाशक दवाओं का सेवन करने के बाद रोगी की स्थिति में सुधार क्यों होता है ?

इन तर्कों का खण्डन क्रमशः निम्नलिखित है :

(१) यह हकीकत जाहिर है कि कारण समान हों तो परिणाम भी समान ही आते हैं। यदि हम अपने समाज से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों के खान-पान, श्वासोच्छ्वास, निद्रा, स्नान, कपड़े, मकान, खेल-कूद आदि आदतों का निरीक्षण करेंगे तो हमें फौरन समझ में आ जाएगा कि उनका रहन-सहन लगभग एक जैसा ही होता है। यदि ये लगभग समान ढंग से रहते हों तो फिर ये सब लगभग समान रूप से ही शक्तिहीन क्यों नहीं बने ? उनके भीतर विषद्रव्यों का जमाव भी एक समान क्यों नहीं होगा ? वे समान लक्षणोंवाले रोगों से पीड़ित क्यों नहीं होंगे ? संक्रामक रोगों के फैलने का यही कारण है।



अब तो आप बिल्कुल ठीक हो गए हैं।
थोड़े ही समय में आप घर पहुँच जाएँगे।

(२) जीवाणु प्रकृति के सहायक हैं यह बात सन्देह रहित है। रोगी के स्वस्थ न होने का कारण यह है कि जीवाणुओं की सहायता से शरीर द्वारा आयोजित रोगनिवारक प्रयासों में हम विविध प्रकार से बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। रूग्णावस्था में शरीर की सारी शक्तियाँ रोगनिवारण में ही लगनी चाहिए। इसके बदले भूख न होने पर भी रोगी को हम लगातार खिलाते रहते हैं। इस प्रकार हम शरीर की शक्ति को पाचनक्रिया में ही नष्ट कर देते हैं। ऐसी स्थिति में रोगी की मृत्यु भी संभव है।

(३) जीवाणुनाशक दवाएँ ग्रहण करने के बाद रोग के लक्षणों का अदृश्य होना या रोगी की शारीरिक स्थिति में सुधार होना तो केवल एक भ्रान्ति है।

सच्चाई तो यह है कि ये दवाएँ शरीर की रोगप्रतिकारक शक्ति को क्षीण कर डालती हैं। परिणामस्वरूप शरीर रोगनिवारण के सक्रिय प्रयत्नों (जिन्हें हम रोग के लक्षण कहते हैं) को छोड़ देता है। इससे उग्र रोग दबकर जीर्ण बन जाता है। संक्षेप में, जीवाणुनाशक दवाओं के सेवन से केवल रोग के लक्षण मन्द पड़ जाते हैं; किन्तु हम मान लेते हैं कि आरोग्य में सुधार हो गया।

प्राकृतिक चिकित्सा का दूसरा बुनियादी सिद्धान्त यह है कि प्रकृति ही रोगनिवारण करती है; दवाएँ या चिकित्सक नहीं। वास्तव में चिकित्सक का समानार्थी अंग्रेजी शब्द फिजीशियन मूल 'फिजिस' शब्द से बना है। 'फिजिस' का अर्थ होता है—प्रकृति। जब तक रोगी के शरीर की प्राकृतिक रोगनिवारक शक्ति को प्रबल नहीं बनाया जाता तब तक दवा आदि अन्य किन्हीं उपायों से रोगी को स्वस्थ नहीं किया जा सकता। इसीलिए प्राकृतिक उपचार में आजमाए जानेवाले सभी उपायों का लक्ष्य एक ही होता है : शरीर की प्राकृतिक रोगनिवारक शक्ति को प्रबल बनाना। ऐसे उपायों में आहार, योग्य व्यायाम, मिट्टी, पानी, मालिश, सूर्यस्नान इत्यादि का समावेश होता है। इन उपचारों की चर्चा आगे के प्रकरणों में की गई है।

विभाग २ : प्राकृतिक चिकित्सा के शास्त्र



६. आहार

क्या आहार का सम्बन्ध स्वास्थ्य के साथ है? यदि है तो वह किस प्रकार का सम्बन्ध है? बहुत कम लोग इन प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर दे सकेंगे। हमारे मन में अपने ही खान-पान के विषय में जो अज्ञान है वह वास्तव में शोचनीय है।

आहार के प्रति ऍलोपथी चिकित्सा-शास्त्र का दृष्टिकोण कुछ स्थूल है। ऍलोपथी के अनुसार मनुष्य को संतुलित आहार का सेवन करना चाहिए; अर्थात् आहार ऐसा होना चाहिए कि जिससे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, चरबी, प्रजीवक एवं क्षार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाएं। इसके बावजूद अधिकांश डॉक्टर अपने रोगियों के आहार के विषय में न तो कोई विशेष ध्यान देते हैं और न ही कोई चिन्ता करते हैं। यदि कोई रोगी खान-पान के विषय में कुछ पूछता भी है तो उसे केवल तीन शब्दों का संक्षिप्त उत्तर देकर टाल दिया जाता है : 'सब कुछ खाइए।'

आयुर्वेद ने मानव के आहार-विहार में कुछ गहराई तक जाने का प्रयत्न किया है। वह आहार का तीन प्रकारों में वर्गीकरण करता है : कफकारक या कफनाशक, पित्तकारक या पित्तनाशक और वातकारक या वातनाशक; यद्यपि, उसमें कुछ मात्रा में हल्का आहार और भारी आहार इस प्रकार का भेद किया गया है। आयुर्वेद का जन्म हजारों वर्ष पूर्व हुआ। उस समय आहार के पृथक्करण की पद्धतियों एवं साधनों का अभाव था। आयुर्वेद के पास ऐसा कोई साधन नहीं था जिससे यह जाना जा सके कि आहार शरीर के भीतर किस प्रकार की जीवरासायनिक प्रक्रियाएँ उत्पन्न करता है। घी, तेल, शक्कर, पाक आदि का विपुल मात्रा में उपयोग करने के सम्बन्ध में उसकी सलाह आज कुछ पुरानी और असंगत प्रतीत होती है। तदुपरान्त आहार को पकाकर खाने का दृष्टिकोण भी अतिरेकपूर्ण जान पड़ता है।

प्राकृतिक चिकित्साशास्त्र के लिए आहार किसी भी रोग के उपचार का मूल-धार है। इस शास्त्र ने खान-पान के लाभ-हानि का सूक्ष्म अध्ययन किया है। योग्य आहार अमृत के समान है और वह मनुष्य का उद्धार कर सकता है, तो दूसरी ओर अयोग्य आहार विष बनकर मनुष्य को मार भी सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा के आहार विषयक दृष्टि-बिन्दु की चर्चा आगे की गई है।

आहार के दो प्रमुख प्रयोजन हैं : (१) शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्व उपलब्ध हों (२) रक्त का अम्ल-प्रतिअम्ल-सन्तुलन बना रहे।

यहाँ इन दोनों प्रयोजनों की विस्तृत छानबीन की गई है :

शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्त्वों की अपरिहार्यता : आहार के पाँच घटक शरीर के लिए आवश्यक हैं : प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स (काँजी और शर्करा), चरबी, प्रजीवक (विटामिन) और खनिज क्षार (मिनरल्स) ।

प्रोटीन : शरीर के विकास, मरम्मत और नवसृजन के लिए प्रोटीन अनिवार्य है। दलहन, दूध, अण्डे, मांस आदि प्रोटीन के प्रमुख प्राप्तिद्रव्य हैं। विविध 'एँमिनो एसिड' के भिन्न-भिन्न संयोजनों से भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रोटीन बनते हैं।

कुल तेईस एँमिनो एसिड हैं। इन में से दस एँमिनो एसिड (आर्जिनाइन, हिस्टिडाइन, आइसोल्यूसीन, ल्यूसीन, लाइसीन, मिथियोनाइन, फॅनिल ऐलेनाइन, थ्रियोनाइन, ट्रिप्टोफॅन और वैलीन) शरीर स्वयं नहीं बना सकता। इन दस एँमिनो एसिड को आवश्यक (essential) एँमिनो एसिड कहा जाता है। ये दसों एँमिनो एसिड बाहर से उपलब्ध कर लेने अनिवार्य हैं। शरीर में विविध एँमिनो एसिड के कार्य और उनके वनस्पतीय प्राप्तिस्थानों से सम्बन्धित कोष्ठक नीचे दिया जाता है :

क्रम	एँमिनो एसिड का नाम	शरीर के किस भाग के लिए उपयोगी	प्राप्ति स्थान
१	ऐलेनाइन (Alanine)	त्वचा, ऐंजिनल ग्रन्थि	रजका, गाजर, सॅलरी, लॅट्युस, ककड़ी, सलगम, हरी काली मिर्च, पालक, सेब, जरदालू, अमरूद, अंगूर, संतरा, स्ट्रॉबेरी, बादाम
२	आर्जिनाइन (Arginine)	स्नायु, कार्टिलेज कोष, जननांग, वृद्धावस्था को रोकने के लिए	रजका, हरे पत्तोंवाली भाजियाँ, गाजर, बीट, ककड़ी, सॅलरी, लॅट्युस, मूली, आलू
३	ऐस्पार्टिक एसिड (Aspartic acid)	हड्डियाँ, दाँत, फेफड़े, हृदय और रक्तनलिकाएँ	गाजर, सॅलरी, ककड़ी, पुदीना, मूली, नींबू, सलगम, ग्रेपफ्रूट, सेब, जरदालू, अनानास, कलींदा, बादाम, टमाटर
४	सिस्टाइन (Cystine)	बाल, रक्त के लाल कण, स्तन, जीवन-शक्ति की वृद्धि	रजका, गाजर, बीट, पत्तागोभी, फूलगोभी, प्याज, लहसुन, सेब, अनानास, रास्पबेरी, किसमिस
५	ग्लूटॅमिक एसिड (Glutamic acid)	पैन्क्रियास, पाचक रसों के स्राव में, पाण्डुरोग की रोकथाम में	गाजर, सलगम, पत्तागोभी, सॅलरी, बीट, पुदीना, लॅट्युस, पालक, पपीता
६	ग्लाइसिन (Glycine)	कार्टिलेज कोष, स्नायु, यौन स्रावों के नियंत्रण में	गाजर, सलगम, सॅलरी, पुदीना, पालक, रजका, लहसुन, आलू, अंजीर, संतरा, रास्पबेरी, अनार, कलींदा, बादाम
७	हिस्टिडाइन (Histidine)	यकृत, हिमोग्लोबिन, वीर्य	मूली, गाजर, बीट, सॅलरी, ककड़ी, लहसुन, प्याज, सलगम, रजका, पालक, सेब, अनानास, अनार, पपीता
८	हाईड्रॉक्सी ग्लूटॅमिक एसिड (Hydroxy-glutamic acid)	पाचक रसों के स्राव में	गाजर, पुदीना, लॅट्युस, पालक टमाटर, अंगूर, रास्पबेरी, प्लम

क्रम	ऐमिनो एसिड का नाम	शरीर के किस भाग के लिए उपयोगी	प्राप्ति-स्थान
९	हाईड्रॉक्सी प्रोलाइन (Hydroxy proline)	यकृत, पित्ताशय, रक्त के लाल कणों के लिए	गाजर, बीट, लेंदुस, सलगम, ककड़ी, जरदालू, चैरी, अंजीर, मूली, अंगूर, ऑलिव, अनानास, बादाम, नारियल
१०	आयोडो गॉर्गोइक एसिड (Iodogorgoic acid)	शरीर के भीतर की विविध ग्रन्थियों में	गाजर, सेंलरी, पालक, टमाटर, लेंदुस, अनानास
११	आइसोल्याूसिन (Isoleucine)	थाइमस, प्लीहा, पिच्यु-टरी ग्रन्थि, हिमोग्लोबिन, चयापचय के नियंत्रण में	पपीते, ऑलिव, नारियल, बादाम, जरदालू, पिस्ता, अखरोट
१२	ल्यूसिन (Leucine)	आइसोल्याूसिन को सन्तु-लित रखने के लिए	नं. ११ के अनुसार
१३	लाइसिन (Lycine)	यकृत, पित्ताशय, चरबी, के चयापचय में, शरीर की कुछ प्रक्रियाओं के लिए, वृद्धावस्था को रोकने में	गाजर, बीट, ककड़ी, सेंलरी, पुदीना, पालक, सलगम, रजका, अंकुरित सोयाबीन, पपीते, सेब, जरदालू, नाशपाती, अंगूर
१४	मिथियोनाइन (Methionine)	हिमोग्लोबिन, प्लीहा, पैंक्रियास	पत्तागोभी, फूलगोभी, लहसुन, अनानास, सेब
१५	नॉरल्यूसिन (Norleucine)	ल्यूसिन को सन्तुलित रखने के लिए	—
१६	फेनिलैलेनाइन (Phenylalanine)	विजातीय द्रव्यों के निष्कासन के लिए, किडनी, मूत्राशय	गाजर, बीट, पालक, पुदीना, टमाटर, अनानास, सेब
१७	प्रोलाइन (Proline)	रक्त के श्वेतकणों के लिए	गाजर, बीट, लेंदुस, सलगम, ककड़ी, जरदालू, चैरी, अंजीर, अंगूर, ऑलिव, संतरा, अनानास, नारियल, बादाम
१८	सेराइन (Serine)	श्लेष्मावरण, फेफड़े, ब्रॉन्काई	मूली, लहसुन, प्याज, गाजर, बीट, सेंलरी, ककड़ी, पुदीना, पालक, पत्तागोभी, रजका, पपीते, सेब, अनानास
१९	थ्रीओनाइन (Threonine)	अन्य ऐमिनो एसिड की क्षति पूर्ति के लिए	गाजर, रजका, हरे पत्तोवाली भाजियाँ, पपीते
२०	थायरोक्सिन (Thyroxine)	थाइरोइड, पिच्युटरी और एंड्रिनल ग्रन्थियाँ, चयापचय के नियंत्रण में	गाजर, सेंलरी, लेंदुस, पालक, सलगम, टमाटर, अनानास
२१	ट्रिप्टोफेन (Tryptophane)	कोशों के नवनिर्माण में, पाचक रसों के निर्माण में, ओंखें	गाजर, बीट, सेंलरी, पालक, रजका, सलगम
२२	टाइरोसिन (Tyrosine)	लाल एवं श्वेत कण, बाल, एंड्रिनल, पिच्युटरी और थाइरोइड ग्रन्थियाँ	रजका, गाजर, बीट, ककड़ी, लेंदुस, पुदीना, हरी काली मिर्च, पालक, स्टोबेरी, जरदालू, चैरी, सेब, कलीदा, अंजीर, बादाम
२३	वैलाइन (Valine)	स्तन, अण्डकोष	गाजर, सलगम, लौकी, सेंलरी, बीट, पुदीना, टमाटर, सेब, अनार, बादाम

अनेक आहारशास्त्रियों का ऐसा मत है कि मांसाहार से उपलब्ध प्राणिज प्रोटीन प्रथम कक्षा का एवं पूर्ण होता है; जबकि वनस्पति से प्राप्त होनेवाला प्रोटीन द्वितीय कक्षा का और अपूर्ण होता है। इस मान्यता का कारण यह है कि मांसाहार में लगभग सभी 'आवश्यक ऐमिनो एसिड' पाए जाते हैं; जबकि किसी भी एक वनस्पतीय खाद्य पदार्थ में सभी 'आवश्यक ऐमिनो एसिड' नहीं होते। इस हकीकत के कारण उपर्युक्त आहारशास्त्री लोगों को मांसाहार करने की सलाह देते हैं। उनका ऐसा आग्रह होता है कि शाकाहारियों को दूध का ज्यादा सेवन करना चाहिए ताकि प्रथम कक्षा का प्रोटीन उपलब्ध हो सके और शरीर का भली-भाँति पोषण हो सके।

किन्तु मांसाहार एवं दूध का यह आग्रह भ्रान्तिपूर्ण है। भिन्न-भिन्न वनस्पतीय खाद्यपदार्थों का उचित संयोजन करने से हम सभी 'आवश्यक ऐमिनो एसिड' प्राप्त कर सकते हैं। एक खाद्यपदार्थ में 'लाइसाइन' नामक ऐमिनो एसिड की कमी हो किन्तु उसमें ट्रिप्टोफेन पर्याप्त हो। इसी प्रकार अन्य खाद्यपदार्थ में ट्रिप्टोफेन की कमी हो किन्तु लाइसाइन पर्याप्त होता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न खाद्यपदार्थों को मिश्रित करके खाने से आवश्यक सभी ऐमिनो एसिड की पूर्ति एक-दूसरे के द्वारा की जा सकती है। जैसे, आहार में यदि गेहूँ और साग-भाजी एक साथ ग्रहण किये जाएँ तो दोनों में अवस्थित प्रोटीन मिलकर प्रथम कक्षा का प्रोटीन बनता है। संक्षेप में, केवल वनस्पतीय खाद्यपदार्थों का सेवन करनेवाला व्यक्ति किसी एक प्रकार के ऐमिनो एसिड की कमी से पीड़ित होगा यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण है। यह सच है कि मांसाहार से उच्च कक्षा का प्रोटीन उपलब्ध होता है, किन्तु ऐसे आहार के अनेक गैरफायदे भी हैं।

मांसाहार से शरीर को आवश्यकता से अधिक प्रोटीन प्राप्त होता है। प्रोटीन का अतिरेक अनेक रोगों का मुख्य कारण है यह निर्विवाद है। सुप्रसिद्ध आहारशास्त्री डॉ. चिट्टनडन लिखते हैं कि, "अधिक प्रोटीन के सेवन से शरीर में युरिक एसिड बनता है जो आरोग्य के लिए हानिकारक है। मानव-जाति के अनेक रोगों के मूल में प्रोटीन का अतिरेक है।"

डॉ. हाइण्डहिड के मतानुसार जब अतिशय प्रोटीन रक्त में प्रविष्ट होता है तब उसका विभाजन और रूपान्तर नाइट्रिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड और फॉस्फोरिक एसिड में होता है। इन एसिडों को निष्क्रिय करने के लिए शरीर को अपने क्षारों का व्यय करना पड़ता है। परिणामस्वरूप दाँत, हड्डियाँ, बाल और नाखूनों में क्षारों की कमी उत्पन्न होती है। उपर्युक्त एसिड यकृत और मूत्रपिण्ड (किडनी) में इतनी अधिक खराबी पैदा करते हैं कि कभी-कभी तो वे जानलेवा भी सिद्ध होते हैं।

डॉ. हाइण्डहिड ने अनेक राष्ट्रों की भिन्न-भिन्न जातियों के आहार का सूक्ष्म अध्ययन किया। उन्होंने ऐसा निष्कर्ष निकाला कि जिन देशों में कम प्रोटीनवाले आहार का सेवन किया जाता है वहाँ रोगों की मात्रा कम होती है। अपने इस मत के समर्थन के लिए प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करने का अवसर डॉ. हाइण्डहिड को प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्राप्त हो गया।

उस समय वे डेन्मार्क (युरोप) में फूड ऐडमिनिस्ट्रेटर थे। डेन्मार्कवासियों के आहार में से प्रोटीन की मात्रा को अत्यधिक कम करके उन्होंने एक ही वर्ष में मृत्यु की मात्रा लगभग ४० प्रतिशत कम कर दी। डॉ. हाइण्डहिड सीना ठोककर कहते थे कि यदि स्वस्थ रहना हो और लम्बे समय तक जीना हो तो पुष्ट आयुवाले किसी भी मनुष्य को प्रतिदिन २० ग्राम से अधिक प्रोटीन का सेवन नहीं करना चाहिए। कई आहारशास्त्री प्रतिदिन ६० से १०० ग्राम प्रोटीन लेने का परामर्श देते हैं उसके आगे यह विधान लाल झण्डी दिखाता है।

सुप्रसिद्ध बॅटलक्रीक स्वास्थ्यगृह के स्थापक डॉ. जे. एच. कॅलॉग लिखते हैं कि अमेरिका और अन्य विकसित देशों में मूत्रपिण्डों के रोग (ब्राइट्स डिजीज) से मरनेवाले मनुष्यों की तादाद बहुत अधिक बढ़ गई है, जिसका एक मात्र कारण आवश्यकता से अधिक मांसाहार है। मांसाहार में प्रोटीन विपुल मात्रा में होता है।

डॉ. स्कवायर और डॉ. न्यूबर्ग नामक वैज्ञानिकों ने प्रोटीनयुक्त आहार के मूत्रपिण्डों पर पड़नेवाले प्रभाव का गहरा अध्ययन किया है। एक प्रयोग के अन्तर्गत उन्होंने पाँच स्वस्थ मनुष्यों को दोनों वक्त के भोजनों में एक-एक पाउण्ड ($\frac{1}{2}$ किलो) मांस देने की शुरुआत की। प्रयोग के पूर्व इन मनुष्यों के मूत्र-परीक्षण में कोई भी असामान्यता प्राप्त नहीं हुई थी; किन्तु प्रयोग शुरू करने के बाद कुछ ही दिनों बाद इन मनुष्यों के मूत्र में लाल रक्तकण और आल्ब्युमिन की उपस्थिति स्पष्ट मालूम हुई।

डॉ. चिट्टनडन का यह विधान ध्यान देने योग्य है कि आहार में से प्रोटीन की मात्रा कम करने से शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियाँ बढ़ती हैं, अधिक लम्बे समय तक श्रम करने के बावजूद थकावट नहीं लगती और रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

एक अन्य बात भी विचारणीय है। मांसाहार के प्रोटीन में 'मिथियोनाइन' नामक ऐमिनो एसिड अत्यधिक मात्रा में होता है। यदि शरीर में 'मिथियोनाइन' का चयापचय योग्य रूप में नहीं होता तो अन्त में रक्तनलिकाएँ सँकरी और कठोर हो जाती हैं (atherosclerosis)। फलस्वरूप हृदयरोग का आक्रमण होता है—अनेक अनुसंधान-कर्ताओं का ऐसा ही मत है। मांसाहार में कॉलेस्टरोल भी अतिशय मात्रा में होता है। प्राणिज उत्पादन होने से दूध भी उपर्युक्त क्षतियों से मुक्त नहीं है यह हकीकत प्रत्येक शाकाहारी को ध्यान में रखनी चाहिए।

कार्बोहाइड्रेट्स : शरीर को उष्णता एवं कार्यशक्ति की पूर्ति करने का कार्य कार्बोहाइड्रेट्स करते हैं। धान्य, कन्दमूल, दलहन, दूध आदि कार्बोहाइड्रेट्स के प्रमुख प्राप्ति-स्थान हैं।

प्राकृतिक एवं मूल स्वरूप में कार्बोहाइड्रेट्स का उपयोग करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती; किन्तु प्रक्रियावाले (processed) कार्बोहाइड्रेट्स का उपयोग इच्छनीय नहीं है। चोकररहित आटा, मिल में कूटे हुए चावल, मैदा, सफेद (refined) शक्कर आदि की गणना प्रक्रियायुक्त खाद्यपदार्थों में की जा सकती है। प्रक्रियाओं के

कारण इन खाद्यपदार्थों में से रेशातत्त्व और छूँछ (roughage) अदृश्य हो जाते हैं। ऐसा होने से शरीर में से मलविसर्जन ठीक से नहीं होता। इस कारण रक्त में विष-तत्त्वों का संचय होने लगता है। डिब्बों एवं बोतलों में पॅक किये गए फल, फल-रस, टमाटर केचअप, जाम, जेली, इन्स्टंट गुलाब जामुन, इन्स्टंट रसगुल्ले तैयार आटा, केक, चॉकलेट, आइसक्रीम, डबलरोटी, बिस्कुट, पिपरमींट आदि प्रक्रिया युक्त कार्बो-हाइड्रेट्स खाकर हम आरोग्य को भारी हानि पहुँचा रहे हैं। ऐसा आहार विशेष मात्रा में खाया जा सकता है, जिससे पाचन-अवयवों पर विशेष एवं अनिष्ट बोझ आ पड़ता है। अधिक खाने से स्थूलता उत्पन्न होती है जो बाद में डायाबिटीस या जोड़ों के रोगों को जन्म देती है। परिणामस्वरूप हमेशा के लिए भयंकर रोगों का शिकार होना पड़ता है।

चरबी : चरबी भी शरीर को मुख्यतः गर्मी एवं शक्ति प्रदान करती है। घी और तेल चरबी के मुख्य प्राप्तिस्थान हैं।

चरबी दो प्रकार की होती है : संतृप्त (saturated) और असंतृप्त (unsaturated)। संतृप्त चरबी का अधिक मात्रा में सेवन करने से रक्तनलिकाएँ सँकरी और सख्त हो जाती हैं। परिणामस्वरूप उच्च रक्तचाप, हृदयरोग आदि तकलीफें उत्पन्न होती हैं। इसीलिए आहार में से संतृप्त चरबीवाले खाद्यपदार्थों की मात्रा कम कर देनी चाहिए। उसके स्थान पर असंतृप्त चरबी का उपयोग किया जा सकता है।

संतृप्त और असंतृप्त चरबीवाले खाद्यपदार्थों की सूची नीचे दी जाती है :

संतृप्त चरबीवाले खाद्यपदार्थ	असंतृप्त चरबीवाले खाद्यपदार्थ
(क) घी, मक्खन, वनस्पति घी (वेजिटेबल), नारियल का तेल, पामतेल	मूँगफली का तेल, तिल का तेल, मक्के का तेल, सोयाबीन तेल, करड़ी का तेल, बिनौले का तेल,
(ख) मक्खनवाला दूध, मलाई, मावा, मावे, घी और वनस्पति की मिठाइयाँ, पूर्ण दूधवाले पदार्थ (जैसे, श्रीखंड, रबड़ी, आइसक्रीम, पेड़ा इत्यादि)	सूर्यमुखी का तेल और इन तेलों में बने हुए व्यंजन।
(ग) चॉकलेट, केक, बिस्कुट, वेफर।	
(घ) अंडे, चरबीवाला मांस, सीप-मछली।	

भिन्न-भिन्न खाद्यपदार्थों में चरबी और कॉलेस्टेरॉल की मात्रा दशनिवाला कोष्ठक नीचे दिया गया है :

कुछ खाद्यपदार्थों में चरबी व कॉलेस्टेरॉल की मात्रा

खाद्यपदार्थ	अनुमानित मात्रा	वजन ग्राम	कुल चरबी ग्राम	संतृप्त चरबी ग्राम	असंतृप्त चरबी		कॉलेस्टेरॉल मिग्रा
					ओलिक एसिड ग्राम	लिनोलिक एसिड ग्राम	
१. यकृत	१ औंस	३०	१.५	०.४	अल्प	अल्प	७५
२. मुजर का मांस	१ ३/४ औंस	४०	१७.६	६.४	७.६	१.६	४५
३. अंडा	१	५०	६.०	२.०	२.५	०.५	२५३
४. सीप-मछली	१ औंस	३०	१.९	०.६	१.०	०.३	४५
५. होल दूध	१ कप	२४०	८.५	४.९	३.६	—	२७
६. स्किम्ड (मक्खन निकाला हुआ दूध)	१ कप	२४०	—	—	—	—	७
७. केक	१ टुकड़ा	५०	१४.०	२.०	—	०.५	४५
८. बिस्कुट	१	३५	६.५	२.३	—	०.८	१७
९. आइसक्रीम	३ कप	७५	९.०	५.०	३.४	—	४३
१०. मक्खन	एक चम्मच	५	४.०	२.३	१.२	—	१२
११. नारियल-तेल	एक चम्मच	५	५.०	४.४	०.५	०.१	—
१२. करडी तेल	एक चम्मच	५	५.०	०.४	१.०	३.६	—
१३. विनोला-तेल	एक चम्मच	५	५.०	१.३	१.२	२.५	—
१४. मूंगफली-तेल	एक चम्मच	५	५.०	०.९	१.६	१.५	—
१५. मकाई-तेल	एक चम्मच	५	५.०	०.५	१.८	२.७	—
१६. सोयाबीन-तेल	एक चम्मच	५	५.०	०.८	१.६	२.६	—
१७. तिल का तेल	एक चम्मच	५	५.०	०.९	१.०	२.१	—

प्रजीवक और क्षार—शरीर को इन तत्त्वों की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता पड़ती है, किंतु वे अतिशय महत्त्वपूर्ण हैं। ये तत्त्व शरीर में विविध प्रकार से काम करते हैं। कार्बोडिड पदार्थ, प्रोटीन और चरबी का भली-भाँति पाचन हो, पाचन के बाद उनका भली-भाँति अभिशोषण हो और शरीर की रोगप्रतिकारक शक्ति का विकास हो इसके लिए प्रजीवक अनिवार्य हैं। भिन्न-भिन्न क्षार (minerals) शरीर के कोशों की संरचना के लिए आवश्यक हैं। स्वस्थ शरीर के लिए तो ये सभी तत्त्व आवश्यक हैं ही, किंतु बीमारी में तो इनकी सविशेष आवश्यकता होती है। प्रजीवक और क्षारों की कमी से अनेक प्रकार की तकलीफें खड़ी होती हैं।

बीमारी में शरीर का प्रजीवक-संग्रह शीघ्रता से कम होने लगता है। अयोग्य आहार, मानसिक संताप, प्रदूषण एवं धूम्रपान, मद्यपान और चरस-गाँजे का सेवन आदि व्यसन शरीर के प्रजीवकों को नष्ट करनेवाले अन्य परिवल हैं। एक अनुसंधान से सिद्ध हुआ है कि केवल एक सिगरेट धूम्रपान करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में से लगभग २५ मि. ग्रा. प्रजीवक 'सी' नष्ट कर देती है। अन्य प्रजीवक भी इसी प्रकार नष्ट होते हैं। अन्य व्यसन भी शरीर में से प्रजीवकों को नष्ट करते हैं। मानसिक परेशानी और संताप वर्तमान युग में अति सामान्य बन गए हैं। इनके कारण भी मनुष्यों की प्रजीवकों की आवश्यकताएँ अनेक गुना बढ़ी हैं। अयोग्य आहार और छोटी-छोटी तकलीफों के लिए सल्फा, एंफिटबायोटिक्स और कॉर्टिजोन आदि दवाओं का उपयोग भी शरीर के प्रजीवक-संग्रह को हानि पहुँचाता है।

इन हकीकतों से स्पष्ट होता है कि प्रजीवकों और क्षारों की आवश्यकता मनुष्य को पहले कभी इतनी नहीं थी जितनी आज है। ये तत्त्व अपक्व आहार, अंकुरित धान्यों और दलहन, फल, साग-भाजी तथा उनके रसों में से आसानी से मिल सकते हैं।

आहार को पकाने से प्रजीवक भारी मात्रा में नष्ट होते हैं। इसी प्रकार फल और सागभाजी काटकर रखने से भी प्रजीवक शीघ्रता से कम होने लगते हैं।

कई आहारशास्त्री ऐसा तर्क करते हैं कि प्रजीवक 'बी_{१२}' केवल मांसाहार से ही प्राप्त हो सकता है, किंतु वे इस हकीकत को भूल जाते हैं कि मांस कच्चा नहीं खाया जाता और पकाने से उसका अधिकांश प्रजीवक 'बी_{१२}' नष्ट हो जाता है।

प्राकृतिक खाद्यपदार्थों में प्रजीवक सजीव और सुपाच्य रूप में होते हैं। इसलिए वे शरीर में तुरंत और संपूर्ण रूप से आत्मसात् हो जाते हैं। जबकि कृत्रिम प्रजीवक (अर्थात् तैयार गोलियाँ) लेने से अपेक्षित लाभ नहीं होता ऐसा अनेक प्रयोगों द्वारा निर्णायक रूप से सिद्ध हो चुका है। इसी प्रकार प्राकृतिक आहार में अवस्थित जीवंत क्षार 'कोलॉइड' स्वरूप (Colloidal form) में होते हैं और वह शरीर में तुरंत आत्मसात् हो जाते हैं। शरीर कृत्रिम क्षारों का विशेष उपयोग नहीं कर सकता। संक्षेप में, यदि शरीर में क्षारों की कमी हो तो दवाओं से उसकी पूर्ति नहीं की जा सकती।

प्रजीवक और क्षार—प्रजीवकों और क्षारों के कार्य, उनके प्राप्तिस्थान और उनके अभाव से होनेवाली तकलीफों को नीचे के कोष्ठक से भली-भाँति समझा जा सकता है—

प्रजीवक (विटामिन)

प्रजीवक (विटामिन)	पुष्ता उन्न वाले व्यक्तियों के लिए दैनिक आवश्यकता	कार्य	प्राप्तिस्थान	कमी के लक्षण
प्रजीवक 'ए'	४०००-५००० अन्तर-राष्ट्रीय इकाई	यह प्रजीवक शरीर के कुछ कोशों के विकास एवं रक्षण के लिए आवश्यक है। आँखों के स्वास्थ्य के लिए भी यह अनिवार्य है। रात्रि की दृष्टि भी इसी पर निर्भर है। तदुपरांत हड्डियों के सामान्य विकास और दंतों की संरचना के लिए भी यह आवश्यक है।	दूध, पत्तीर, मक्खन, हरे पत्तों वाली भाजियाँ, पत्तागोभी, गाजर, माल-भिले फल तथा सब्जियों से यह प्राप्त होता है। तदुपरांत कुछ मछलियों के तिल के तेल में यह विपुल मात्रा में होता है (जैसे कोड लिवर ऑइल)।	प्रजीवक 'ए' की कमी से शरीर का विकास मंद पड़ जाता है; आँखों त्वचा शुष्क हो जाती है, रक्तवी उतपन्न होती है; दंत-हड्डियों की विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं।
प्रजीवक 'बी'	प्रत्येक अनुमानतः ०.५ से ५ मि. ग्रा.	इस समूह के प्रजीवक शरीर के विकास, श्रृंख, पाचन, आँखों के आरोग्य, त्वचा की तनुवृद्धि तथा पाण्डुरोग की रोकथाम के लिए आवश्यक है।	दूध, ग्रीस्ट, गेहूँ का चोकर, अश्रुति गेहूँ, हरे पत्तोंवाली भाजियाँ, ताजी सब्जियाँ-फल, दलहन इत्यादि प्रजीवक बी के प्राप्तिस्थान हैं। तदुपरान्त यह अण्डे, मांस (विशेषतः लिबर) और मछली से प्राप्त होता है।	प्रजीवक बी की कमी से बरी-बरी नामक रोग उत्पन्न होता है। प्रजीवक बी _१ की कमी से आक्-नाक-मुँह के आसपास की त्वचा फट जाती है। निरिरी की कमी से पैनाग्रा नामक रोग होता है और आनतुओं की विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रजीवक बी _२ की कमी से पाण्डुरोग तथा चर्मरोग होते हैं। पैन्थोथिनिक एसिड की कमी से शरीर में चयापचय की क्रिया अस्त-व्यस्त होती है। बायोटीन और फोलेसीन की कमी के लक्षण पैन्थोथिनिक एसिड की कमी के लक्षणों के समान ही होते हैं। प्रजीवक बी _{१२} की कमी से शरीर का विकास मंद पड़ जाता है और प्राणघातक पाण्डुरोग उत्पन्न होता है।

प्रजीवक (विटामिन)	प्रुक्ता उच्च वाले व्यक्ति के लिए दैनिक आवश्यकता	कार्य	प्रातिस्थान	कमी के लक्षण
प्रजीवक 'सी'	४५ मि. ग्रा.	यह प्रजीवक शरीर के विकास के लिए अनिवार्य है। हड्डियों और दंतों की संरचना में भी यह योग देता है। वह विविध कोशों को एक-दूसरे के साथ संलग्न रखने में मदद करता है, घावों को भरता है, शरीर की रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ाता है। शरीर में स्टीरॉइड हॉर्मोनों के निर्माण के साथ भी यह सम्बद्ध है।	छटे-मीठे फलों, ऑवलॉ, टमाटरों, तरबूज, अमरूद, पत्तागोभी, अनानास, आलू तथा हरे पत्तों वाली भाजियों से प्रजीवक 'सी' प्राप्त होता है।	इस प्रजीवक की कमी से स्कर्वी नामक रोग होता है; तदुपरांत दंत-मसूड़ों की तकलीफ, आंतरिक रक्त-स्राव, हड्डियों की घनता में कमी, वजन में कमी और वन्ध्यत्व भी उत्पन्न हो सकता है।
प्रजीवक 'डी'	३००-४०० अंतरराष्ट्रीय इकाई	यह प्रजीवक शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है। हड्डियों और दंतों की संरचना में यह बहुत ही महत्वपूर्ण भाग अदा करता है।	सूर्य-प्रकाश प्रजीवक 'डी' का सबसे अच्छा प्रातिस्थान है। इसके उपरांत दूध, अंडों और कुईक मछलियों के लिबर के तेलों में भी यह होता है।	प्रजीवक 'डी' की कमी से हड्डियों की घनता कम हो जाती है। परिणामतः बालकों में रिकेट्स नामक रोग होता है।
प्रजीवक 'ई'	१२-१५ अंतरराष्ट्रीय इकाई	यह प्रजीवक प्रजनन के लिए महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त यह रक्त के लालकणों को मजबूत बनाता है और उन्हें दूटने से बचाता है।	दूध अंकुरित गेहूँ, हरे पत्तों वाली भाजियों, वनस्पति तेल, सूखे मेवे और अण्डों से यह प्रजीवक प्राप्त होता है।	इस प्रजीवक की कमी से वन्ध्यत्व उत्पन्न हो सकता है।
प्रजीवक 'के'	१-२ मि. ग्रा.	रक्त को जमाने वाले, प्रोथ्रोम्बिन नामक पदार्थ के उत्पादन के लिए यह प्रजीवक अनिवार्य है।	गेहूँ के चोकर, हरे पत्तों वाली भाजियों, टमाटर, फूलगोभी, सोयाबीन तेल, वनस्पति तैलों और प्राणियों के लिबर से यह प्रजीवक उपलब्ध होता है।	इस प्रजीवक की कमी हो तो प्रोथ्रोम्बिन नहीं बन सकता। परिणाम स्वरूप रक्त जम नहीं पाता; छोटी-सी चोट लगने पर भी काफी रक्त-स्राव होता है।

खनिज क्षार (मिनरल्स)

खनिज	पुष्का उच्च वाले व्यक्ति के लिए दैनिक आवश्यकता	कार्य	प्राप्तिस्थान	कमी के संभावित लक्षण
कैल्शियम	२०० मि. ग्रा.	लगभग ९९ % कैल्शियम हड्डियों और दंतों में है। कोशों में विविध तत्वों के आगमन के लिए भी आवश्यक है।	दूध और दूध से बने पदार्थ, भेभी, सहिजन आदि भाजियाँ, चुकन्दर, अजोरा, द्राक्ष, तरबूज, बाजरी, तिल तथा उर्दद कैल्शियम के अच्छे प्राप्ति-स्थान हैं। तदुपरान्त कुछ मछलियों और सीपियों के कोशों में काफी कैल्शियम होता है।	कैल्शियम की कमी से हड्डियों और दंत कमजोर हो जाते हैं, उनकी घनता कम हो जाती है (osteoporosis)
फॉस्फरस	२०० मि. ग्रा.	लगभग २० % फॉस्फरस हड्डियों और दंतों में है। फॉस्फरस शरीर के प्रत्येक कोष का एक महत्वपूर्ण घटक है। रक्त के pH को सुरक्षित रखने में यह सहायता करता है। तदुपरान्त जीवन के लिए अनिवार्य DNA, RNA और ATP जैसे पदार्थों के निर्माण के लिए यह जरूरी है।	दूध, पनीर, गीस्ट, सूखा मेवा, सोया-बीन, खजूर, गाजर, अमरुद इत्यादि फॉस्फरस के प्राप्तिस्थान हैं, तदुपरान्त यह अण्डों, मछलियों और मांस में से भी प्राप्त होता है।	फॉस्फरस की कमी से हड्डियों और दंत दुर्बल बनते हैं तथा शरीर का वजन कम होने लगता है।
पोटैशियम	२५०० मि. ग्रा.	पोटैशियम कोशों के अन्दरूनी प्रवाही का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह कार्बोवित पदार्थों और प्रोटीन के चयापचय के लिए जरूरी है। रक्त के pH को बनाए रखने में भी वह सहायता करता है।	ताजे फलों, दूध, लहसुन, भूरी, आलू और मांस में से काफी पोटैशियम प्राप्त हो जाता है।	पोटैशियम की कमी से स्नायुओं की निर्बलता या पक्षाघात, हड्डियों की जरूरत, वन्ध्यत्व और हृदय तकलीफें उत्पन्न हो सकती हैं।
सोडियम	२५०० मि. ग्रा.	कोशों के बाहरी प्रवाही का यह महत्वपूर्ण घटक है। लगभग ३० से ४० प्रतिशत सोडियम हड्डियों में है।	नमक, दूध, चुकन्दर, गाजर, फलसी इत्यादि में सोडियम होता है। तदुपरान्त यह अण्डों, मांस और मछलियों में से भी प्राप्त होता है।	सोडियम की कमी से सिर का दर्द, उबकाई, शारीरिक विकास की मंदता तथा स्नायुओं की तकलीफें उत्पन्न हो सकती हैं।

खनिज	पुष्का उच्च वाले व्यक्ति के लिए दैनिक आवश्यकता	कार्य	प्राप्तिस्थान	कमी के संभावित लक्षण
लोह	१० मि. ग्रा.	लगभग ७० % लोह रक्त के हिमोग्लोबिन में स्थित है। अन्य २६ % लोह का संग्रह लिबर, प्लीहा और हड्डियों में होता है। लोहे के बिना शरीर के कोष प्राणवायु का आदान-प्रदान नहीं कर सकते।	मेथी, पोदीना और अन्य हरी भाजियाँ, तिल, बाजरी, चना, सूँग, उड़द, सोया-बीन, खजूर, आम इत्यादि लोह के अच्छे प्राप्तिस्थान हैं। तदुपरान्त यह अण्डों, मांस, प्राणियों के लिबर, सीपी की मछलियों आदि में प्राप्त होता है।	पाण्डुरोग (ऐनीमिया) लोह की कमी का प्रमुख लक्षण है।
सल्फर (गंधक)	३०० मि. ग्रा.	यह प्रोटीन और कुछ प्रजीवकों का एक घटक ही सल्फर है। यह शरीर में चयापचय के लिए भी आवश्यक है।	चुकंदर, पतागोभी, मूली, सहसुन, प्याज, दूध और मांसाहारी खाद्यपदार्थ गंधक के प्राप्तिस्थान हैं।	सल्फर की कमी से शरीर में चयापचय की कुछ न्यूनताएँ उत्पन्न होती हैं।
मैनेशियम	३५० मि. ग्रा.	लगभग ५० % मैनेशियम हड्डियों में होता है। शेष ५० % कोषों के अन्दर होता है। मैनेशियम शरीर में अनेक ऐन्जाइमों को सक्रिय करता है; इसीलिए शरीर की अनेक क्रियाएँ उस पर आधारित हैं।	दूध, अनाज, हरी सागभाजियाँ, सूखे मेवों और मांस में मैनेशियम स्थित है।	मैनेशियम की कमी से हड्डियाँ, दाँत और स्नायु कमजोर हो जाते हैं। इसकी कमी हृदय के विकार भी उत्पन्न करती है।
क्लोरीन	२००० मि. ग्रा.	यह तत्त्व सोडियम के सहयोग में काम करता है। यह तत्त्व कोषों के बाहरी प्रवाही का एक मुख्य घटक है। यह शरीर के कुछ ऐन्जाइमों को सक्रिय बनाता है। आहार को पचाने वाले जठररस का यह एक घटक है।	नमक, दूध, गाजर, जर्दाळू, चुकंदर, फनसी, आलू, पालक, पतागोभी, टमाटर, केले, खजूर इत्यादि में क्लोरिन स्थित है। तदुपरान्त अण्डों, मांस और समुद्री मछली में क्लोरिन पाया जाता है।	इसकी कमी से हड्डियाँ कमजोर होती हैं और सन्निवृत्त अकड़ जाते हैं।
आयोडिन	०.१४ मि. ग्रा.	यह थाइरोइड ग्रन्थि के साव का एक घटक है।	यह समुद्री खाद्यपदार्थों और हरी भाजियों से प्राप्त होता है।	आयोडिन की कमी से थाइरोइड ग्रन्थि का कार्य अस्तव्यस्त हो जाता है और गॉइटर नामक रोग होता है।

रक्त की अम्ल और प्रतिअम्ल समतुला (acid and alkali balance) : रक्त में सामान्यतः अम्लों की मात्रा २० प्रतिशत तथा प्रतिअम्लों (क्षारों) की मात्रा ८० प्रतिशत होती है। अम्लों और क्षारों का इतना प्रतिशत स्वस्थता के लिए अनिवार्य है। उसे बनाए रखने के लिए शरीर हर संभव प्रयत्न करता है।

हम जिन खाद्यपदार्थों का सेवन करते हैं उनमें से कई खाद्यपदार्थ पाचन और चयापचय के अन्त में शरीर में क्षारीय अवशेष (alkaline residues) छोड़ जाते हैं; तो कई खाद्यपदार्थ पाचन के अन्त में अम्लीय अवशेष (acidic residues) छोड़ते जाते हैं। इन दो प्रकार के खाद्यपदार्थों को क्रमशः क्षारान्त एवं अम्लान्त कहा जा सकता है। सामान्यतः पाचन एवं चयापचय के अन्त में उत्पन्न अम्लों (युरिक एसिड, लैक्टिक एसिड आदि) के साथ रक्त, लसिका, पित्त इत्यादि में अवस्थित क्षार मिल जाते हैं। परिणाम स्वरूप ये अम्ल निष्क्रिय और निरुपद्रवी बन जाते हैं। किन्तु यदि हमारे आहार में अम्लान्त खाद्यपदार्थों की भरमार हो तो शरीर सभी अम्लों को निष्क्रिय नहीं बना सकता। जब शरीर और रक्त में अम्लों की मात्रा बढ़ती है और उनका जमाव होने लगता है तो उस समय थकावट, सिर-दर्द, भूख नष्ट होना, अनिद्रा, घबराहट, जलन (एसिडिटी), सर्दी-जुकाम आदि रक्ताम्लता के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।

रक्ताम्लता बच्चों और युवकों के शारीरिक विकास को रोकती है; प्रौढ़ों के शरीर में छोड़ उत्पन्न करती है और जीवन-शक्ति का ह्रास करती है; उससे गर्भावस्था एवं माता के दूध से सम्बन्धित कठिनाइयाँ पैदा होती हैं; यह खसरा, अपेंडिसाइटिस, न्युमोनिया, क्षय और कैंसर जैसे रोगों की जन्मदात्री है।

अमेरिका-स्थित क्लिवलैंड के विख्यात सर्जन डॉ. ज्यॉर्ज क्राइल का कहना है कि मृत्यु स्वाभाविक होती ही नहीं। प्राकृतिक कारणों से होनेवाली कथित मौतें वस्तुतः दीर्घ-कालीन (chronic) रक्ताम्लता की चरमस्थिति ही होती हैं।

प्रस्तुत चर्चा के निष्कर्ष रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि हमारे शरीर में विष-द्रव्य अम्लों के स्वरूप में ही रहते हैं। शरीर में अम्लों के संचय को रोकने के लिए हमें ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जो अधिकांशतः क्षारान्त हो।

अतएव यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि कौन-सा खाद्यपदार्थ शरीर में कितनी मात्रा में क्षारीयता या अम्लीयता उत्पन्न करेगा। प्रसिद्ध अमेरिकन बायोकेमिस्ट डॉ. रेंनार बर्ग ने विविध खाद्यपदार्थों की क्षारीयता या अम्लीयता की परीक्षा करने के लिए विपुल अनुसन्धान किये हैं। इन अनुसन्धानों पर आधारित एक कोष्ठक यहाँ दिया जाता है।

खाद्यपदार्थ का नाम	क्षारान्त %	खाद्यपदार्थ का नाम	अम्लान्त %
फल		अनाज	
अंजीर (हरे)	२७.८१	चावल (पालिश किये हुए)	१७.९६
द्राक्ष (सूखी)	१५.१०	चावल (हाथ-कुटे)	३.१८
अंगूर (हरे)	७.१५	केक	१२.३१
गन्ना	१४.५७	डबल रोटी	१०.९९
टमाटर	१३.६७	जौ	१०.९९
नीबू	९.९०	मैदा (गेहूँ की)	१०.५८
सन्तरा	९.६१	मक्का	५.३७
प्लम	५.८०	गेहूँ	२.६६
खजूर	५.५०	दाल और दलहन	
पीच	५.४०	सभी दालें और दलहन	
जरदालू (हरे)	४.७९	अम्लान्त हैं।	
केले	४.३८	सूखे फल	
अनार	४.१५	मूँगफली	१६.३९
नारियल	४.०९	अखरोट	९.२२
अनानास	३.५९	बादाम	२.१९
नाशपाती	३.२६	प्राणज	
तरबूज	१.८३	अण्डे का पीला भाग	५१.८३
सेब	१.३८	अण्डे का सफेद भाग	८.२७
कन्दमूल और साग-भाजी		अण्डे	११.६१
पालक	२८.०१	गाय का मांस	३८.६१
सोए की भाजी	१८.३६	मुर्गे का मांस	२४.३२
सलाद की भाजी	१४.१२	बकरी का मांस	२०.३०
ककड़ी	१३.५०	मछली	१९.५२
बीट	११.३७	सुअर का मांस	१२.४७
सलगम	१०.८०	दूध-वर्ग	
रतालू	१०.३१	पनीर	१७.४९
मूली	६.०५	मक्खन	४.३३
आलू	५.९०		
मटर (हरी)	५.१५		
पत्तागोभी	४.०२		
फूलगोभी	३.०४		
प्याज	१.०९		
कुम्हड़ा	०.२८		
दूध-वर्ग			
मक्खनरहित दूध	४.८९		
दूध की मलाई	२.६६		
माता का दूध	२.२५		
गाय का दूध	१.६९		
छाछ	१.३१		
बकरी का दूध	०.६५		

कोष्ठक देखने से यह स्पष्ट होता है कि मांस, मछली, अण्डे और दाल तथा दलहन अत्यधिक अम्लान्त होते हैं। गेहूँ का चोकरवाला आटा, हाथ-कुटे चावल आदि प्राकृतिक स्वरूप के अनाज अल्प मात्रा में अम्लान्त हैं; किन्तु उन पर प्रक्रिया करने से या उन्हें रिफाइन करने से उनकी अम्लीयता में वृद्धि होती है। सभी साग-भाजी, कन्द-मूल और फल क्षारान्त हैं। हरे पत्तोंवाली भाजियाँ विशेष क्षारान्त हैं।

अब हम ऊपर के कोष्ठक के सन्दर्भ में अपने परंपरागत दैनिक आहार के सम्बन्ध में विचार करें। प्रातः काल के नाश्ते में हम प्रायः दूध, चाय, कॉफी, खांखरा (पापड़ की तरह बेली हुई और सेंक कर तैयार की गई पतली रोटी), चिउड़ा, गाँठिया, बिस्कुट आदि ग्रहण किया करते हैं। ये सभी खाद्यपदार्थ अम्लान्त हैं। दोपहर के भोजन में लिये जाने वाले दाल, भात और रोटी भी बहुत अम्लान्त हैं; केवल साग क्षारान्त है। किन्तु पकाने के कारण उसका अधिकांश क्षार हवा में स्थित प्राणवायु के साथ मिलकर (ऑक्सिडाइज होकर) निरर्थक बन जाता है। अपराह्न के समय हम प्रायः चाय-नाश्ता लेते हैं। कई लोग सेण्डविच, इडली, डोसा जैसे व्यंजनों का सेवन करते हैं। ये पदार्थ भी अधिकांशतः अम्लान्त हैं। रात्रि-भोजन में हम दाल-भात, कढ़ी, खिचड़ी या भाखरी (खस्ता रोटी) आदि खाद्य ग्रहण करते हैं। ये पदार्थ भी शरीर में अम्लों की वृद्धि करते हैं। शरीर में संचित कितने क्षार इन अम्लों के कारण नष्ट हो जाते होंगे इसकी तो मात्र कल्पना ही की जा सकती है। फलों जैसा क्षारान्त आहार हम नियमित रूप से नहीं लेते। कच्ची साग-भाजी का महत्त्व अभी हम समझे ही नहीं हैं। हमारा देश आज रोगों और दवाओं के सिकंजे में फँसा हुआ है, इसका कारण भी प्रायः यही है।

आहार में अखण्ड धान्यों, कच्ची साग-भाजियों, फलों और कुछ सूखे फलों को उचित स्थान देने से शरीर में क्षारों और अम्लों के बीच की समतुला का निर्वाह किया जा सकता है और निरोगी रहा जा सकता है। इन खाद्यपदार्थों में अब स्थित क्षार आहार के अम्लों को तो नष्ट करते ही हैं, साथ ही शरीर में संचित अम्लों और विषद्रव्यों को भी कोषों से अलग करके बाहर निकाल फेंकते हैं। इन गुणों के कारण क्षारान्त खाद्यपदार्थोंवाले आहार को केवल 'शुद्ध आहार' ही नहीं अपितु शुद्धिकारक (eliminating and cleansing) आहार भी कहा जा सकता है।

जीवन से ही जीवन की उत्पत्ति हो सकती है (life begets life); अचेतन आहार से शरीर के चेतनाशील बनने की आशा रखना अतिरिक्त पूर्ण है। आहार को पकाकर खाने की परंपरा रूढ़ हो गई है। हमारे बाप-दादे जो करते आए हैं उसी को आज भी हम जारी रखें हुए हैं। मनुष्य जाति को छोड़कर अन्य कोई प्राणी पका हुआ आहार नहीं खाता; यद्यपि कुत्ते, बिल्लियाँ, गाएँ आदि मनुष्य के पालतू पशु पकाया हुआ आहार भले ही खाते हों, किन्तु यदि उन्हें चुनाव करने का अवसर दिया जाए तो वे प्राकृतिक स्फुरणा से कच्चे आहार को ही अधिक पसन्द करेंगे।

हमारा शरीर निरन्तर क्षीण होता रहता है। पुराने कोष नष्ट होते रहते हैं और नए कोष उनका स्थान लेते रहते हैं। नवसृजन की इस क्रिया के लिए भी प्रजीवक, क्षार

और ऍन्झाइम आवश्यक हैं। आहार में अवस्थित प्रोटीन, कार्बोडिड पदार्थ, स्निग्ध पदार्थ आदि अन्य तत्त्व शरीर में पूर्णतः आत्मसात् हों इसके लिए भी प्रजीवक तथा ऍन्झाइम आवश्यक हैं। ये ऍन्झाइम तथा कुछ अंशों में प्रजीवक गर्मी से नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् पकाए हुए आहार से ये पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होते।

आहार शरीर की आवश्यकता है, जीभ की नहीं। केवल जिह्वा को ही केन्द्र में रखकर आयोजित खान-पान शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकता। मिर्च-मसालों के कारण शायद आहार स्वादिष्ट लगता है, मुँह में रखते ही गले के नीचे उतर जाता है; किन्तु आहार ग्रहण करने के पीछे हमारा केवल इतना ही उद्देश्य नहीं है। हम जीने के लिए खाते हैं, खाने के लिए नहीं जीते। उचित संयोजनों के द्वारा कच्चा आहार भी स्वादिष्ट बन सकता है।

पकाने से आहार के ऍन्झाइम और प्रजीवक ही नष्ट नहीं हो जाते वरन् आहार में कई विक्रियाएँ भी प्रविष्ट हो जाती हैं। आहार में अवस्थित प्रोटीन पकाने से विकृत (coagulate) होकर कठोर बन जाता है। कठोर प्रोटीन पचता नहीं है और पेट में सड़ता है। पकाए हुए आहार के कार्बोहाइड्रेट्स सुपाच्य नहीं रहते। आँतों की आंतरत्वचा में से उनका पूर्णतः शोषण नहीं हो सकता। इस प्रकार तत्त्वों की दृष्टि से पकाया हुआ आहार सत्त्वहीन होता है। तन्दुरुस्त व्यक्ति तो इस प्रकार के आहार से रहे-सहे तत्त्व खींच लेता है; किन्तु बीमार व्यक्ति के लिए संभव नहीं है।

यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण है कि कच्चा आहार पचता नहीं है और पेट में बोझ, दर्द या गैस उत्पन्न करता है। विविध प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि पके हुए आहार को पूर्णतः पचने में पाँच-छह घण्टे लगते हैं; जबकि कच्चे आहार को पचने में तीन-चार घण्टे ही लगते हैं। फलों और साग-भाजी के रस तो केवल पच्चीस-तीस मिनटों में ही पचकर शरीर में शोषित होने लगते हैं। इस प्रकार कच्चा आहार-विशेषतः रस-रूप आहार-पाचन अवयवों को आराम देता है। अतः शरीर की अमूल्य शक्ति पाचन-कार्य में नष्ट न होकर नव निर्माण एवं रोग-निवारण के लिए उपलब्ध बनती है।

आहार को पकाने से बहुमूल्य तत्त्व नष्ट होते हैं। दूसरी ओर धान्यों और दलहनों को अंकुरित करने से तत्त्वों में भारी वृद्धि होती है। कच्ची अंकुरित चीजों में प्राकृतिक अर्थात् सजीव रूप में थायामिन (प्रजीवक बी₁), पेंटोथिनिक ऍसिड, नियॅसिन आदि तत्त्व ६०० प्रतिशत तक बढ़ते हैं। तदुपरान्त शरीर के लिए उपयोगी जीवाणुओं (yeast) की संख्या में ६०० करोड़ के करीब वृद्धि होती है। अंकुरित धान्यों और दलहनों के आहार से माँ के दूध में वृद्धि होती है तथा बच्चे का विकास तेजी से और सुयोग्य रूप में होता है।

‘मैन, दि अन्नोन’ नामक पुस्तक के लेखक और रॉकफ़ेलर इन्स्टिट्यूट के अध्यक्ष डॉ. ऍलेंकी कॅरेल का एक प्रयोग बहुत कुछ सूचित करता है। डॉ. कॅरेल ने मुर्गी के हृदय के कुछ कोषों को साग-भाजी के रस में ३० वर्षों तक जीवित रखा। ३० वर्ष के बाद जब प्रयोग बन्द कर दिया गया तब भी ये कोष पूर्णतः स्वस्थ एवं सक्रिय थे। डॉ. कॅरेल ने यह दावा किया था कि यह प्रयोग १०० या १००० वर्षों तक भी जारी रखा जा सकता

था, क्योंकि उन कोषों में जीर्णता या अवनति (degeneration) के चिह्न रत्तीभर भी मालूम नहीं हुए थे। यदि शरीर के बाहर कोषों को इतने लम्बे समय तक जीवन्त रखा जा सकता हो तो शरीर के भीतर तो यह और भी अधिक सरल तथा संभव है। योग्य पोषण के द्वारा मानव-शरीर को भी दीर्घकाल तक जीवन्त और तन्दुरुस्त रखा जा सकता है ऐसा कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।

अमेरिका-स्थित शिकागो के डॉ. ज्यॉर्ज जे. ड्यूस का यह विधान सूचक है कि पकाया हुआ आहार मानव-जाति का एक प्राचीनतम मानसिक चस्का है। ९५ प्रतिशत शारीरिक और मानसिक रोग ऐसे ही निर्जीव आहार का उत्पादन हैं।

सरल पाचन हेतु आहार-संयोजन (food combinations) : आहार-संयोजन के नियमों को समझकर उनका यथोचित पालन करने पर ही आहार का योग्य रूप में पाचन होता है। यदि इन नियमों का उल्लंघन किया जाए तो अच्छा और पौष्टिक आहार भी पाचन-तंत्र में विकृत होकर विषद्रव्य उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, पेट में ऐसा कोई भी पाचक रस (एन्जाइम) नहीं है जो कार्बोहाइड्रेट्स का पाचन कर सके। कार्बोहाइड्रेट्स का पाचन या तो मुँह में होता है या छोटी आँत में। दूसरी ओर प्रोटीन का पाचन पेट में होता है। उदाहरण के लिए हम किसी ऐसे आहार का विचार करें जिसमें कार्बोहाइड्रेट्स और प्रोटीन दोनों ही विपुल मात्रा में हो। ऐसे आहार को खूब अच्छी तरह से चबाया जाए तो मुँह की लार में अवस्थित पाचकरस कार्बोहाइड्रेट्स का अमुके अंशों में पाचन करते हैं; किन्तु यदि ऐसा आहार ठीक से चबाए वगैर ही निगल लिया जाए तो पेट में प्रोटीन का पाचन होने तक कार्बोहाइड्रेट्स सड़ते रहते हैं और विषद्रव्य उत्पन्न करते हैं। ऐसा एक खाद्यपदार्थ रोटी है। रोटी को खूब अच्छी तरह चबाया जाए तो उसमें स्थित कार्बोहाइड्रेट्स पर लार के पाचकरस का प्रभाव होता है। परिणामस्वरूप कार्बोहाइड्रेट्स का शर्करा में रूपान्तर होता है और रोटी मीठी लगने लगती है। पेट में पहुँचने पर इस शर्करा का रक्त में शोषण हो जाता है। अब यदि रोटी को बराबर न चबाया जाए तो उसके कार्बोहाइड्रेट्स बिना पचे ही पेट में पहुँच जाते हैं और वहाँ सड़ते रहते हैं। एक अन्य महत्त्वपूर्ण हकीकत यह है कि लार का पाचक रस क्षारीय माध्यम (alkaline medium) में ही कार्य कर सकता है। यदि रोटी के साथ खट्टी चटनी या खट्टे आचार का सेवन किया जाए अथवा साग-दाल में नीबू, टमाटर, इमली या कोकम की खटाई मिलाई जाए तो लार का पाचक रस बेअसर हो जाता है और रोटी के कार्बोहाइड्रेट्स बिना पचे ही पेट में पहुँच जाते हैं। इस हकीकत को ध्यान में रखकर रोटी और खट्टे खाद्य पदार्थों को अलग-अलग ग्रहण करना चाहिए। यदि इन दोनों वस्तुओं का संयोजन किया जाए तो शरीर में विष-द्रव्यों की उत्पत्ति होती है।

आहार-संयोजन के नियम :

(१) कार्बोहाइड्रेट्स के साथ खट्टे खाद्यपदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। (इस विषय की विस्तृत चर्चा ऊपर की गई है।)

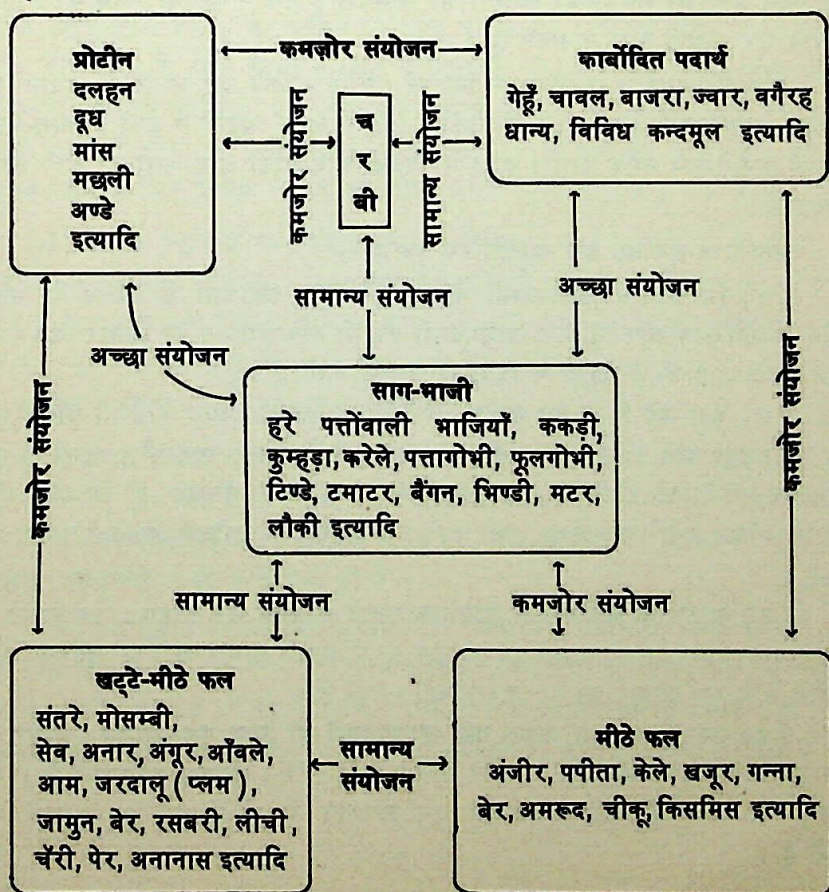
(२) प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट्स एकसाथ अतिशय मात्रा में नहीं लेने चाहिए। (इसका कारण भी उपर्युक्त चर्चा में स्पष्ट किया गया है।)

(३) अधिक प्रोटीन और अधिक चरबीवाले पदार्थों (जैसे, दाल और घी) का साथ-साथ सेवन न करें। इसका कारण भी यही है कि इन दोनों घटकों का पाचन शरीर में भिन्न-भिन्न स्थानों पर होता है।

(४) प्रोटीनयुक्त आहार के साथ खट्टे फलों का सेवन नहीं करना चाहिए। जैसे, दाल में नीबू डालने या टमाटर मिलाने से उनकी खटास पेट में पहुँचकर पाचक रसों के स्राव को मन्द कर देती है। इस कारण पाचन-क्रिया में विलम्ब होता है।

ये सूचनाएँ उन लोगों को विशेषतः लागू होती हैं जिनका स्वास्थ्य निर्बल या पाचन-शक्ति कमजोर है। स्वस्थ लोग यदि कभी कमजोर संयोजनवाले आहार या दलहन का सेवन कर लें तो उन्हें कोई विशेष हानि नहीं होती। वास्तव में प्रकृति ने अनेक खाद्य-पदार्थों में कार्बोहाइड्रेट्स और प्रोटीन अथवा प्रोटीन और चरबी को एक साथ ही रखा है—उनका विभाजन करना असंभव है।

दैनिक आहार के योग्य-अयोग्य संयोजनों का स्पष्टीकरण नीचे कोष्ठक में दिया गया है :



पूरे दिन की आदर्श आहार-योजना :

(१) सबेरे प्रातःकाल — आधे या एक नीबू के रसवाला एक गिलास पानी । जिन्हें सर्दी हुई हो वे कुनकुना पानी लें । इस पेय में शक्कर, नमक या शहद न मिलाएं ।

(२) प्रातःकाल ८-३०-९.०० बजे — फल या फलरस, केले, खजूर, द्राक्ष, सूखा मेवा आदि पौष्टिक खाद्यपदार्थ भी लिये जा सकते हैं ।

(३) दोपहर का भोजन — सर्वप्रथम तो हरे पत्तोंवाली भाजियों का कच्चा रस (आधा कप) लें या उनका सूप (एक कप) पिएँ । इसके पश्चात् थोड़े अंकुरित दलहन, थोड़ी कच्ची सागभाजी (और इच्छा हो तो खट्टे-मीठे फल) चबाकर खाएँ । अंत में गेहूँ की रोटी और पका हुआ साग लें । रोटी के स्थान पर चावल लिया जा सकता है । कभी-कभी भोजन के अंत में छाछ पी सकते हैं । बीमारी में अंकुरित दलहन भी न लें ।

(४) दोपहर ३-४ बजे — फलरस या फल ।

(५) रात का भोजन — सुबह के भोजन के अनुसार । भाजियों का कच्चा रस न पिएँ । रोटी का अनाज बदला जा सकता है । अच्छे स्वास्थ्य और प्रबल पाचनशक्ति-वाले लोग शाम को कभी-कभी खिचड़ी भी ले सकते हैं तथा सुबह या शाम को चावल के साथ एक कटोरी दाल ले सकते हैं ।

टिप्पणी : आटे में से चोकर न निकालें । पॉलिश किये हुए चावल के स्थान पर हाथकुटे चावल खाएँ । सागदाल में कोकम, टमाटर आदि खटाई न डालें । भात-साग-दाल में कम-से-कम नमक डालें । छाछ में, कच्ची साग-भाजी और फलों पर कभी नमक न छिड़कें ।

आहार से संबंधित दस व्यावहारिक सुझाव —

(१) भिन्न-भिन्न खाद्यपदार्थों के योग्य-अयोग्य संयोजनों के विषय में सतर्क रहिए — सारान्त और पौष्टिक खाद्यपदार्थों का भी यदि संयोजन का विचार किये बिना सेवन किया जाए तो वे शरीर में विषद्रव्य उत्पन्न करते हैं ।

(२) भूख लगे बिना मत खाइए : मनुष्य को छोड़कर अन्य कोई भी प्राणी भूख लगे बिना नहीं खाते । यही कारण है कि वे बीमारी से बचते रहते हैं । जमकर भूख लगने पर सूखी मोटी रोटी भी मीठी लगती है । डॉ. शैल्टन लिखते हैं कि यदि ऐसा लगे-कि भोजन मसालेदार होगा तभी रुचिकर लगेगा, तो भोजन करने के लिए मत बैठिए ।

(३) शारीरिक थकावट या मानसिक तनाव के समय मत खाइए : जब शरीर या मन अत्यन्त श्रान्त या तनावग्रस्त हो तो उस समय पेट में पाचकरसों का पर्याप्त स्राव न होने के कारण आहार का पाचन भलीभाँति नहीं होता ।

(४) एकदम ठण्डे या अत्यंत गर्म खाद्यपदार्थों का सेवन मत कीजिए : भोजन का तापमान शरीर के तापमान के बराबर (लगभग ९८° F) हो यह इच्छनीय है । मुँह और पेट में स्रवित होनेवाले पाचक रस इस तापमान में ही उचित ढंग से कार्य कर सकते हैं ।

(५) **खूब चबाकर खाइए :** खूब चबाकर खाने से आहार में लार घुल-मिल जाती है। लार के पाचकरस मुँह के अन्दर ही आहार का पाचन-कार्य आरम्भ कर देते हैं। भली-भाँति चबाया हुआ आहार पेट में भी जल्दी पचता है।

(६) **भोजन करते समय पानी मत पीजिए :** पानी पेट में से १० मिनट में ही निकल जाता है। पेट में से निकलते समय पानी अपने साथ पाचक रसों को भी बहा ले जाता है। ऐसा होने से पाचन-क्रिया में मन्दता उत्पन्न होती है। इससे मन्दाग्नि की तकलीफ हो सकती है। भोजन शुरू करने के पन्द्रह मिनट पहले, फलाहार करने के आधे घण्टे बाद और पूर्ण भोजन के दो घण्टे बाद पानी पीने में कोई आपत्ति नहीं है।

(७) **पेट को ठूस-ठूस कर मत भरिए :** अतिशय भोजन हानिकारक है। पेट स्नायुओं से बनी एक ऐसी थैली है जिसमें तालबद्ध संकुचन और विस्तरण होता रहता है जिसके फलस्वरूप पाचक रस आहार के साथ अच्छी तरह घुल-मिल जाते हैं। हम अधिक खाकर यदि इस पेट रूपी थैली को ठूस-ठूस कर भर दें तो संकुचन और विस्तरण की यह क्रिया रुक जाती है; पाचकरस आहार के साथ घुल-मिल नहीं पाते। आहार पचने के बदले सड़ने लगता है। अधिकतर लोग आहार की मात्रा में विवेक नहीं रखते। जीने के लिए खाने के बदले मानो वे खाने के लिए ही जीते हैं ! अधिक आहार लेने के बाद मनुष्य सुस्त हो जाता है, वह निस्तेज हो जाता है, उसे बार-बार प्यास लगती है; पेट फूल जाता है और वह पाचनतंत्र की तकलीफों का शिकार बन जाता है। वास्तव में स्वस्थ रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को थोड़ा भूखा रहना चाहिए।

(८) **भोजन करने के बाद थोड़ा आराम कीजिए :** आहार लेने के बाद पेट की रक्तनलिकाएँ चौड़ी हो जाती हैं। इस कारण पाचक रसों का स्राव उचित मात्रा में होता है और भोजन पचने लगता है। भोजन करने के बाद यदि कोई परिश्रमवाला कार्य किया जाए तो रक्त का प्रवाह पेट की ओर जाने के बदले हाथ या पैर की ओर मुड़ जाता है और पाचन-क्रिया में मन्दता आती है।

(९) **किसी प्रकार का दर्द या ज्वर हो तो आहार लेना बन्द कर दीजिए :** ऐसा करना आवश्यक है। वास्तव में किसी भी शारीरिक तकलीफ के समय भूख नहीं लगती और खाने की रुचि नहीं होती। बीमारी में पाचक रस अल्प मात्रा में स्रावित होते हैं। इस कारण पाचनक्रिया की गति मन्द होती है।

(१०) **सप्ताह में एकाध दिन एकाशन या फलाहार कीजिए :** जिस प्रकार हम पेट से काम लेते हैं उसी प्रकार उसे आराम देना भी आवश्यक है। ऐसा करने से उसकी कार्यक्षमता बनी रहती है। जिस समय शरीर की शक्ति पाचनक्रिया में व्यस्त नहीं होती उस समय वह शरीर में एकत्रित विष-द्रव्यों का निष्कासन करने में प्रवृत्त होती है।

७. रसाहार

प्रकरण ६ में इस प्रकार की चर्चा की गई है कि क्षारांत आहार शरीर के कोषों में एकत्रित विष और अम्ल को अलग करता है तथा शरीर में से उसका निष्कासन करने में सहायता करता है। इसी कारण से क्षार-प्रधान आहार को शुद्धिकारक आहार माना जाता है।

मनुष्य स्वस्थ हो तब भी क्षार-प्रधान आहार का सेवन करता रहे यह उसके लिए हितकर है। किंतु बीमारी में तो ऐसे आहार की सविशेष आवश्यकता होती है। शरीर में अम्लों के जमाव के कारण ही बीमारी उत्पन्न होती है। इन अम्लों को निष्क्रिय बनाने के लिए ऐसा आहार लेना चाहिए जो विपुल मात्रा में क्षारों की आपूर्ति करे। रसाहार के द्वारा यह प्रयोजन भली-भाँति सिद्ध होता है।

वास्तव में जब शरीर को अधिक मात्रा में क्षारों की जरूरत हो तब रसाहार अनिवार्य होता है। रसाहार के द्वारा शरीर को प्रजीवक और ऐन्जाइम भी प्राप्त होते हैं जो रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाने में और रोगनिवारण में सहायता करते हैं।

कोई ऐसी दलील कर सकता है कि कच्ची सागभाजी और फल चबाकर खाने से भी क्षार और प्रजीवक मिल सकते हैं। किंतु यह दलील योग्य नहीं है। कोई भी व्यक्ति चबाकर पर्याप्त मात्रा में सागभाजी और फल नहीं खा सकता। उदाहरण के लिए गाजर एक-दो से अधिक चबाकर नहीं खाई जा सकती किंतु आठ-दस गाजर का रस आसानी से पिया जा सकता है। तदुपरांत, फलों या सागभाजी को चबाकर खाया जाए तो रेशे और काष्ठतत्त्व भी अधिक मात्रा में पेट में पहुँच जाते हैं। इस कारण पेट भारी हो जाता है और पाचनक्रिया मंद पड़ जाती है। संक्षेप में, जब पाचन-अवयवों पर बोझ न डालना हो और उपवास अभीष्ट न हो तब रसाहार अनिवार्य बनता है।

रस हमेशा ताजे होने चाहिए। रोग-निवारण के लिए रस ताजे हों यह बहुत आवश्यक है। इसका कारण यह है कि कच्चे आहार में रहे हुए प्रजीवक हवा में अवस्थित प्राणवायु के प्रति अत्यंत संवेदनशील होते हैं। उदाहरण के लिए गाजर को छीलकर या कटुकश में कसकर रख देने से लगभग २०-२५ मिनट में ही उसमें स्थित अधिकांश प्रजीवक 'ए' प्राणवायु के साथ मिलकर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार नीबू, मोसंबी, संतरा, सेब आदि फलों का संग्रह किया जाए तो एक ही महीने में उनका ५० प्रतिशत प्रजीवक 'सी' नष्ट हो जाता है। यदि अखंडित फलों या सागभाजियों में अवस्थित प्रजीवक इतनी आसानी से नष्ट हो जाते हों तो रसों में अवस्थित प्रजीवक अधिक शीघ्रता से नष्ट हो जाएँ यह बात स्वयं स्पष्ट है। इसीलिए रस निकाल लेने के पश्चात् तुरंत ही, एक क्षण का भी विलंब किये बिना उसका उपयोग कर लिया जाए यह आवश्यक है। रस गटगटाकर न पीकर, एक-एक घूंट पीना चाहिए ताकि उसमें लार घुल-मिल जाए और उसमें स्थित कार्बोहाइड्रेट्स (शर्करा) का पाचन मुँह में ही प्रारंभ हो जाए।

फलों का रस और सागभाजी का रस अलग-अलग पीना चाहिए अर्थात् उनका मिश्रण नहीं करना चाहिए ऐसा कई आहारशास्त्रियों का मत है ।

बोतल या डिब्बे में पॅक किये हुए रस स्वास्थ्य के लिए निरर्थक हैं क्योंकि ऐसे रसों पर हुई प्रक्रियाओं के कारण और संग्रह के कारण उनमें रहे हुए लगभग सभी रोगनिवारक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं । तदुपरांत, सुरक्षा के लिए उनमें कितने ही हानिकारक रसायन भी मिलाए जाते हैं । ऐसे तैयार रसों की बोतलों या डिब्बों पर 'ताजा रस' ऐसा लेबल पढ़कर किसीको गुमराह नहीं होना चाहिए ।

टिप्पणी : रसाहार संबंधी संपूर्ण और विस्तृत जानकारी इन्हीं लेखकों की पुस्तक 'रसाहार के द्वारा तंदुरुस्ती और रोगमुक्ति' में दी गई है ।

रसाहार के द्वारा तन्दुरुस्ती और रोगमुक्ति

लेखक : डॉ. ध. रा. गाला, डॉ. धीरेन गाला

अनुवादक : प्रा. भगवानदास जैन

मनुष्य का आहार ही उसके कल्याण, उसके जीवन, यहाँ तक कि उसके संपूर्ण अस्तित्व की आधारशिला है। फिर भी यह दुःखद बात है कि सामान्य जनों ने ही नहीं, किंतु आधुनिक औषधि-विज्ञान ने भी 'आहार' के महत्त्व की उपेक्षा की है।

स्वस्थ रहने की इच्छा रखनेवाले हर व्यक्ति के लिए कच्चा (बिना पकाया हुआ) आहार एवं रसाहार अत्यंत आरोग्यप्रद सिद्ध हो सकता है। आजकल विदेशों में रसाहार के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर अनुसन्धान हो रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक रसाहार के द्वारा आरोग्य बनाए रखने, यौवन को सुरक्षित रखने तथा रोगों से छुटकारा पाने की इच्छावाले लोगों के लिए संपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी से युक्त है।

नवनीत पब्लिकेशन्स (इं) लि.

८. उपवास

सभी तीव्र एवं अधिकांश उग्र रोगों के विरुद्ध किये जानेवाले संघर्ष में प्राकृतिक चिकित्सक के लिए उपवास पसंद की दृष्टि से सर्वप्रथम और अमोघ शस्त्र है।

शरीर में अम्ल और विषद्रव्यों का संचय होता है तभी रोग की उत्पत्ति होती है। इन विषद्रव्यों को बाहर निकालने के शरीर के प्रयत्नों को हम रोग के लक्षण कहते हैं। शरीर में विषद्रव्य निश्चित मात्रा की अपेक्षा बढ़ जाएँ तब उनके निष्कासन के लिए शरीर उग्र और भारी प्रयत्न करता है और परिणामस्वरूप तीव्र रोग उत्पन्न होता है। विषों को बाहर निकालने के लिए शरीर अपनी संपूर्ण शक्ति का उपयोग करता है। ऐसे संयोगों में शरीर को आहार की आवश्यकता नहीं रहती। इस कारण भूख मर जाती है और मुँह का जायका बिगड़ जाता है। ऐसी परिस्थिति में आहार लेने से शरीर की अमूल्य शक्ति आहार के पाचनकार्य में नष्ट हो जाती है, विषद्रव्यों का निष्कासन-कार्य रुक जाता है और रोग लंबे समय तक रहता है या जीर्ण (chronic) हो जाता है।

हमारे देश में आदि काल से उपवास करने की परंपरा है। फिर भी आधुनिक समाज में उपवास करना कुछ कठिन-सा हो गया है। रोगी को ज्वर चढ़ा हो, वह स्पष्ट शब्दों में कहे कि—“मुझे भूख नहीं है, खाने की बिलकुल इच्छा नहीं है, मुँह कड़वा हो गया है।” फिर भी रोगी के स्वजन, मित्र, पड़ोसी आग्रह करते हैं कि, “कुछ तो खाना पड़ेगा; चाय, कॉफी, दूध, फल का रस, काँजी—जो चाहे सो लो, नहीं तो कमजोरी आ जाएगी।” वे बार-बार आग्रह करते रहते हैं और रोगी को खिलाकर ही दम लेते हैं। इस प्रकार रोगी इच्छा न होते हुए भी खाता है, आहार पचता नहीं है और रोग की समयावधि व्यर्थ ही बढ़ती जाती है। वास्तव में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो रुणावस्था में तथा भूख की कमी होने पर भी खाता रहता है, अन्य कोई प्राणी बीमारी में नहीं खाते यह बात निस्संदेह है।

कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि एक जून भी यदि खाना छोड़ देंगे तो अपोषण होगा और मृत्यु हमें निगल जाएगी। यह मत नितान्त हास्यास्पद है। सुप्रसिद्ध डॉ. डीवी के ये शब्द याद रखने योग्य हैं : बीमारी में ग्रहण किया गया आहार रोगी का नहीं किंतु रोग का पोषण करता है।

उपवास प्रारंभ करने से पहले कुछ पूर्वतयारी या कुछ पूर्वाभ्यास कर लिया हो तो बाद में अधिक सुगमता रहती है। उदाहरण के लिए जिसे दिनभर में एक बार ही खाने का अभ्यास हो वह व्यक्ति एक-दो दिन का उपवास आसानी से कर लेता है। इसी प्रकार जिसे एक-दो दिन का उपवास करने का अभ्यास हो वह व्यक्ति चार-पाँच दिन के या सप्ताह के उपवास करने में घबराहट या तकलीफ का अनुभव नहीं करता।

फ्लू, ज्वर, सर्दी, खाँसी जैसे अधिकांश रोग तो दो-तीन दिन के उपवास से ही मिट जाते हैं। दीर्घकालीन जीर्ण रोगों में उपवास का आयोजन विचारपूर्वक और गणना-

पूर्वक करना चाहिए। ऐसे रोगों में अधिक दिन के उपवास आवश्यक होते हैं। ऐसे उदाहरणों में उपवास का आरंभ करने से पहले तीन-चार दिन हल्का अपक्व आहार या रसाहार लेना चाहिए। ऐसा करने से उपवास प्रारंभ करने से पहले ही रक्त और शरीर के शुद्धीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। तदुपरांत कच्चे आहार में स्थित प्रजीवक और क्षार शरीर में संचित होते हैं जो बाद में उपवासकाल में उपयोगी होते हैं।

जीर्ण और दुस्साध्य रोगों को दूर करने के लिए कितने दिन के उपवास करने पड़ेंगे इसका अनुमान पहले से नहीं लगाया जा सकता। दीर्घकाल के उपवास किसी विशेषज्ञ की निगरानी में ही होनी चाहिए। दीर्घकालीन उपवास के दौरान समय-समय पर रोगी के रक्त और पेशाब की जाँच आवश्यक हो जाती है। उपवासकाल के दौरान मूत्र में किटोनब्रव्यों की उपस्थिति मालूम हो या तो रक्त में यूरिया की मात्रा ४५ मि. ग्रा. प्रतिशत से अधिक हो जाए तो उपवास समाप्त करना आवश्यक हो जाता है।

उपवास की समाप्ति योग्य प्रकार से हो यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में तो इसका महत्त्व स्वयं उपवास से भी अधिक है। उपवासकाल के दौरान पाचन अवयव शिथिल हो जाते हैं। उपवास की समाप्ति के पश्चात् अर्धधुंध आहार लिया जाए तो योग्य पाचन नहीं होता और विषद्रव्य बनने लगते हैं। यह तो नए रोग को निमंत्रण देने के बराबर है।

एक दिन के उपवास के बाद दूसरे दिन सुबह फलरस, दोपहर को कुछ फल एवं शाम को रोटी और उवाली हुई सब्जी इस प्रकार की आहार योजना करनी चाहिए। तीसरे दिन से सामान्य आहार लिया जा सकता है। दो दिन के उपवास के बाद, तीसरे दिन केवल फलरस, चौथे दिन सुबह फलरस, दोपहर में फल और शाम को रोटी-साग से मिलता-जुलता आहार लेना चाहिए। पाँचवें दिन से सामान्य आहार लिया जा सकता है। संक्षेप में, जितने दिनों का उपवास किया हो उतने ही दूसरे दिनों में अत्यंत हल्का आहार और रसाहार लेना चाहिए।

यह एक ऐसा नियम है जिसका दृढ़तापूर्वक पालन न किया जाए तो उपवास निरर्थक सिद्ध होते हैं और कभी विपरीत प्रभाव भी पड़ सकता है। खाने-पीने में नियमितता, औचित्य और मात्रा का ध्यान न रखने से ही उपवास करने की आवश्यकता उपस्थित होती है। उपवास करने के बाद भी यदि इसी प्रकार की अनियमितता, अनौचित्य और अविवेक बरता जाए तो शरीर पुनः दोषों और विषद्रव्यों का भंडार बन सकता है।

स्वस्थता में भी दस-बारह दिनों में एकाध उपवास करने से शरीरशुद्धि हो जाती है और रोगों के प्रादुर्भाव को रोका जा सकता है।*

* संपूर्ण विवरण के लिए इन्हीं लेखकों द्वारा लिखित पुस्तक 'उपवास की सफलता' पढ़िए।

९. व्यायाम

पूर्ण स्वास्थ्य के लिए जितना महत्त्व आहार का है उतना ही महत्त्व व्यायाम का भी है। हमारे पूर्वज हमारी अपेक्षा अधिक स्वस्थ और सुदृढ़ थे इसका कारण यह है कि उनका जीवन श्रममय था। वर्तमान यंत्रवाद ने मनुष्य को श्रम से विमुख बना दिया है।

शरीर के विविध अवयवों और तंत्रों पर व्यायाम का जो सुन्दर एवं स्वास्थ्यप्रद प्रभाव होता है उसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

(१) **हृदय और रक्तनलिकाएँ** : नियमित व्यायाम करने से हृदय की मांसपेशियाँ मजबूत और कार्यक्षम बनती हैं। कसरती लोगों के हृदय की धड़कनें परिश्रमवाला काम करने के बाद भी अधिक नहीं बढ़तीं। तदुपरान्त, धड़कनों की गति कार्य खत्म होने के बाद तेजी से सामान्य हो जाती है। दूसरी ओर, निष्क्रिय व्यक्ति के हृदय की धड़कनें थोड़ा-सा परिश्रमवाला काम करने से भी बहुत बढ़ जाती हैं। कार्य बन्द करने के बाद भी हृदय की गति को कम होने और सामान्य बनने में अधिक समय लगता है।

कसरत करते समय रक्तनलिकाएँ चौड़ी हो जाती हैं और मांसपेशियों को अधिक रक्त मिलता है। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि तेजी से किये गए व्यायाम के दौरान निश्चित स्नायुओं और अवयवों का रक्त-परिभ्रमण पच्चीस से तीस गुना अधिक बढ़ जाता है। इस कारण उन स्नायुओं और अवयवों को अधिक प्राणवायु और रक्तकण उपलब्ध होते हैं।

(२) **श्वसन-तंत्र** : कसरत करते समय श्वासोच्छ्वास तेज और गहरे बनते हैं। इस कारण शरीर को अधिक प्राणवायु उपलब्ध होता है।

(३) **पाचनतंत्र** : कसरत करने के बाद जठर में पाचकरसों का अधिक स्राव होता है जिससे आहार का पाचन अच्छी तरह से होता है। तदुपरान्त, कसरतों आंतों की संकुचन-विस्तारण की क्रिया को उत्तेजित करती हैं जिससे मल-विसर्जन की क्रिया भी ठीक तरह से होती है।

(४) **स्नायुतंत्र** : नियमित रूप से कसरत करने से स्नायुओं का बहुत अच्छा विकास होता है, उनकी कार्यक्षमता का विकास होता है और वे सुदृढ़ होते हैं। सुदृढ़ और विकसित स्नायु सन्धिस्थलों को अच्छा आधार प्रदान करते हैं।

(५) **त्वचा** : कसरत करने से त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं। परिणामस्वरूप त्वचा का स्वास्थ्य सुधरता है।

(६) **शरीर का तापमान** : कसरतों से शरीर का तापमान बढ़ता है। इस प्रकार बढ़ा हुआ यह तापमान शरीर के भीतरी विषद्रव्यों को जलाने का कार्य करता है।

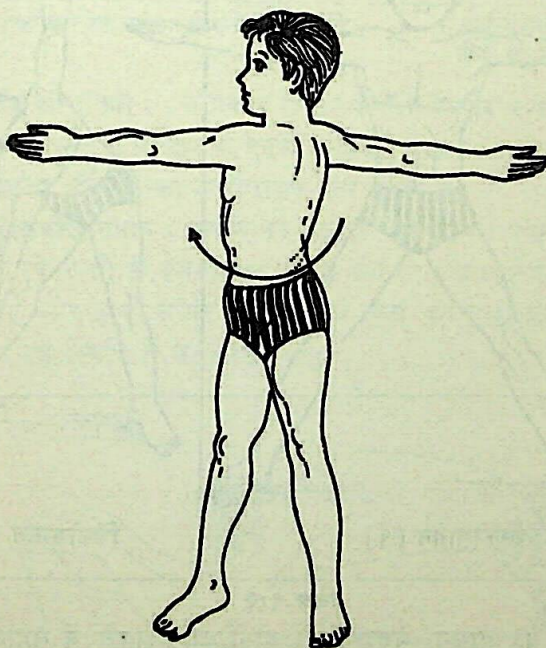
संक्षेप में, व्यायाम के कारण शरीर के प्रत्येक तंत्र को अमूल्य लाभ होता है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन प्रातःकाल कम-से-कम ३० से ४० मिनट का समय व्यायाम के लिए निकालना चाहिए।

पूर्ण स्वास्थ्य के लिए दो प्रकार की कसरतें करनी चाहिए : (१) योगासन और (२) दौड़ने या तैरने के सदृश कोई वेगवान कसरत। योगासनों से शरीर के आन्तरिक अवयवों को संकुचन और विस्तरण का व्यायाम मिलता है। वेगवान कसरतों से मुख्यतः हृदय और रक्तनलिकाओं को लाभ होता है।

योगासन : योगासनों का एक आदर्श और सर्वांगीण कार्यक्रम निम्नलिखित है :

(१) कटिमंथन : दोनों पैरों के बीच एक-डेढ़ फुट का अन्तर रखकर खड़े रहिए। दोनों हाथ शरीर की बगल में कन्धे के समानान्तर रखिए। अब पैरों को हिलाए वगैर केवल धड़ को पहले दाईं ओर तथा फिर बाईं ओर चक्काकर गति में घुमाइए।

इस प्रकार शरीर को दोनों ओर ६-६ बार घुमाइए।

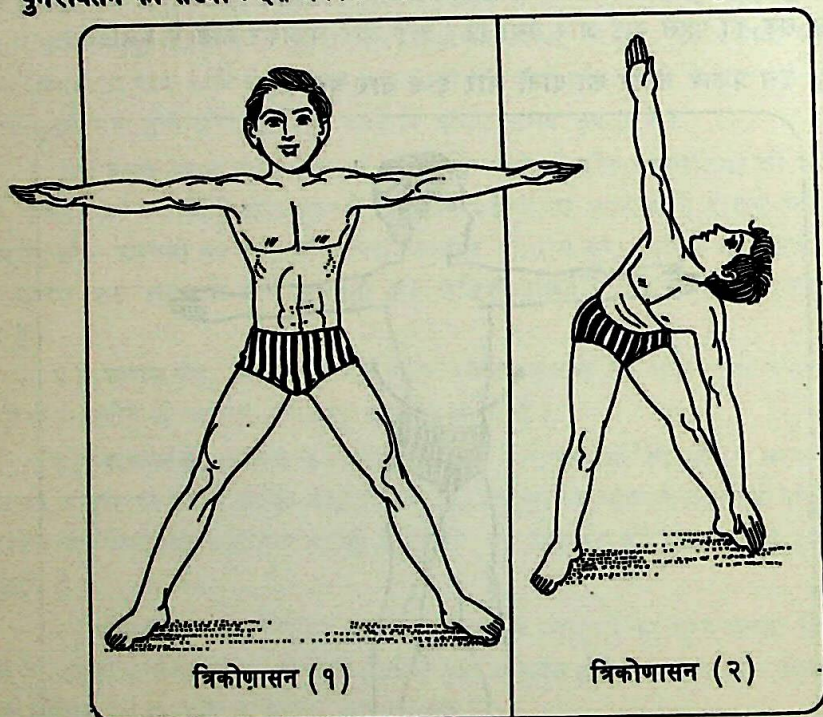


चित्र ९०१ : कटिमंथन

लाभ : यह आसन मेरुदण्ड को घुमाता है जिससे वह लचीला बना रहता है।

(२) त्रिकोणासन : दोनों पैरों के बीच एक-डेढ़ फुट का अन्तर रखकर खड़े रहिए । दोनों हाथ शरीर के दोनों ओर कन्धों के समानान्तर रखिए । अब कमर से दाईं ओर झुककर दाहिने हाथ से दाहिने पैर के पंजे को छूने का प्रयत्न कीजिए और बाएँ हाथ को सीधा ऊपर की ओर उठाइए । थोड़ी देर इस स्थिति में रहकर पुनः मूल स्थिति में आ जाइए । इसके बाद बाईं ओर झुक कर बाएँ हाथ से बाएँ पैर के पंजे को छूने का प्रयत्न कीजिए और दाहिना हाथ सीधा ऊपर की ओर लम्बा कीजिए । थोड़ी देर रुककर पुनः मूल स्थिति में आ जाइए ।

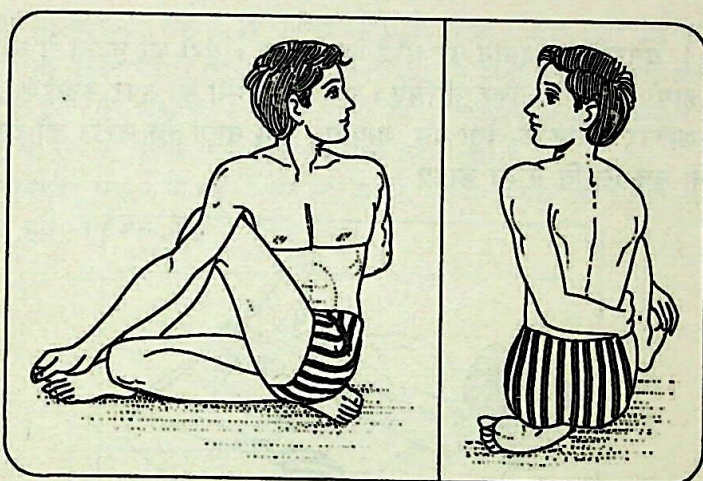
पुनरावर्तन की संख्या : इस प्रकार शरीर को दोनों ओर ६-६ बार झुकाइए ।



चित्र ९-२

लाभ : (क) यह आसन मेरुदण्ड को दोनों ओर झुकाने में सहायता करता है । (Lateral Stretching) (ख) प्लीहा और यकृत (लिवर) को संकुचन-विस्तरण का व्यायाम मिलता है और वे सुदृढ़ बनते हैं ।

(३) अर्ध मत्स्येन्द्रासन : जमीन पर बैठ जाइए । बाएँ पैर की एड़ी को जननेन्द्रिय और गुदा के बीच की त्वचा से छुलाए रखिए । दाएँ पैर को बाएँ घुटने की दूसरी ओर रखिए । बाएँ हाथ से दाहिने पैर का अँगूठा पकड़िए और दाहिना हाथ पीछे पीठ की तरफ ले जाकर शरीर को दाईं ओर घुमाइए । थोड़ी देर रुककर यही आसन उल्टे ढंग से कीजिए । दाहिने पैर की एड़ी जननेन्द्रिय और गुदा के बीच की त्वचा से छुलाकर रखिए । बाएँ पैर को दाहिने घुटने की दूसरी ओर रखिए । दाहिने हाथ से बाएँ पैर के अँगूठे को पकड़िए और बायाँ हाथ पीछे पीठ की तरफ ले जाकर शरीर को बाईं ओर घुमाइए ।



अर्ध मत्स्येन्द्रासन : सामने की स्थिति

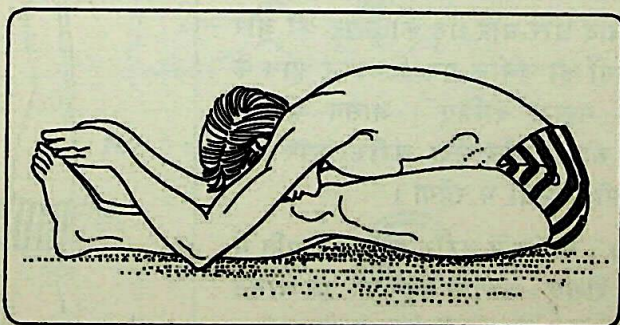
चित्र ९.३

अर्ध मत्स्येन्द्रासन
पीछे की स्थिति

पुनरावर्तन की संख्या : इस प्रकार शरीर को दोनों ओर ६-६ बार घुमाइए ।

लाभ : इस आसन में मेरुदण्ड के मनके घूमते हैं (rotation) । इस कारण मेरुदण्ड की स्थितिस्थापकता और उसका लचीलापन बना रहता है ।

(४) पश्चिमोत्तानासन : जमीन पर बैठकर पैरों को सीधा लम्बा कीजिए । हाथों को शरीर के सामने कन्धों के समानान्तर लम्बा कीजिए । अब धीरे-धीरे शरीर को आगे की ओर झुकाइए और हाथों से पैर के पंजों का स्पर्श करने का प्रयत्न कीजिए । थोड़ी देर रुककर पुनः मूल स्थिति में आ जाइए ।



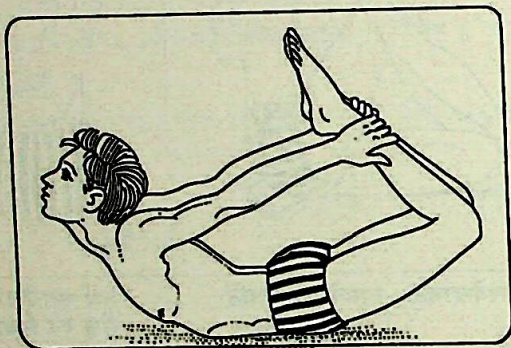
चित्र ९.४ : पश्चिमोत्तानासन

पुनरावर्तन की संख्या : यह क्रिया छह बार कीजिए ।

टिप्पणी : हर्निया (अंत्रवृद्धि) से पीड़ित लोगों को यह आसन सावधानीपूर्वक करना चाहिए । सर्गावस्था में यह आसन वर्जित है ।

लाभ : (क) यह आसन मेरुदण्ड को आगे की ओर मोड़ता है । (ख) इस आसन में पेट और पेड़ू के अवयवों का संकोचन होता है जिससे उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है । (ग) पीठ के स्नायु लचीले बनते हैं तथा पीठ और कमर की अकड़न दूर होती है ।

(५) धनुरासन : जमीन पर औंधे लेट जाइए। पैरों को घुटनों से मोड़कर ऊपर उठाइए। हाथों से पैरों को पकड़ लीजिए। धड़ और जाँघों को ऊपर उठाइए। इस प्रकार शरीर का आकार कमान के जैसा बन जाएगा। कुछ समय तक शरीर को इस स्थिति में रखकर पुनः मूल स्थिति में आ जाइए।



चित्र ९.५ : धनुरासन

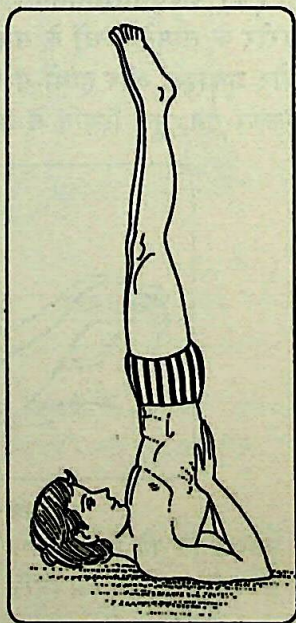
पुनरावर्तन की संख्या : यह आसन तीन बार कीजिए।

लाभ : (क) यह आसन मेरुदण्ड को पीछे की ओर मोड़ता है। (ख) पेट और पेड़ू के अवयवों का विस्तरण होता है। (ग) पीठ और कमर के स्नायु मजबूत बनते हैं।

(६) सर्वांगासन : जमीन पर चित लेट जाइए। पैरों को सीधा रखकर धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाते जाइए। इसके बाद धीरे-धीरे धड़ को ऊपर की ओर उठाइए। कुहनियों को जमीन पर टिकाकर हाथ के पंजों से पीठ को सहारा दीजिए। आसन की पूर्ण अवस्था में सिर को छोड़कर पूरा शरीर ऊपर उठा हुआ और एक सीधी रेखा में रहेगा।

कालावधि : प्रारंभ में शरीर को इस स्थिति में आधे मिनट तक रखिए। अभ्यास बढ़ने पर इस आसन का समय क्रमशः बढ़ाते हुए दो मिनट तक ले जाएँ।

टिप्पणी : उच्च रक्तचाप या हृदयरोग से पीड़ित लोग यह आसन न करें।

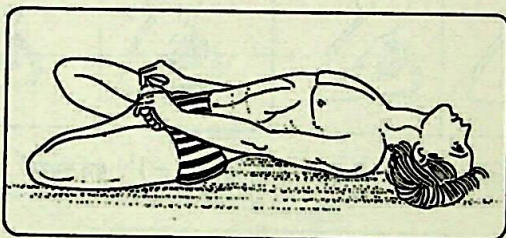


चित्र ९.६ : सर्वांगासन

लाभ : (क) रक्त-प्रवाह सिर और ऊपर के अंगों की ओर बहता है जिससे इन अंगों को पुष्टि प्राप्त होती है। (ख) थाइरोइड और पेरार्थाइरोइड ग्रन्थियों को संकोचन का व्यायाम मिलता है।

(७) मत्स्यासन : जमीन पर पलथी लगाकर बैठिए । धीरे-धीरे घड़ को पीछे की ओर झुकाते हुए जमीन पर ले आइए । अब दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़िए और सिर को पीछे की ओर झुकाइए । धीमे और गहरे श्वासोच्छ्वास लीजिए । आसन की पूर्ण स्थिति में घड़ का वजन सिर और कुहनियों पर रहता है ।

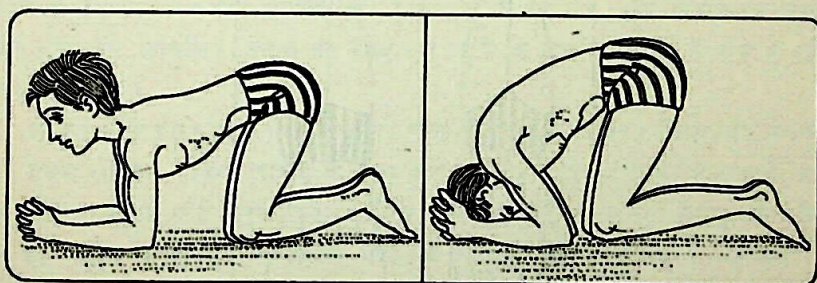
कालावधि : प्रारंभ में इस आसन की अवधि आधा मिनट रखें । धीरे-धीरे क्रमशः समय बढ़ाते हुए दो मिनट तक ले जाएं ।



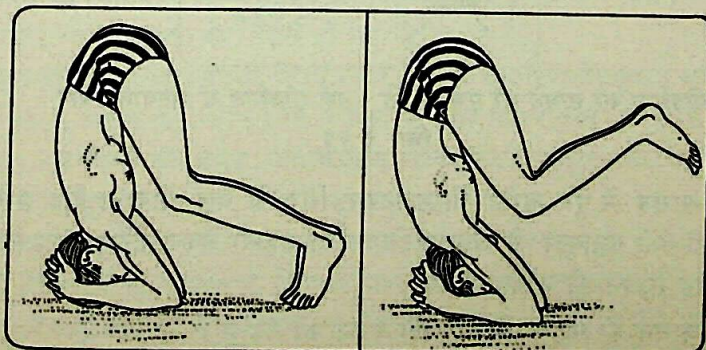
चित्र ९.७ : मत्स्यासन

लाभ : (क) मेरुदण्ड लचीला बनता है । (ख) श्वसन-तंत्र अधिक कार्यक्षम बनता है ।

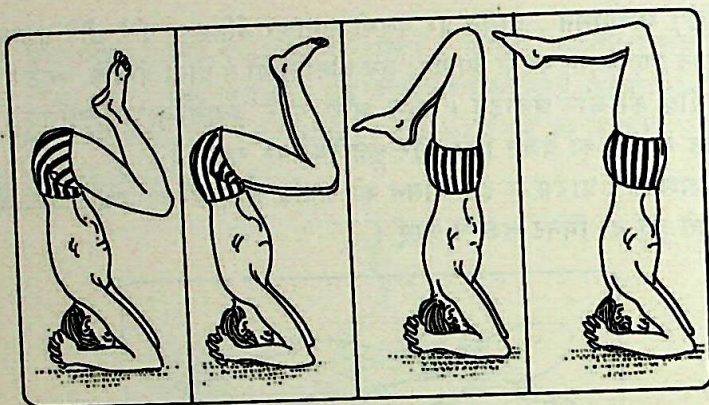
(८) शीर्षासन :



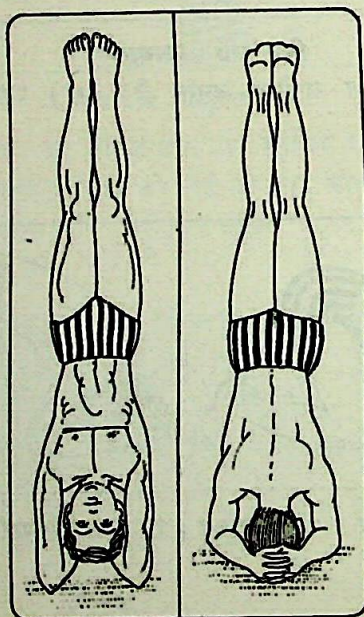
चित्र ९.८ : शीर्षासन (१, २) : पूर्वतैयारी



चित्र ९.९ : शीर्षासन (३, ४) : पूर्वतैयारी



चित्र ९.१० : शीर्षासन (५, ६, ७, ८) : पूर्वतैयारी



शीर्षासन की सामने की पूर्ण स्थिति पूर्ण शीर्षासन में पीठवाला भाग

चित्र ९.११

इस आसन में पूरे शरीर को उलटकर सिर के बल टिकाना है। प्रारंभ में यह आसन किसी की सहायता से अथवा दीवार का सहारा लेकर करें। बाद में धीरे-धीरे स्वयं सन्तुलन साधने की आदत डालें।

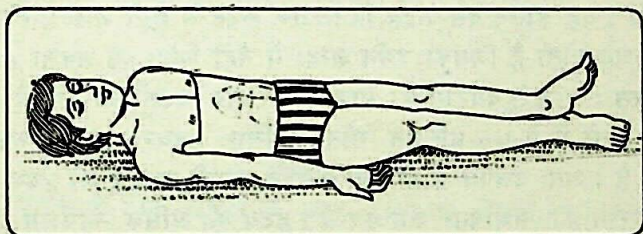
इस आसन की पद्धति चित्रों द्वारा स्पष्ट की गई है।

कालावधि : प्रारंभ में इस आसन की अवधि आधा मिनट रखें। बाद में क्रमशः समय बढ़ाते हुए दो मिनट तक ले जाएँ।

टिप्पणी : (क) उच्च रक्तचाप या हृदय-रोग से पीड़ित लोग यह आसन न करें ।
(ख) शीर्षासन करते समय आँखें बन्द रखें ।

लाभ : यह आसन शरीर के ऊपरी हिस्सों के रक्त-परिभ्रमण में वृद्धि करता है और उन्हें तन्दुरुस्ती प्रदान करता है ।

(९) श्वासन : उपर्युक्त आठ आसनों (या अन्य कसरतों) के अन्त में श्वासन करना अनिवार्य है ।



चित्र ९.१२ : श्वासन

इस आसन का दूसरा नाम मृतासन है । इसमें मन को तन से अलग करने का प्रयत्न किया जाता है । कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक आराम प्राप्त करने के लिए श्वासन से बढ़कर अन्य कोई प्रयोग नहीं है । आज के वेगवान और स्पर्धात्मक जीवन में उत्पन्न होनेवाले मानसिक तनाव का निवारण करने के अमोघ उपाय के रूप में श्वासन सर्वत्र स्वीकृत है ।

सम्पूर्ण आसन को नीचे लिखे अनुसार तीन सोपानों में विभक्त किया जा सकता है :

प्रथम सोपान : बिना तकिये के चित लेट जाइए । हाथ-पैर अनुकूलता के अनुसार मुक्त रखिए । इसके बाद शरीर को शिथिल कर डालिए । प्रत्येक स्नायु को शिथिल करने का प्रयत्न कीजिए । सर्वप्रथम पैरों के स्नायुओं की ओर ध्यान दीजिए । उन्हें यथासंभव ढीले और शिथिल कीजिए । फिर क्रमशः जाँघों, नीचे के घड़, ऊपर के घड़, हाथों, गरदन और चेहरे के स्नायुओं को अधिकाधिक ढीले कीजिए । देखनेवाले को ऐसा लगना चाहिए मानो आपके अंदर जान ही नहीं है ।

दूसरा सोपान : स्नायुओं को शिथिल कर लेने के बाद श्वासोच्छ्वास की क्रिया पर ध्यान दीजिए । अत्यन्त धीरे-धीरे साँस लीजिए । इसी प्रकार हवा को धीरे-धीरे बाहर निकालिए । इस क्रिया को क्रमशः अधिकाधिक धीमा करते जाइए । देखनेवाले को ऐसा महसूस होना चाहिए मानो आप साँस ले ही नहीं रहे हैं ।

तीसरा सोपान : श्वासन का यह सोपान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । किन्तु वह थोड़ा मुश्किल है और उसे सिद्ध करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है ।

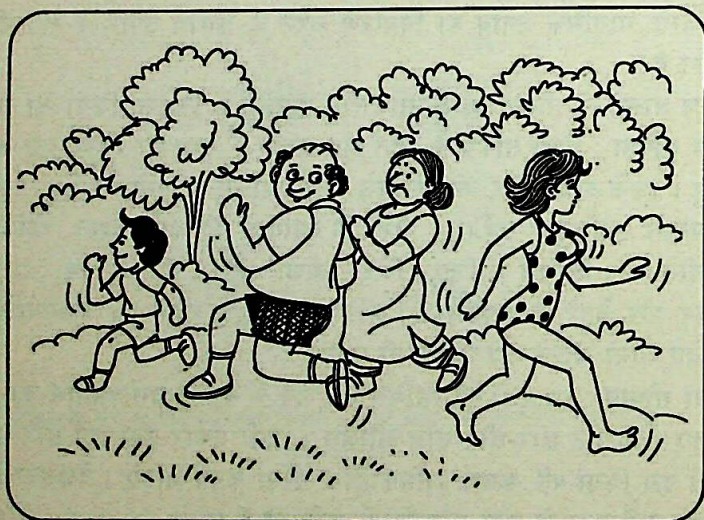
मन की प्रवृत्तियों को एकदम मंद कर देना इस सोपान का उद्देश्य है । मन को पूर्णतः निर्विचार स्थिति में ले जाना इस आसन की आदर्श स्थिति है; किन्तु सभी के लिए यह

संभव नहीं है। अतः मन को शुभ, धार्मिक विचारों में केन्द्रित करने से भी अपेक्षित लाभ प्राप्त हो जाता है।

मन को किसी धार्मिक चिह्न पर केन्द्रित कीजिए। वह चिह्न अपनी भौहों के बीच कपाल में स्थित है ऐसी कल्पना कीजिए। अथवा किसी धार्मिक श्लोक या जप का मन ही मन एकचित्त से रटन कीजिए। प्रारंभ में मन बार-बार भटककर अन्य विषयों की ओर चला जाएगा। इस बात का ध्यान आते ही फौरन मन को पुनः एकाग्र कीजिए और जप में लगा दीजिए।

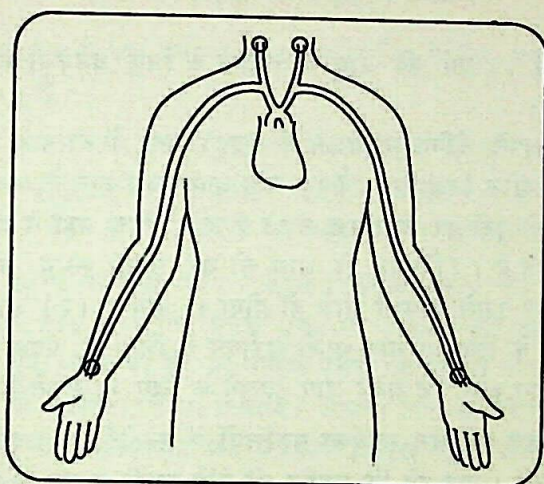
कालावधि : यह आसन दस-पन्द्रह मिनट तक करने से ऐसी शान्ति, विश्रान्ति और सन्तुष्टि का अनुभव होता है जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

तेज कसरत : आज हृदयरोग की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। शहरों में होनेवाली कुल मौतों में से ५० प्रतिशत मौतों के लिए हृदयरोग का आक्रमण कारण-रूप मालूम हुआ है। अतः बचपन से ही ऐसी कसरतें करनी चाहिए जो हृदय को मजबूत बनाएँ और हृदयरोग की संभावना कम कर दें। हृदय को अधिक कार्यक्षम और मजबूत बनाने के लिए ऐसी कसरतें करनी चाहिए जिनमें कम-से-कम पन्द्रह मिनट तक लगातार और वेगवान हलन-चलन करना पड़े ताकि हृदय की धड़कनें खूब तेज हो जाएँ और उसी तेज गति पर कुछ देर स्थिर रहें। तेजी के साथ चलने, दौड़ने, साइकिल चलाने या तैरने से यह प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है।



चित्र ९.१३

कसरतों के कार्यक्रम को कार्यान्वित कैसे करें ? : कसरतों का कार्यक्रम अपनाने से पहले यह जान लीजिए कि आराम की स्थिति में आपके हृदय की धड़कनों की गति कितनी रहती है। इसके लिए, प्रातःकाल बिस्तर से उठने के पहले चित्र ९.१४ में गोलाकार बताए अनुसार (१) अँगूठे के नीचे कलाई के हिस्से पर अथवा (२) टेंटुए के इर्दगिर्द गले के भागों पर उँगलियाँ रखिए।



चित्र ९-१४

यदि उँगलियाँ ठीक धमनी के ऊपर होंगी तो धड़कनों का अनुभव किया जा सकेगा। एक मिनट तक धड़कनें गिनिए और उन्हें नीचे बताए अनुसार नोट कोजिए :

	दिनांक	एक मिनट में धड़कनें
१		
२		

इस कागज को सावधानीपूर्वक सँभालकर रखिए (अथवा इस पुस्तक में ही अपनी धड़कनें दर्ज कर सकते हैं)।

कार्यक्रम की पूर्वतैयारी : हृदय की कार्यक्षमता बढ़ानेवाला कार्यक्रम शुरू करने से पहले पन्द्रह दिनों तक पूर्वतैयारी करना आवश्यक है। पूर्वतैयारी में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ करनी चाहिए ताकि हृदय की धड़कनें (सामान्य की अपेक्षा) बढ़कर 'प्राथमिक क्षेत्र' में पहुँच जाएँ।

नीचे दिये गए कोष्ठक में से, अपनी वय के लिए योग्य, प्राथमिक क्षेत्र की धड़कनों की गति खोज निकालिए :

आयु	प्राथमिक क्षेत्र (warm-up zone) धड़कनों की गति
३०-३४	११६-१२६
३५-३९	११२-१२२
४०-४४	१०८-११८
४५-४९	१०४-११४
५०-५४	१००-११०
५५-५९	९६-१०६
६०-६४	९२-१०२
६५ या अधिक	८६-९६

जैसे, ४० से ४४ वर्ष की आयु के व्यक्ति के लिए घड़कनों की आवश्यक गति १०८ से ११८ है।

अब आप अपने दैनिक कार्यक्रम में पन्द्रह मिनट के व्यायाम का कार्यक्रम कैसे समाविष्ट करें यह खोज निकालिए : (१) आप अपने काम-काज के स्थान से अपनी मोटर को एकाध मील की दूरी पर खड़ी रख सकते हैं और फिर वहाँ से ऑफिस तक पैदल चलते हुए जा सकते हैं। (निश्चय ही, शाम को घर लौटते समय आपको फिर पैदल चलना पड़ेगा, किन्तु इससे आपको लाभ ही होगा।) अथवा (२) आप अपने बच्चे को स्कूल तक पहुँचाने के लिए या साग-भाजी खरीदने के लिए भी पैदल चलकर जा सकते हैं अथवा (३) प्रातःकाल बड़े सवेरे आप टहलने के लिए जा सकते हैं।

दो सप्ताह तक प्रतिदिन उपर्युक्त प्रवृत्तियों में से कोई एक प्रवृत्ति चुनकर पन्द्रह मिनट तक करते रहें। याद रहे कि प्रवृत्ति की गति इतनी अवश्य हो ताकि आपके हृदय की घड़कनों की गति बढ़कर प्राथमिक क्षेत्र में पहुँच जाए (इसके लिए आपको घड़कनों की गिनती करनी पड़ेगी) और प्रवृत्ति बंद करने के बाद भी कुछ समय तक वह गति बनी रहे (इसके लिए प्रवृत्ति बंद करने के ५-७ मिनट बाद आपको पुनः घड़कनों की जाँच करनी होगी।)

उपर्युक्त प्रवृत्ति अपने आप में मूल कार्यक्रम नहीं है। वह केवल एक पूर्वतैयारी ही है। इससे स्नायु और सन्धिस्थल कसरतों के अभ्यस्त होने लगते हैं। इस तैयारी के कारण बाद में (मूल कार्यक्रम के समय) स्नायुओं और सन्धि-स्थलों में दर्द होने की संभावना कम हो जाती है। तदुपरांत यह प्राथमिक तैयारी इस बात का विश्वास भी देती है कि आप किसी तकलीफ या जोखिम के बगैर कसरतें कर सकते हैं।

मूल कार्यक्रम : दो सप्ताहों की उपर्युक्त पूर्वतैयारी के बाद कसरतों का मूल कार्यक्रम शुरू करना चाहिए।

निम्नलिखित कोष्ठक देखिए और अपनी आयु के लिए आवश्यक, लक्ष्यांक क्षेत्र की घड़कनों की गति खोज निकालिए।

आयु	लक्ष्यांक क्षेत्र (Target Zone) घड़कनों की गति	जोखिम क्षेत्र (Danger Zone) घड़कनों की गति
३०-३४	१३६-१६४	१६४ से अधिक
३५-३९	१३२-१६०	१६० से अधिक
४०-४४	१२८-१५६	१५६ से अधिक
४५-४९	१२४-१५२	१५२ से अधिक
५०-५४	१२०-१४६	१४६ से अधिक
५५-५९	११६-१४०	१४० से अधिक
६०-६४	११२-१३६	१३६ से अधिक
६५ या अधिक	१०६-१३०	१३० से अधिक

उदाहरणार्थ, ४० से ४४ वर्ष की आयुवाले व्यक्ति के लिए धड़कनों की आवश्यक गति १२८ से १५६ है।

कसरतों के कारण यदि धड़कनें बढ़कर लक्ष्यांक क्षेत्र में पहुँच जाएँ (और प्रवृत्ति स्थगित करने के पश्चात् सामान्य की अपेक्षा तेज़ गति पर १५-२० मिनट तक बनी रहें) तभी हृदय को लाभ संभव है और उसकी कार्यक्षमता तथा सहनशक्ति बढ़ सकती है।

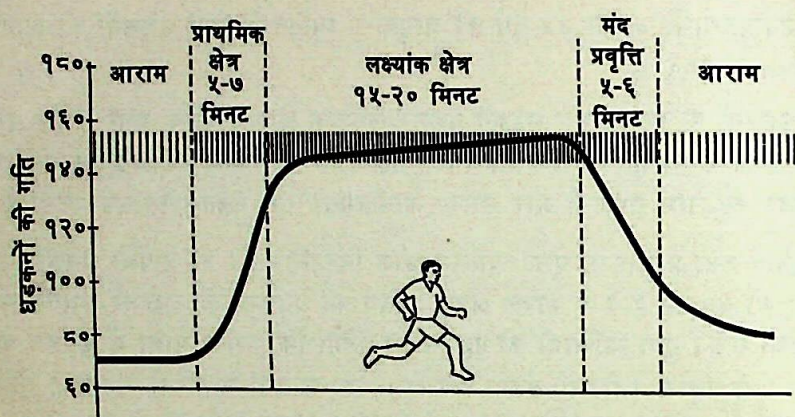
कोई ऐसी प्रवृत्ति या ऐसा व्यायाम खोज निकालिए कि जो आपको अनुकूल पड़ता हो और जो वेगवान होने के कारण आपके हृदय की धड़कनों को बढ़ाकर अभीष्ट संख्या तक पहुँचा सके। युवा व्यक्तियों को यह मालूम पड़ेगा कि पर्याप्त मात्रा में धड़कनें बढ़ाने के लिए उन्हें प्रवृत्ति (दौड़ना, तैरना इत्यादि) अत्यन्त तेजी से करनी पड़ती है। दूसरी ओर, बड़ी आयु के लोग अपेक्षाकृत कम वेगवाली प्रवृत्ति करें (जैसे, तेजी से चलें) तो भी धड़कनें अभीष्ट मात्रा में बढ़ जाती हैं। अलबत्ता, एकाध महीने के बाद आप देखेंगे कि हृदय की धड़कनों को लक्ष्यांक क्षेत्र तक पहुँचाने के लिए आपको पहले की अपेक्षा अधिक प्रवृत्ति करनी पड़ती है। इसका अर्थ यह हुआ कि आपका हृदय अधिक कार्यक्षम बना है, क्योंकि परिश्रम के कारण शरीर में प्राणवायु की जो आवश्यकता खड़ी होती है उसे वह कम धड़कनों के द्वारा ही पूरी कर लेता है।

कसरतों के कार्यक्रम का स्वरूप : संपूर्ण कार्यक्रम ३०-३५ मिनट में पूरा होना चाहिए।

(१) प्रथम ५-१० मिनट तक उतनी ही प्रवृत्ति कीजिए कि जिससे आपके हृदय की धड़कनें बढ़कर प्राथमिक क्षेत्र में पहुँच जाएँ। इस समय के दौरान आपके स्नायु स्वतंत्र हो जाते हैं, उनमें गरमाहट आ जाती है और रक्तनलिकाएँ चौड़ी होने लगती हैं।

(२) बाद के १५-२० मिनट में प्रवृत्ति की रफ्तार बढ़ाइए; ताकि धड़कनें बढ़कर लक्ष्यांक क्षेत्र में पहुँच जाएँ।

(३) १५-२० मिनट तक ऊपर बताए अनुसार तेज प्रवृत्ति करने के बाद उसे एकदम बन्द मत कर दीजिए। पाँचके मिनट तक धीमी प्रवृत्ति करते रहिए। प्रवृत्ति को धीरे-धीरे कम करते हुए बन्द करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तेज प्रवृत्ति के दौरान हृदय रक्त को तेजी के साथ शरीर में धकेलता है; तो दूसरी ओर स्नायुओं के संकोचन के समय नसों पर पड़नेवाले दबाव के कारण रक्त उतनी ही त्वरा से हृदय में लौट आता है। अब यदि प्रवृत्ति को अचानक बन्द कर दिया जाए तो स्नायुओं के संकोचन की क्रिया बन्द हो जाती है; किन्तु हृदय की धड़कनों की गति तुरन्त कम नहीं होती। परिणामस्वरूप पैरों में रक्त जमा हो जाता है और मस्तिष्क में रक्त कम पहुँचता है। ऐसी स्थिति में क्वचित् चक्कर या बेहोशी आने की संभावना रहती है।



चित्र ९-१५

यह सच है कि यदि कसरतें तेजी के साथ और लगातार की जाएँ तथा हृदय की धड़कनें बढ़कर लक्ष्यांक क्षेत्र में पहुँचें तभी हृदय को लाभ होगा; किन्तु धड़कनों की संख्या लक्ष्यांक क्षेत्र से बहुत अधिक न बढ़ जाएँ (जोखिम क्षेत्र में न पहुँच जाएँ) यह देखना आवश्यक है।

कसरतें करने के बाद गर्म पानी का स्नान, साँना बाथ या वाष्पस्नान न लें। ठण्डे पानी से नहाने में कोई आपत्ति नहीं है।

उपर्युक्त कार्यक्रम में नियमितता का निर्वाह हो यह अत्यावश्यक है। कम-से-कम हर दूसरे दिन कसरतें अवश्य ही करें। सप्ताह में एकाध बार या अनियमित रूप से कसरत करने से अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं किया जा सकता। अर्थात् हृदय की कार्यक्षमता नहीं बढ़ती।

प्रवृत्ति (कसरतें) शुरू करने के दो महीने बाद, प्रातःकाल विस्तर से उठने के पहले अपनी धड़कनें फिर गिनीएँ और दो महीने पूर्व की संख्या से उनकी तुलना कीजिए। धड़कनों की गति में नाट्यात्मक कमी मालूम होगी। हृदय की कार्यक्षमता बढ़ने का यह निर्णायक प्रमाण है।

यदि ऊपर निर्दिष्ट नियमित एवं तेज प्रवृत्ति द्वारा हृदय की कार्यक्षमता में वृद्धि की जाए तो उत्तरावस्था में हृदय-रोग के आक्रमण की संभावना नहीं के बराबर हो जाती है।

* * * * *

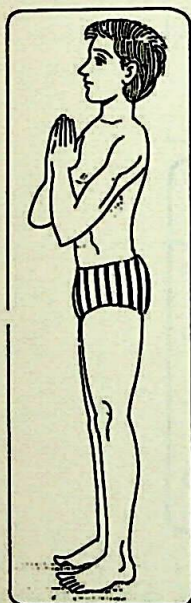
इस प्रकरण में दो प्रकार की कसरतों का उल्लेख किया गया है : (१) योगासन और (२) वेगवान व्यायाम। प्रत्येक प्रकार के लिए आधा-आधा घण्टा देना आवश्यक है। जिन व्यक्तियों के लिए ये दोनों प्रकार की कसरतें प्रतिदिन करना शक्य हो उन्हें पहले योगासन करने चाहिए और बाद में वेगवान कसरतें करनी चाहिए। जिनके पास इतना

समय न हो उन्हें प्रत्येक प्रकार की कसरत एकांतर से करनी चाहिए अर्थात् एक दिन योगासन करें और दूसरे दिन वेगवान कसरतें करें ।

उक्त दोनों प्रकार की कसरतों का लाभ योग की एक ही कसरत 'सूर्यनमस्कार' द्वारा कुछ मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है ।

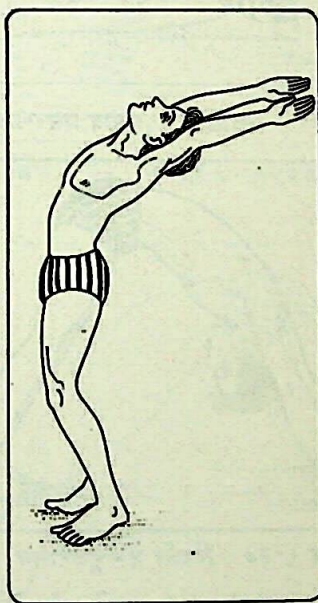
सूर्यनमस्कार की विधि :

यह व्यायाम खुले में और विशेषतः प्रातःकाल की कोमल धूप में हो यह इच्छनीय है ।



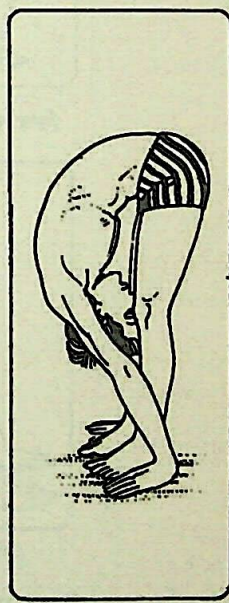
चित्र १०१६

स्थिति १-नमस्कारासन



चित्र १०१७

स्थिति २-पर्वतासन



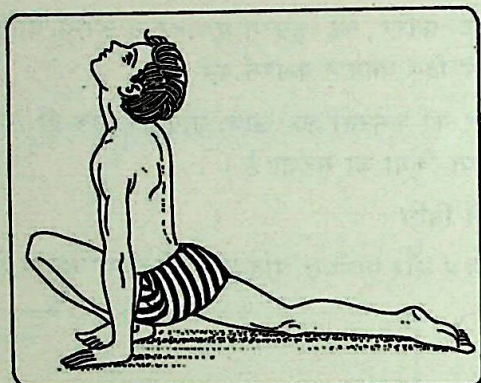
चित्र १०१८

स्थिति ३-हस्तपादासन

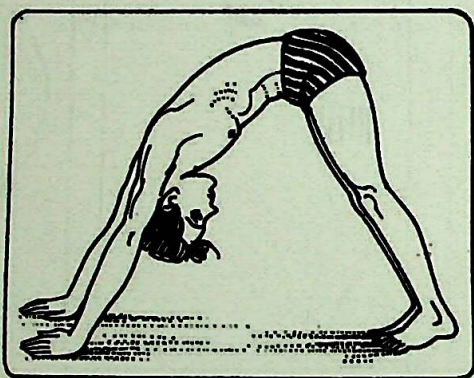
स्थिति १ (नमस्कारासन) : सूर्य के सम्मुख नमस्कार-मुद्रा में खड़े रहिए ।

स्थिति २ (पर्वतासन) : गहरी सांस लेते हुए हाथ ऊपर उठाइए और शरीर को पीछे की ओर मोड़िए ।

स्थिति ३ (हस्तपादासन) : सांस छोड़ते हुए आगे की ओर झुकिए । पैरों को हाथ से छूने का प्रयत्न कीजिए ।



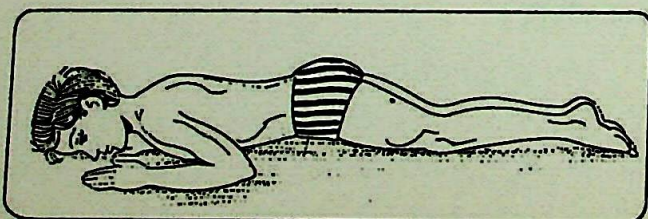
चित्र ९.१९ : स्थिति ४—एकपाद प्रसरणासन



चित्र ९.२० : स्थिति ५—भूधरासन

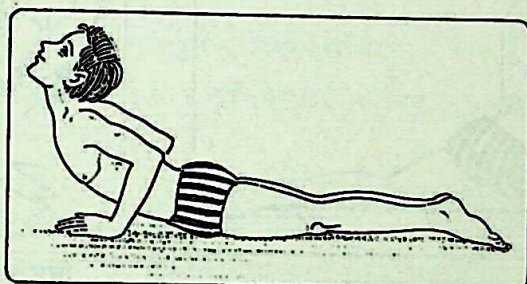
स्थिति ४ (एकपाद प्रसरणासन) : पुनः गहरी साँस लेते हुए दोनों हथेलियाँ जमीन पर टिकाइए और दाहिना पैर पूरी तरह से पीछे की ओर ले जाइए। सिर को पीछे की ओर झुकाइए। इस स्थिति में बायाँ घुटना दोनों हाथों के बीच में रहेगा। अन्त में साँस को बाहर निकलने दीजिए।

स्थिति ५ (भूधरासन) : गहरी साँस लेते हुए बायाँ पैर भी पीछे की ओर ले जाइए। इस स्थिति में शरीर कमर से पूरी तरह झुका रहेगा। शरीर का वजन हाथ के पंजों और पैरों की उँगलियों पर रहेगा।

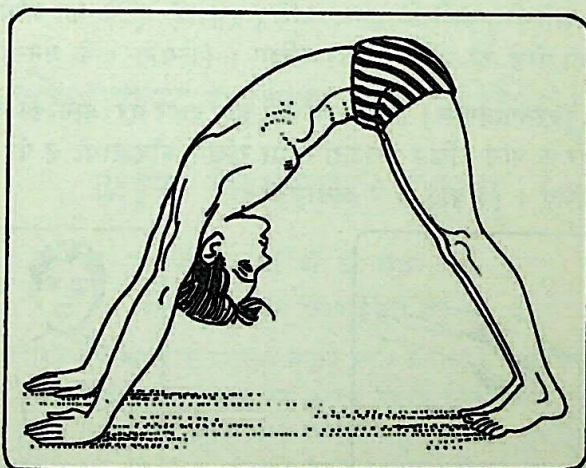


चित्र ९.२१ : स्थिति ६—अर्धांगप्रणियातासन

स्थिति ६ (अष्टांगप्रणिपातासन) : साँस छोड़ते हुए धड़ को नीचे झुकाइए। पैर, घुटने, सीना और चेहरा जमीन पर टिकाइए। पेट का भाग जमीन से ऊपर रहना चाहिए।



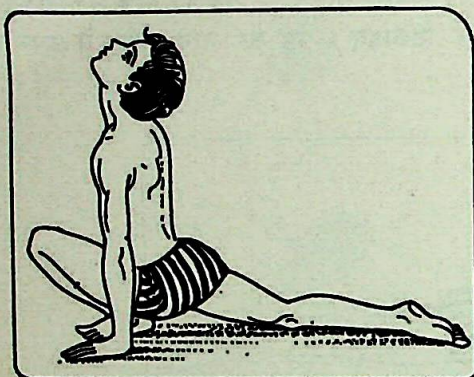
चित्र ९.२२ : स्थिति ७—भुजंगासन



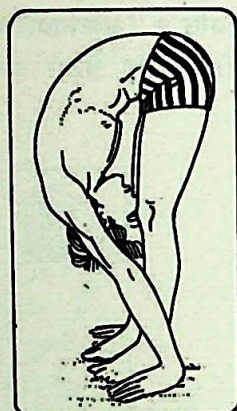
चित्र ९.२३ : स्थिति ८—भूधरासन

स्थिति ७ (भुजंगासन) : गहरी साँस लेते हुए धड़ को यथासंभव पीछे की ओर मोड़िए।

स्थिति ८ (भूधरासन) : साँस छोड़ते हुए धड़ को ऊपर की ओर उठाइए। नितम्ब के जोड़ से शरीर को मुड़ा हुआ रखिए ताकि कूल्हे का भाग सबसे ऊँचा रहे। (स्थिति ५ के अनुसार)



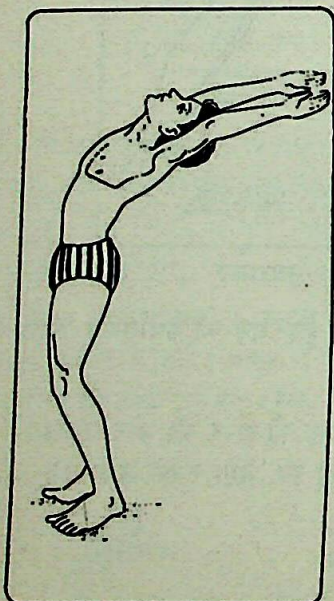
चित्र ९.२४ : स्थिति ९—एकपाद प्रसरणासन



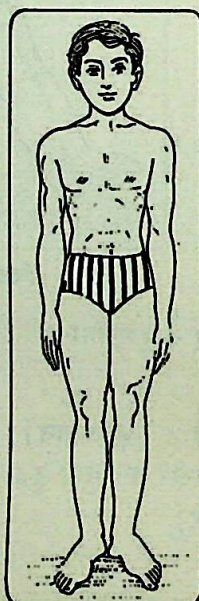
चित्र ९.२५ : स्थिति १०—हस्तपादासन

स्थिति ९ (एकपाद प्रसरणासन) : गहरी साँस लीजिए और दाहिना पैर आगे की तरफ ले जाते हुए दाहिनी हथेली के पास रखिए। बाएँ घुटने को जमीन पर टिकाए रखिए और सिर को पीछे की ओर मोड़कर रखिए। (स्थिति ४ के अनुसार)

स्थिति १० (हस्तपादासन) : साँस छोड़ते हुए बायाँ पैर आगे की ओर ले जाइए और उसे दाहिने पैर के पास रखिए। घुटना सीधा रखिए और हाथों से पैर के अँगूठों को छूने का प्रयत्न कीजिए। (स्थिति ३ के अनुसार)



चित्र ९.२६ : स्थिति ११—पर्वतासन



चित्र ९.२७ : स्थिति १२—वक्रासन

स्थिति ११ (पर्वतासन) : गहरी साँस लेते हुए हाथ ऊपर की ओर ले जाइए और धड़ को पीछे की ओर झुकाइए । (स्थिति २ के अनुसार)

स्थिति १२ (दक्षासन) : साँस छोड़िए, हाथ नीचे ले जाइए और शरीर को शिथिल कीजिए ।

इन बारह स्थितियों से एक पूर्ण सूर्यनमस्कार बनता है ।

पुनरावर्तन : प्रारंभ में ३ से ६ सूर्यनमस्कार कीजिए । पुनरावर्तन की संख्या और गति यथाशक्ति धीरे-धीरे बढ़ाते जाएँ ।

टिप्पणी : सूर्यनमस्कार द्वारा योगासन और वेगवान कसरतें-इन दोनों के लाभ प्राप्त हो सकते हैं । अतः जो व्यक्ति अन्य कसरतें न कर सके उन्हें सूर्यनमस्कार १० से १५ मिनट तक करना चाहिए; सूर्यनमस्कार करते समय अवधि और गति क्रमशः बढ़ाते जाना आवश्यक है । सूर्यनमस्कार खुली हवा में और प्रातःकाल की धूप में किया जाए तो अतिरिक्त रूप में सूर्यनमस्कार के लाभ भी प्राप्त होते हैं । (सूर्यस्नान के विविध लाभों के विषय में प्रकरण १२ में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है ।)

योगासन-प्राणायाम कीजिए और निरोगी रहिए

लेखक : डॉ. पी. डी. शर्मा

अनुवादक : प्रा. भगवानदास जैन

शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए साथ ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए योगासन-प्राणायाम का अनन्य महत्त्व प्राचीनकाल से ही सर्व-स्वीकृत है। इस विषय पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और कुछ स्थानों पर योगासनों के अभ्यास-वर्ग भी चलाए जाते हैं, किन्तु ऐसे ग्रन्थों का अभाव है जिनमें इस विषय की सरल भाषा में जानकारी दी गई हो। अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं के कारण अधिकांश लोग योगासनों के अभ्यास-वर्गों का लाभ नहीं ले सकते। फलस्वरूप करोड़ों भारतवासी हमारी एक अद्भुत सांस्कृतिक विरासत से वंचित रह जाते हैं।

इस ग्रन्थ में उन अमूल्य योगासनों की जानकारी दी गई है जिन्हें ऋषि-मुनियों ने हमें उपहारस्वरूप दिया था। इस ग्रन्थ में प्रत्येक आसन का वर्णन सुरेख चित्र के साथ किया गया है।

शरीर को निरोगी एवं स्फूर्तियुक्त रखने के लिए योगासन आवश्यक हैं और योगासन सीखने के लिए यह ग्रन्थ आवश्यक है।

नवनीत पब्लिकेशन्स (इं) लि.

१०. जलोपचार

प्राकृतिक चिकित्सा में रोगनिवारण के लिए आहार और व्यायाम जैसे आन्तरिक उपायों के अतिरिक्त कई बाह्य उपचार भी किये जाते हैं। इन बाह्य उपचारों के दो उद्देश्य हैं : (१) रोगनिवारण की क्रिया को वेगवती बनाना और (२) रोग के पीड़ादायक लक्षणों से रोगी को आराम पहुँचाना। प्राकृतिक चिकित्सा के बाह्योपचारों में पानी के प्रयोग विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। पानी हमारे जीवन का अविभाज्य अंग है। वास्तव में हमारा शरीर भी ७० प्रतिशत पानी से बना हुआ है।

पानी के अनेक प्रयोग प्रचलित हैं, जिनमें ऐनिमा, कटिस्नान, पूरे शरीर पर भीगी पट्टी, स्थानिक भीगी पट्टियाँ, वाष्पस्नान, गर्म पानी का पैरस्नान, रीढ़स्नान, गर्म पानी से निकलती हुई वाष्प का स्थानिक सेंक, जलनेति, पेट सफाई आदि प्रमुख हैं।

इन समस्त प्रयोगों की छानबीन करने से पहले पानी के दो सर्वसामान्य उपयोगों के विषय में चर्चा करें। ये दो उपयोग हैं : (१) पीने के लिए उपयोग (२) स्नान के लिए उपयोग।

प्रत्येक व्यक्ति को दिनभर में कम से कम ५-६ गिलास पानी पीना चाहिए। वड़े सबेरे मुँह साफ करने के बाद तुरन्त अर्थात् खाली पेट, प्रत्येक भोजन के आधा घण्टा पहले और भोजन के दो घण्टे बाद पानी पीना अच्छा है। इसके अलावा जब-जब प्यास लगे तब-तब पानी पिया जा सकता है। पानी का तापमान समशीतोष्ण हो यह इच्छनीय है। प्रातःकाल खाली पेट पीने के पानी में आधे या एक नीबू का रस मिलाकर पीने से बहुत लाभ होता है। सादे पानी के स्थान पर लोहचुंबकांकित पानी पीकर विशेष लाभ प्राप्त किया जा सकता है। पानी को लोहचुंबकांकित कैसे किया जाए इस विषय की संपूर्ण जानकारी प्रकरण १५ में दी गई है। भोजन के दौरान अनिवार्य स्थिति में एक-दो घूंट पानी पिया जा सकता है। भोजन करने के बाद डेढ़-दो घण्टे तक पानी न पिएँ। आवश्यकता से कम पानी पीने से कब्जियत की तकलीफ होती है साथ ही मूत्रपिण्डों का कार्य दुष्कर हो जाता है यह बात याद रखनी चाहिए।

हमारे जीवन में स्नान का महत्त्व अनन्य है। स्नान के कारण शरीर पर जमी मैल धुल जाती है, त्वचा स्वच्छ और तेजस्वी बनती है तथा उसके छिद्र खुल जाते हैं। छिद्र खुले हों तो पसीने के द्वारा शरीर के भीतरी विषों का निष्कासन सरलता से हो सकता है। तदुपरांत नहाते समय और उसके बाद शरीर को पोंछते समय होनेवाले घर्षण से रक्त-परिभ्रमण वेगवान होता है। साथ ही एक निराली ताजगी का अनुभव होता है। थकावट लगने पर यदि अच्छी तरह रगड़कर नहाया जाए तो थकावट दूर हो जाती है। जिन्हें बहुत पसीना निकलता हो ऐसे व्यक्तियों को तथा गर्मी की ऋतु में तो सभी को दिन में दो बार स्नान करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को समशीतोष्ण या ठण्डे पानी से नहाने की आदत डालनी चाहिए। गर्म पानी से स्नान करते समय कदाचित् अच्छा भले ही लगे, किन्तु

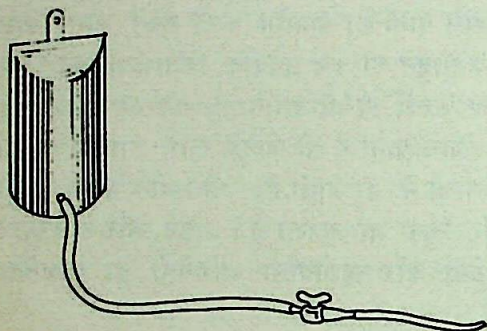
स्नान कर लेने के बाद थकावट और कमजोरी महसूस होती है। जब कि ठण्डे पानी से स्नान करने के बाद शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव होता है; जिन्हें गर्म पानी से नहाने की आदत हो उन्हें भी क्रमशः कम तापमानवाले पानी का उपयोग करते-करते अन्त में ठण्डे पानी पर आ जाना चाहिए। नहाते समय साबुन का कम उपयोग किया जाए यह इच्छनीय है। साबुन त्वचा में रहे हुए उपकारक तत्त्वों को धो डालता है और त्वचा को खुशक और कान्तिहीन बना देता है। यदा-कदा केवल पानी से ही अच्छी तरह रगड़कर नहाया जाए तो भी त्वचा की सफाई ठीक-ठीक मात्रा में हो जाती है; बीच-बीच में मुलतानी मिट्टी, मलाई-हल्दी आदि का उपयोग भी किया जा सकता है। महँगे और खुशबूदार साबुनों से नहाने से सुन्दरता निखर उठेगी और नहानेवाला अभिनेत्री या अभिनेता बन जाएगा ऐसी भ्रान्ति में कोई न रहे।

पानी के विविध प्रयोग :

(१) **एँनिमा** : यथार्थ ही कहा जाता है कब्जियत अनेक छोटे-बड़े रोगों की जननी है। कब्जियत दूर करने के लिए और बड़ी आँत में जमे हुए सड़े मल को बाहर निकालने के लिए एँनिमा से अधिक सरल, निर्दोष और तात्कालिक परिणाम देनेवाला अन्य कोई उपाय नहीं है। जुलाब की दवा लेने के बाद जुलाब कब लगेगा इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनिश्चित समय पर या अनिश्चित स्थान पर जुलाब लग जाए तो विकट परिस्थिति खड़ी हो जाती है।



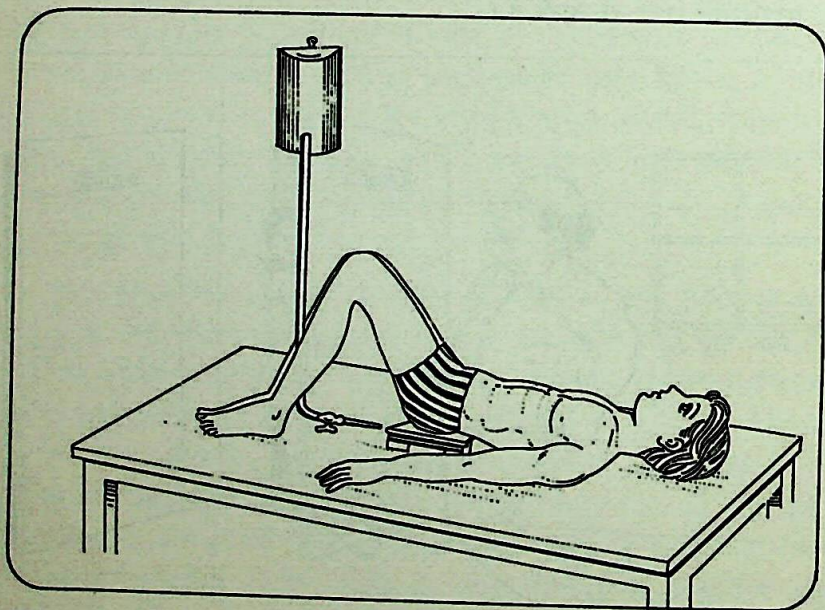
चित्र १०१



चित्र १०२ : ऍनिमा लेने का साधन

ऍनिमा लेने के लिए एक विशिष्ट प्रकार का, सस्ता साधन मिलता है। उसमें पानी भरने के लिए इन्मल का डिब्बा, लगभग पाँच फुट लम्बी प्लास्टिक की नली, पानी का नियंत्रण करने के लिए पानी की टोंटी तथा कॅथेटर का समावेश होता है। कॅथेटर छोटा, बेकेलाइट का भी मिलता है, किन्तु उसे न लें, बल्कि २४ नंबर का प्लास्टिक का कॅथेटर लें। वह ऍनिमा लेने के लिए अधिक सुगम पड़ता है।

ऍनिमा लेने की पद्धति : ऍनिमा के डिब्बे में डेढ़ से दो लिटर कुनकुना या सम-शीतोष्ण पानी भरकर उसे जमीन से करीब तीन फुट की ऊँचाई पर लटका दें या आवश्यक ऊँचाईवाले स्टूल पर रख दें। कॅथेटर के छोर को तेल या साबुन से चिकना बना दें। मलद्वार को भी इसी तरह चिकना कर दें। पानी चढ़ाने से पहले टोंटी खोलकर थोड़ा पानी वह जाने दें ताकि उसमें स्थित हवा बाहर निकल जाए।



चित्र १०३ : ऍनिमा लेने की पद्धति

इस चित्र में बताए अनुसार चित लेट जाइए। इसके बाद कॅथेटर के छोर को बड़े हल्के से और सफ़त के साथ गुदाद्वार के अन्दर लगभग तीन इंच जाने दीजिए। इसके

बाद नल खोल दीजिए। अब डिब्बे का पानी बड़ी आँत में भरने लगता है। पानी चढ़ाते-चढ़ाते यदि बीच में शंका का अनुभव हो तो पानी चढ़ाना बन्द कर दें। इसके बाद फिर शुरू करें। सारा पानी आँत में चढ़ जाए तब दो-तीन मिनट पानी को रोक रखने के बाद शौच के लिए जाएँ। मल सहित पूरा पानी बाहर निकल जाएगा। तनिक भी जोर मत लगाइए। आँत बिल्कुल साफ हो जाएगी। कुछ अधिक समय तक शौचालय में बैठें। एनिमा लेने से कई बार इतना अधिक मल निकलता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

टिप्पणी : (क) जुलाब की दवाओं की अपेक्षा एनिमा अधिक सचोट और निर्दोष उपाय है। इसका कोई प्रतिप्रभाव नहीं होता और १०-१५ मिनट में आशातीत काम हो जाता है।

(ख) उपवास या पूर्ण रसाहार का कार्यक्रम शुरू करने से दो-तीन दिन पहले और शुरू करने के बाद तीन-चार दिनों तक प्रतिदिन एनिमा लेना आवश्यक है। तीव्र रोगों में दो-तीन दिनों तक प्रतिदिन एनिमा लें। जीर्ण रोगों में एक सप्ताह तक या उससे भी अधिक समय तक प्रतिदिन एनिमा लेने की आवश्यकता पड़ सकती है।

(ग) अपवादरूप संयोगों को छोड़कर गर्म पानी का एनिमा लेना इष्ट नहीं है।

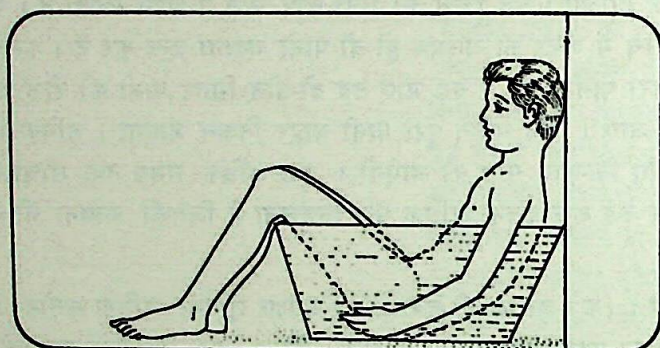
(घ) थोड़े दिनों तक यदि प्रतिदिन एनिमा लेना पड़े तो बीच-बीच में एकाध दिन पानी में नीबू का रस मिलाकर सेवन करने से मल की सफाई और भी अच्छी तरह होती है। साबुन जैसी चीजें कदापि एनिमा के पानी में न मिलाएँ। साबुन में अवस्थित सोड़ा आँत को हानि पहुँचाता है।

(च) साग-भाजी, फल आदि रेशेवाले खाद्य पदार्थों का सेवन करनेवाले तथा नियमित व्यायाम करनेवाले लोगों को एनिमा की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है।

(२) कटिस्नान (Hip bath) : जठर, यकृत, प्लीहा, आँतें, मूत्रपिण्ड आदि पाचन-अवयवों को उत्तेजित करने के लिए तथा उन्हें कार्यक्षम बनाए रखने के लिए कटिस्नान एक सचोट उपाय है।

कटिस्नान के लिए एक विशेष प्रकार के टब की आवश्यकता पड़ती है। इसके स्थान पर भोजन-समारंभों में, भोजन की प्लेटें एकत्र करने के काम में लिया जानेवाला लम्बवृत्ताकार टब भी अच्छा काम देता है। कटिस्नान के लिए सामान्यतः ३० इंच लम्बा और २० से २२ इंच चौड़ा टब चाहिए।

कटिस्नान की पद्धति : टब में ८ से १० इंच के करीब समशीतोष्ण या ठण्डा पानी भरें। एक गिलास गर्म पानी पीकर टब में इस तरह बैठें ताकि शरीर का मध्य भाग अर्थात् नाभि से नीचे का हिस्सा (पेड़) और जाँघ का कुछ भाग पानी में डूबा रहे, जबकि घड़ और पैर टब के बाहर रहें; तत्पश्चात् एक मोटे खुरदरे हथौलिए से पेड़ पर जोर से रगड़ते रहें।



चित्र १०४ : कटिस्तान की पद्धति

यह क्रिया शीत ऋतु में १० से १५ मिनट और ग्रीष्म ऋतु में २० से ३० मिनट तक की जा सकती है। कटिस्तान पूरा होने के बाद पेड़ का भाग अच्छी तरह पोंछ लें; या पेट से सम्बन्धित थोड़ी कसरतें करें।

टिप्पणी : (क) कटिस्तान खाली पेट ही करें।

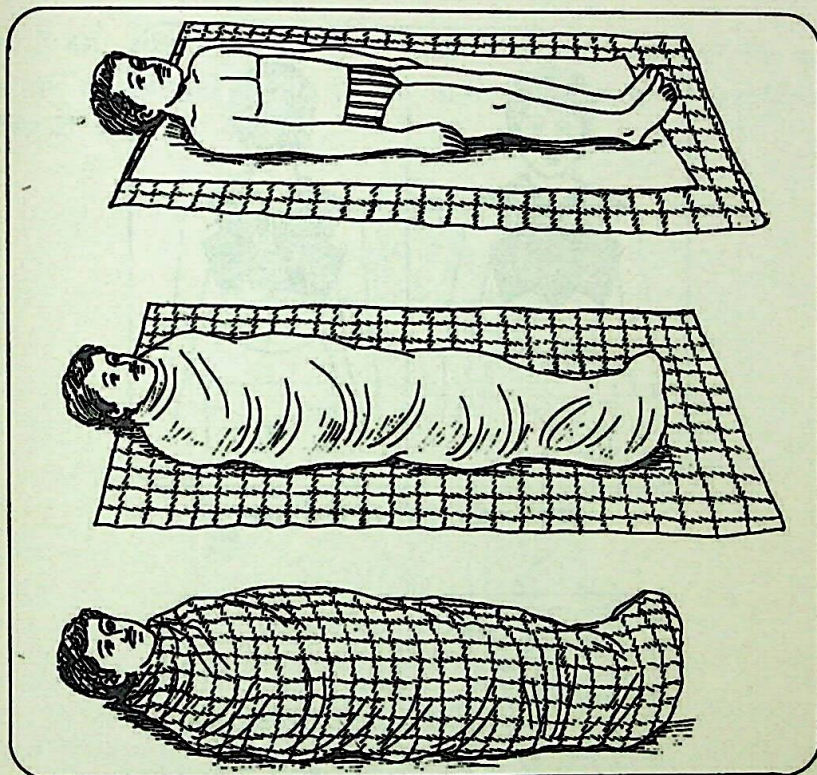
(ख) कटिस्तान पूर्ण होने के बाद आधे घण्टे तक कुछ भी खाएँ नहीं।

(ग) पेट का दर्द, अनियमित मासिक स्राव और असमय ही बन्द होनेवाले मासिक स्राव में गर्म पानी से कटिस्तान करें। गर्म पानी के कटिस्तान में सिर पर ठण्डे पानी का नैपकिन रखें। इसमें बारी-बारी से गर्म और ठण्डे पानी का कटिस्तान भी लाभकारी है। इसके लिए पास-पास दो टब रखने की आवश्यकता पड़ती है। दो मिनट गर्म पानी के टब में बैठें और एक मिनट ठण्डे पानी के टब में बैठें।

(३) पूरे शरीर की भोगी पट्टी (लपेट) : विपुल मात्रा में पसीना उत्पन्न करके शरीर से विषद्रव्यों को बाहर निकालने का यह एक बढ़िया प्रयोग है।

इस प्रयोग के लिए ७-८ फुट लम्बाई और लगभग चार फुट चौड़ाई का सूती कपड़ा, एक-दो ऊनी कम्बल और एक नैपकिन चाहिए।

पद्धति : सर्वप्रथम कम्बल को जमीन पर बिछाईए। इसके बाद ठण्डे पानी में भिगोकर निचोड़ा हुआ कपड़ा बिछाईए। एक गिलास गर्म पानी पीकर इस बिछौने पर हाथ पैरों के साथ सटाकर निर्वस्त्र लेट जाइए। सिर को बिछौने के बाहर रखिए; इसके बाद प्रथम कपड़े को गले से पैर तक शरीर पर पूर्णतः लपेट लीजिए। फिर इसी प्रकार कम्बल को भी पूरी तरह लपेट लीजिए। अन्त में खुले रखे हुए माथे पर ठण्डे पानी में भिगोया हुआ नैपकिन लपेट लीजिए।



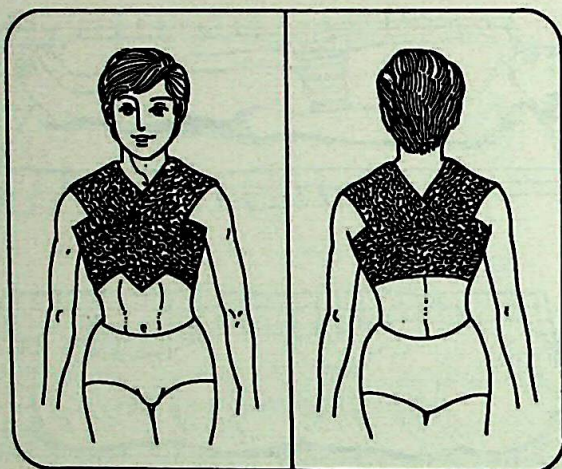
चित्र १०५ : पूरे शरीर पर भीगी लपेट

यह लपेट करने के बाद प्रारंभ में कदाचित् ठण्ड लगेगी, किन्तु थोड़ी ही देर में शरीर की गर्मी से लपेट गर्म होने लगेगी। १५-२० मिनट में ही पर्याप्त मात्रा में पसीना निकलने लगता है और कपड़े में उसका शोषण होने लगता है। २५-३० मिनट के बाद लपेट खोल डालें और शरीर को ठण्डे भीगे कपड़े से पोंछ डालें। इस प्रकार पसीने के साथ भारी मात्रा में विषद्रव्य बाहर निकल जाते हैं। कपड़ा सूँघने से इस बात का यकीन हो जाता है।

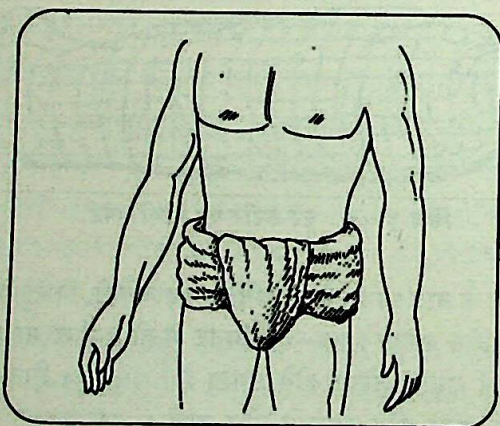
टिप्पणी : (क) इस लपेट से मुख्यतः विषद्रव्यों का पसीने के साथ निष्कासन हो जाता है। विषद्रव्यों का निष्कासन होते ही यदि ज्वर हो तो वह भी उतर जाता है; किन्तु ज्वर की पूर्वावस्था में अर्थात् जब रोगी को ठण्ड लग रही हो या उसका शरीर काँप रहा हो उस समय यह प्रयोग न करें।

(ख) शरीर पर लपेटे हुए सूती कपड़े को अच्छी तरह धोकर धूप में सुखाने के बाद ही उसका दूसरी बार उपयोग करें।

(ग) आवश्यकतानुसार पूरे शरीर की भीगी लपेट के स्थान पर छाती, पेड़ू, जननांगों या हाथ-पैर की भीगी लपेट भी की जा सकती है। जननांगों की भीगी लपेट को 'I पेंक' भी कहते हैं।



चित्र १०.६ : छाती की भीगी लपेट

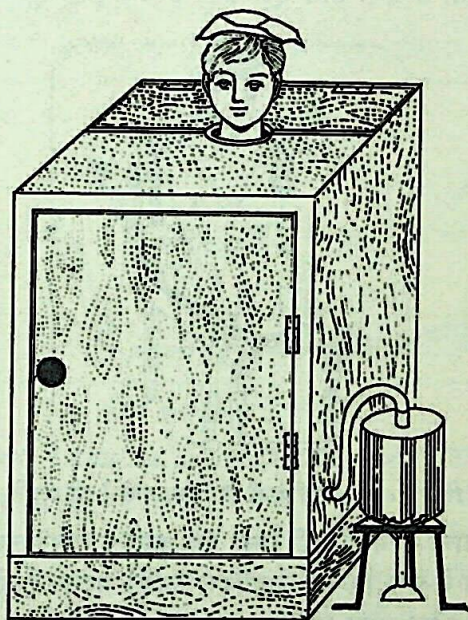


चित्र १०.७ : जननांगों की भीगी लपेट

(४) बाष्पस्नान : अत्यधिक मात्रा में पसीना उत्पन्न करके शरीर से विषद्रव्यों को बाहर निकालने के लिए यह भी एक अत्यन्त उपयोगी प्रयोग है जिसे सर्वत्र अपनाया गया है। इस प्रयोग के लिए एक विशेष प्रकार बाष्पपेटी की आवश्यकता पड़ती है। घर में भी यह साधन बनाया या रखा जा सकता है।

पद्धति : खाली पेट एक गिलास गर्म पानी पीकर तथा कम-से-कम (आवश्यकता-नुसार) कपड़े पहनकर पेटी में बैठ जाएँ। पेटी के बाहर रहनेवाले सिर पर ठण्डे पानी में भिगोया हुआ नैप्किन रखें ताकि सिर ठण्डा रहे। बाष्पस्नान के दौरान थोड़ी-थोड़ी देर में सिर पर पानी सींचते रहें। अब केतली से निकलती हुई भाप को नली के द्वारा पेटी में जाने दें। करीब पन्द्रह मिनट के बाद अच्छी तरह पसीना आ जाने पर बाष्पपेटी से

बाहर निकलें; अतिरेक न होने दें। बाहर आने के बाद शरीर को ठण्डे-भीने कपड़े से पोंछ डालें या ठण्डे पानी से स्नान कर लें। वाष्पस्नान के बाद शरीर हल्का-फुल्का और फुर्तीला बन जाता है।



चित्र १०८ : वाष्पस्नान लेने की पद्धति

टिप्पणी : (क) बहुत अधिक कमजोर, हृदयरोग अथवा उच्च या निम्न रक्तचाप से पीड़ित रोगियों और सर्गर्भा स्त्रियों को वाष्पस्नान नहीं लेना चाहिए।

(ख) वाष्पस्नान सप्ताह में एक बार लिया जा सकता है; स्थूल व्यक्ति सप्ताह में दो बार यह स्नान भी ले सकते हैं।

(ग) वाष्पस्नान के दौरान चक्कर आने का अनुभव हो तो फौरन यह क्रिया बन्द कर दें। वाष्पपेटी से बाहर निकलने के बाद सिर को ठण्डे पानी से धो डालें और थोड़ी देर लेटे रहें।

(घ) कुछ चिकित्सक ज्वर उतारने के लिए वाष्पस्नान की सहायता लेते हैं जो सर्वथा अनुचित है।

(ङ) शरीर की गर्मी (चयापचय गति) बढ़ाने के लिए और वजन कम करने के लिए यह एक अकसीर उपाय है।

(च) शरीर में अवस्थित विषद्रव्यों को बाहर निकालने के लिए वाष्पस्नान की अपेक्षा पूरे शरीर की भीगी लपेट को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

(५) गर्म पानी का पैरस्नान : शरीर के ऊपरी हिस्से में होनेवाले रक्त या पानी के जमाव को कम करने के लिए गर्म पानी का पैरस्नान एक रामबाण उपाय है।

गर्म पानी के पैरस्नान के लिए लगभग पौन भाग पर्याप्त गर्म (पैर डालने से जलन न हो इतना गर्म) पानी से भरी डोल एक ऊनी कम्बल और एक नैप्किन चाहिए।



चित्र १०९ : गर्म पानी से पैरस्नान लेने की पद्धति

पद्धति : गर्म पानी से भरी हुई डोल एक कुर्सी के आगे रखें। एक गिलास गर्म पानी पीकर तथा कम-से-कम (केवल आवश्यक कपड़े) पहनकर कुर्सी पर बैठें। दोनों पैर पानी में डुबाएँ। शरीर पर चारों ओर कम्बल लपेट लें। सिर पर ठण्डे पानी में भिगोया हुआ नैप्किन रखें। प्रारंभ में यदि दोनों पैर एक साथ डुबाए न जा सकें तो बारी-बारी से एक-एक पैर डुबाएँ। कुछ समय के बाद दोनों पैर एक साथ पानी में रखे जा सकेंगे। १५-२० मिनट में पसीना निकलने लगेगा। आधे-एक घण्टे में पर्याप्त पसीना आ जाने पर प्रयोग समाप्त कर दें। प्रयोग के दौरान सिर पर रखे हुए नैप्किन पर थोड़ी-थोड़ी देर में पानी सींचते रहें। यह प्रयोग करते समय सामान्यतः महिलाएँ अपने बालों को सूखा रखें। प्रयोग पूरा होने के बाद शरीर को ठण्डे भीगे कपड़े से पोंछ डालें और ५-१० मिनट लेटे रहें।

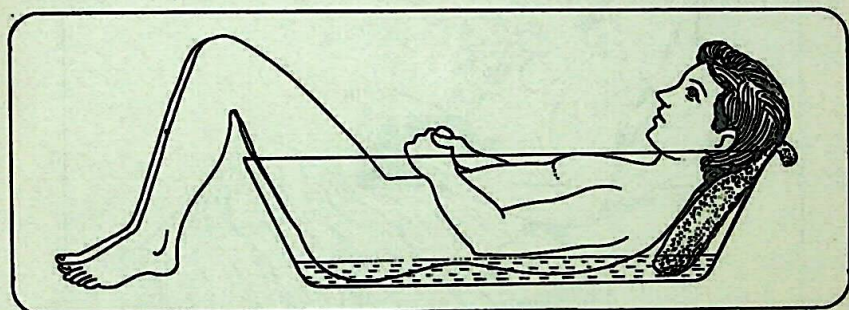
टिप्पणी : (क) इस प्रयोग में काफी रक्त पैर की तरफ प्रवाहित होने लगता है। स्नान पूरा होने के बाद १५-२० मिनट तक पैर लाल रहते हैं। इसके लिए चिन्ता न करें।

(ख) इस स्नान के दौरान अपेक्षित समय में पर्याप्त पसीना न निकले तो पैरों को ऊपर उठाकर तीन-चार गिलास उबलता हुआ पानी डोल में मिला दें। इससे पानी की उष्णता में पुनः वृद्धि होने से अपेक्षित परिणाम प्राप्त होगा।

(ग) इस प्रयोग के दौरान रक्त का दबाव कम होता है। इसलिए क्वचित् सिर चकराने का-सा अनुभव हो सकता है। आराम करने से यह तकलीफ दूर हो जाती है। सुरक्षा की खातिर अतिशय निर्बल व्यक्तियों, सगर्भा स्त्रियों या रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) की विकृतियों से पीड़ित व्यक्तियों को गर्म पानी का पैरस्नान नहीं करना चाहिए।

(६) **रीढ़स्नान** : हमारे शरीर में मेरुदण्ड अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। हम रीढ़ को विविध संदेशों के आदान-प्रदान का 'जंक्शन' अर्थात् केन्द्र मान सकते हैं। रीढ़स्नान से रीढ़ को शक्ति, उत्तेजना और पुष्टि मिलती है, अतः परोक्ष रूप में समग्र चेतातंत्र तथा शरीर को लाभ होता है।

सामग्री : रीढ़स्नान का टब, स्नान में उपयोगी एक तौलिया और एक कम्बल।



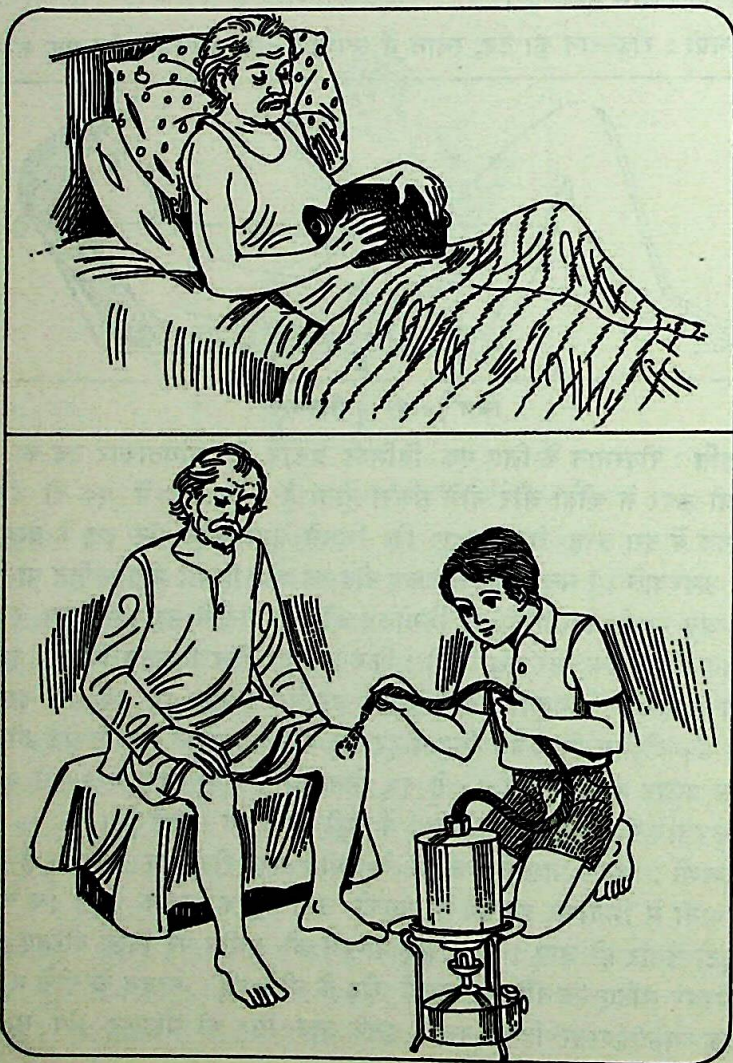
चित्र १०.१० : रीढ़स्नान

पद्धति : रीढ़स्नान के लिए एक विशिष्ट प्रकार के आयताकार टब का उपयोग होता है जो ऊपर से चौड़ा और नीचे सँकरा होता है। इस टब में एक-दो इंच पानी भरिए। टब में इस तरह लेट जाइए कि जिससे हाथ और पैर टब के बाहर रहें। गरदन के ऊपरवाले दो मनकों को छोड़कर रीढ़ का शेष हिस्सा पीठ सहित पानी में डूब जाएगा। अब नहाने के तौलिये को भिगोकर और लम्बाई में तह करके उस स्थान पर रख दीजिए जिस तरफ सिर रखना हो। फिर उस पर सिर टिका दीजिए। इस प्रकार रीढ़ पानी के सम्पर्क में आएगी। स्नान ग्रहण कर लेने के बाद पूरे टब को इस प्रकार कम्बल से ढँक दीजिए कि केवल सिर बाहर रहे और बाहर की हवा शरीर को न लगने पाए। इस प्रकार शीत ऋतु में १० से १५ मिनट और ग्रीष्म ऋतु में १५ से २० मिनट तक यह उपचार ग्रहण करें। इस प्रयोग में चट्टी पहनी जा सकती है।

टिप्पणी : जिनके पास टब न हो वे जमीन पर रीढ़स्नान ले सकते हैं। नैपकिन को ठण्डे पानी में भिगोकर इस ढंग से उसकी खड़ी तहें करें ताकि ६-७ इंच चौड़ी एक लम्बी पट्टी तैयार हो जाए। तहाए हुए नैपकिन को जमीन पर बिछा दीजिए और उस पर इस प्रकार लेटिए कि नैपकिन सम्पूर्ण रीढ़ के नीचे रहे। गरदन के नीचे नैपकिन का कुछ अधिक मोटाईवाला हिस्सा रखें। इसके बाद सिर को छोड़कर शेष सारे शरीर को कम्बल से ढँक दें।

(७) **गर्म पानी का भीगा या सूखा सेंक** : स्थानिक दर्द में आराम पाने के लिए अथवा जिस हिस्से का रक्त-परिभ्रमण कम हो गया हो उसे व्यवस्थित करने के लिए गर्म सेंक उपयोगी है। इसमें पीड़ावाले हिस्से पर गर्म पानी में भिगोया हुआ कपड़ा रखने से, विशिष्ट साधन के द्वारा उस हिस्से पर वाष्प छोड़ने से अथवा गर्म पानी की थैली या बोतल द्वारा सेंक करने से गर्मी के कारण ज्ञानतंतुओं की क्रिया मंद पड़ती है (sedation),

स्नायुओं का तनाव कम होता है, रक्तपरिभ्रमण बढ़ता है और सूजन कम होती है। परिणामस्वरूप पीड़ा दूर हो जाती है। सेंक करने के बाद उस हिस्से को भीगे कपड़े से पोंछ डालें।



चित्र १०-११ : गर्म पानी या बाष्प का सेंक

(८) जलनेति : श्वसनतंत्र के ऊपरी भाग अर्थात् नाक और गले की सफाई के लिए यह क्रिया अत्यन्त उपयोगी और लाभप्रद है।

सामग्री : एक गिलास साधारण कुनकुना नमकीन पानी और एक छोटी कटोरी।

पद्धति : नमकीन पानी से कटोरी को लबालब भर लीजिए। नाक को पानी में डुबाइए और जरा भी वक्त गँवाए बगैर फौरन जोर से नाक के द्वारा जितना पानी खींचा

जा सके उतना खींच लीजिए । फौरन मुंह खोल दीजिए । गले में आए हुए पानी को मुंह के रास्ते निकाल दीजिए । गिलास का सारा पानी खत्म होने तक इस क्रिया का पुनरावर्तन कीजिए । अन्त में नाक में रहे हुए पानी को अच्छी तरह छिनककर निकाल डालने का प्रयत्न कीजिए ।

टिप्पणी : प्रारंभ में दो-तीन दिन परेशानी-सी महसूस होगी । संभव है थोड़ी देर तक सिर कुछ भारी भी लगेगा । दो-तीन दिनों में आदत पड़ जाएगी । इसके बाद कोई कठिनाई नहीं होगी ।

कुछ विशेषज्ञ क्रमशः पानी की मात्रा बढ़ाने की सलाह देते हैं । इस प्रकार आधे लिटर से एक लिटर तक पहुँचने का लक्ष्य रखें । इससे अच्छा लाभ होता है ।

यह क्रिया दिन में किसी भी समय हो सकती है; फिर भी बड़े सवेरे का समय विशेष लाभदायक है—मुखशुद्धि के समय सर्दी या अन्य किसी कारण से नाक बन्द हो जाती हो, साँस लेने में तकलीफ होती हो तो रात को सोते समय नेति करने से ज्यादा अच्छा रहता है । आदत पड़ जाने के बाद और किसी प्रकार की कोई तकलीफ महसूस न हो तो यदा-कदा नमक मिश्रित ठण्डे पानी की जलनेति का प्रयोग भी किया जा सकता है ।

कुछ अनुभवी लोग नाक से खींचे हुए पानी को पी जाने की सलाह दिया करते हैं किन्तु ऐसा करना उपयुक्त नहीं है । नाक के भीतर का कचरा पेट में न चला जाए इस लिए पानी को मुंह से निकाल देना ही हितकर है ।

लाभ : जलनेति से नाक की सम्पूर्ण सफाई होती है । यह सर्दी-जुकाम का अचूक इलाज है । इससे सिरदर्द में राहत मिलती है, आँखों को लाभ होता है और दृष्टि तेजस्वी बनती है । नाक जकड़ जाना, पीनस आदि नाक की खराबियाँ और अन्य छोटी-बड़ी तकलीफों में इस क्रिया से राहत मिलती है ।

(९) वमन (पेट और अन्ननली की सफाई के लिए) :

सामग्री : दो चम्मच नमकवाला लगभग चार गिलास साधारण गर्म पानी ।

पद्धति : प्रातःकाल सर्वप्रथम यह क्रिया करें । यद्यपि खाली पेट कभी भी यह क्रिया की जा सकती है । उपर्युक्त प्रकार से तैयार किया हुआ पानी गटगटाना शुरू कर दीजिए । जरा भी रुके बगैर जबरन भी यथासंभव अधिकाधिक पानी पीने का प्रयत्न कीजिए । पानी एक साथ पीना आवश्यक है : एक-एक घूंट नहीं । अन्त में एक स्थिति ऐसी आएगी जब एक घूंट पानी पीना भी असंभव हो जाएगा । मिचली और उबकाई भी आने लगेगी ।

अब तुरन्त ही कमर से झुक जाइए । बीच वाली दो उँगलियाँ गले में गहराई तक डालिए और उबकाई करना शुरू कीजिए । तुरन्त ही पिया हुआ पानी गले के रास्ते बाहर आने लगेगा । एक बार पानी निकल जाने के बाद पुनः एक-दो बार प्रयत्न कीजिए । अधिकांश पानी वमन के द्वारा निकल जाएगा । शेष पानी मूत्रमार्ग से निकल जाएगा ।

टिप्पणी : यह क्रिया महीने में एक या दो बार की जा सकती है। अनेक चिकित्सक अमुक रोगों में यह क्रिया प्रतिदिन या एकान्तर दिवस पर करने का परामर्श देते हैं; किन्तु यह उचित नहीं है, क्योंकि पेट में अवशिष्ट नमकवाले पानी को शरीर से बाहर निकालने के लिए मूत्रपिण्डों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है।

लाभ : अधिकांश चिकित्सक पेट की खराबियों को सभी तकलीफों की जड़ मानते हैं। वमन द्वारा पेट और अन्ननली की सफाई होती है। ऐंसिडिटी, खट्टी डकारें, दमा आदि तकलीफों में इस क्रिया से राहत मिलती है। यदा-कदा वमन करते रहने से इस प्रकार की तकलीफें उत्पन्न नहीं होतीं।

(१०) नमकीन गर्म पानी की भाप :

सामग्री : एक बड़ी पतली में लगभग चार गिलास नमकीन पानी, एक बड़ी चादर और पसीना पोंछने के लिए एक भिगोया हुआ कपड़ा।

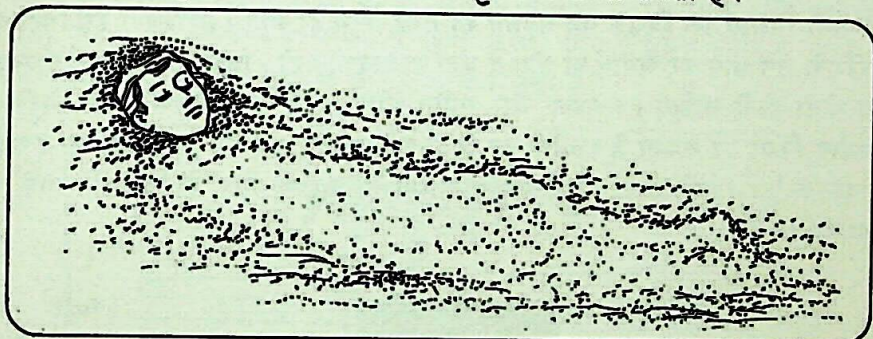
पद्धति : पानी से भरी पतली को चूल्हे पर रख दीजिए। पानी उबलते ही पतली को नीचे उतारकर उसके सामने बैठ जाइए। कम-से-कम कपड़े पहनिए। चादर से पूरे शरीर को ढँक लीजिए। आँखें बन्द रखकर भाप लेना शुरू कर दीजिए। चेहरे पर, मुँह के अन्दर, नाक के भीतर (साँस लेकर) और आगे की ओर झुककर सीने पर भी भाप लीजिए। पाँच-सात मिनट में अच्छी तरह पसीना आ जाएगा। इसके बाद ठण्डे भीगे कपड़े से भापवाले भाग को पोंछ डालिए।

लाभ : भाप सर्दी और जुकाम का एक अकसीर इलाज है। सम्पूर्ण श्वसनतंत्र के रोगों में यह उपयोगी है। चेहरे के मुँहासों को मिटाने तथा खाँसी और दमे के रोगों में भी भाप उपयोगी है। इस क्रिया से दाँत की पीड़ा में भी राहत मिलती है।

टिप्पणी : उच्च रक्तचाप तथा क्षय की तकलीफवालों को दो-तीन मिनट से अधिक भाप नहीं लेनी चाहिए। उन्हें केवल मुँह और नाक से ही भाप लेनी चाहिए, सीने पर भाप नहीं लेनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के बाह्योपचार में मिट्टी का स्थान पानी के समान ही महत्त्वपूर्ण है। रोग-निवारण में जलोपचार से जिस प्रकार के लाभ होते हैं उसी प्रकार के लाभ मिट्टी के प्रयोग से भी प्राप्त होते हैं।

सामान्यतः मिट्टी का उपयोग लेप, पट्टी या पुलटिस के रूप में होता है। अधिकांशतः पेड़ या फिर शरीर के जिस हिस्से में रोग के लक्षण दिखाई दें उस हिस्से पर भीगी मिट्टी का लेप किया जाता है। आवश्यकतानुसार पूरे शरीर पर भी मिट्टी लगाई जा सकती है या केवल सिर को बाहर रखकर शेष शरीर को मिट्टी में रखा जा सकता है।



चित्र ११.१ : पूरे शरीर पर मिट्टी का प्रयोग

मिट्टी की पट्टी से निम्नलिखित लाभ होते हैं :

(१) ठण्डक : पानी की पट्टी की अपेक्षा मिट्टी के लेप या पट्टी से अत्यधिक ठण्डक प्राप्त होती है। ज्वर का प्रकोप अतिशय बढ़ जाने पर मिट्टी की पट्टी से उसे कम किया जा सकता है। अलबत्ता, जब तक शरीर का तापमान अपेक्षित मात्रा में नीचा नहीं उतर जाता तब तक मिट्टी की पट्टी को थोड़ी-थोड़ी देर में बदलते रहना चाहिए।

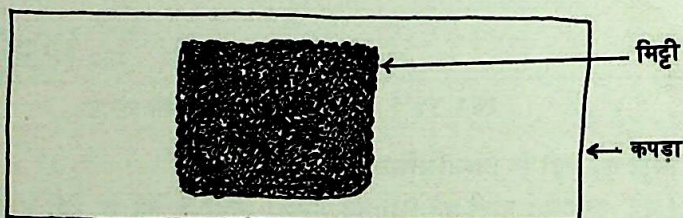
(२) विष-शोषण : शरीर में स्थित विषद्रव्यों को चूस लेने का अद्भुत और अद्वितीय गुण मिट्टी में है। इसका प्रमाण यह है कि यदि फोड़े या मवादवाले घाव पर मिट्टी की पट्टी रखी जाए तो थोड़े ही समय में सारी मवाद मिट्टी में खिंच आती है और घाव साफ हो जाता है।

(३) सूजन-निवारण : शरीर के जिस भाग में सूजन हो उस भाग पर मिट्टी का लेप करने से सूजन उतर जाती है। पैर, काकल या आँखों की सूजन पर मिट्टी का यह गुण परखने योग्य है।

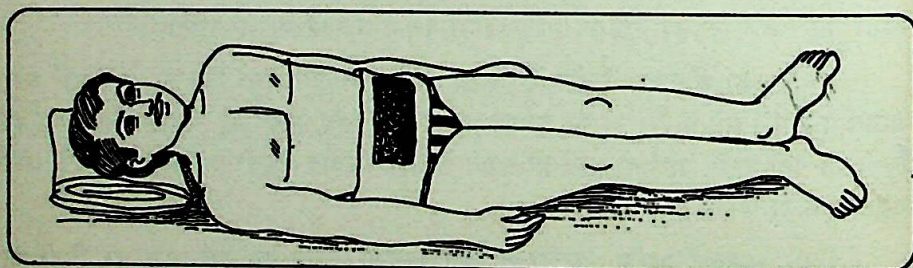
(४) तनाव-निवारण : शरीर के जिस भाग पर मिट्टी की पट्टी रखी हो उस भाग के स्नायुओं और ज्ञान-तन्तुओं की निरर्थक उत्तेजना शान्त होती है और तनाव कम होता है।

(५) पीड़ाशामक : मिट्टी की पट्टी या लेप से स्थानिक पीड़ा में फौरन आराम मिलता है।

जिसमें गन्दगी या रसायण न मिले हों ऐसी किसी भी रंग की शुद्ध मिट्टी को उपयोग में लिया जा सकता है। यदि मिट्टी बहुत ही चिकनी हो तो उसमें थोड़ी रेत मिला लें। जो भी मिट्टी आप पसंद करें उसे चलनी से छान लें ताकि उसके कंकड़-कचरा निकल जाएँ। इसके बाद उसे धूप में सुखा लें। लेप या पट्टी बनाते समय मिट्टी में उतना ही पानी मिलाएँ कि जिससे वह मक्खन की तरह नरम हों जाए। तत्पश्चात् इस मिट्टी को शरीर के उस भाग पर लगाएँ या लीप दें जहाँ आवश्यकता हो। मिट्टी की तह करीब एकाध इंच मोटी होनी चाहिए। मलमल जैसे महीन भीगे कपड़े पर बिछाकर भी मिट्टी का उपयोग किया जा सकता है। आँख पर मिट्टी का उपयोग करने के लिए कपड़े का उपयोग आवश्यक है। (इसी प्रकार सिर पर बाल होने के कारण सिर के लिए भी कपड़े का उपयोग करें।)



चित्र ११.२ : मिट्टी की पट्टी



चित्र ११.३ : पेट पर मिट्टी की पट्टी

यदि मिट्टी के लेप या पट्टी को खुला रखा जाए तो मुख्य रूप से वे ठण्डक देने का कार्य (cooling effect) करते हैं। किन्तु यदि मिट्टी को बिछा देने के बाद उसे मोटे सूती या ऊनी कपड़े से अच्छी तरह ढँक या बाँध दिया जाए तो थोड़े ही समय में उसमें गर्मी (warming effect) उत्पन्न होने लगती है। केवल ठण्डक प्राप्त करने या शरीर का तापमान कम करने का उद्देश्य हो तो मिट्टी को ढँकें नहीं; किन्तु, जब उष्ण प्रभाव की आवश्यकता हो तो मिट्टी को ढँक दें। सामान्यतः आधे से एक घण्टे में मिट्टी निकाल लेनी चाहिए। आवश्यक हो तो थोड़ी देर के बाद दुबारा मिट्टी लगाई जा सकती है।

मिट्टी के शीतल प्रयोग के बाद शरीर के उस भाग को भीगे कपड़े से पोंछ डालें और इसके बाद हाथ की खुश्क रगड़न से उस भाग को औसत तापमान के बराबर गर्म कर लें। मिट्टी के उष्ण प्रयोग के अनन्तर उस भाग को ठण्डे पानी में भिगोए हुए कपड़े से पोंछ डालें।

ज्वर, कब्जियत, दस्त, पेट या आंतों के उपदंश, गर्भाशय का रक्तस्राव, अर्श, गुदा-मार्ग के जखम, एपेण्डिसाइटिस, पेट का दर्द, मासिक स्राव की अनियमितता आदि तकलीफों में मिट्टी का प्रयोग अच्छा काम देता है। फोड़ा, जखम, दर्द या सूजन आदि में जहाँ भी आवश्यकता हो, मिट्टी का उपयोग आशातीत लाभ देता है।

एक्युप्रेसर के द्वारा आप ही अपने डॉक्टर

● क्या आप दवाओं से ऊब गये हैं? ● क्या आपका रोग दवाओं से न मिट सके ऐसा है? ● क्या आप अपने एवं कुटुंबीजनों के रोगों को रोकना चाहते हैं? ● क्या आप व्यसनो से छूटना चाहते हैं? ● क्या आप सदा युवा रहना चाहते हैं? ● क्या आप यौन शक्ति को सदा के लिए बनाये रखना चाहते हैं? ● क्या आप खेल-कूद में हिस्सा लेते हैं और चोटों से बचना चाहते हैं?

तो एक्युप्रेसर अपनाइए

एक्युप्रेसर का मतलब है बिना सूई का एक्युपंकचर। इस चिकित्सा-पद्धति की ओर विश्व आरोग्य संस्थान (W.H.O.) का भी ध्यान आकृष्ट हुआ है।

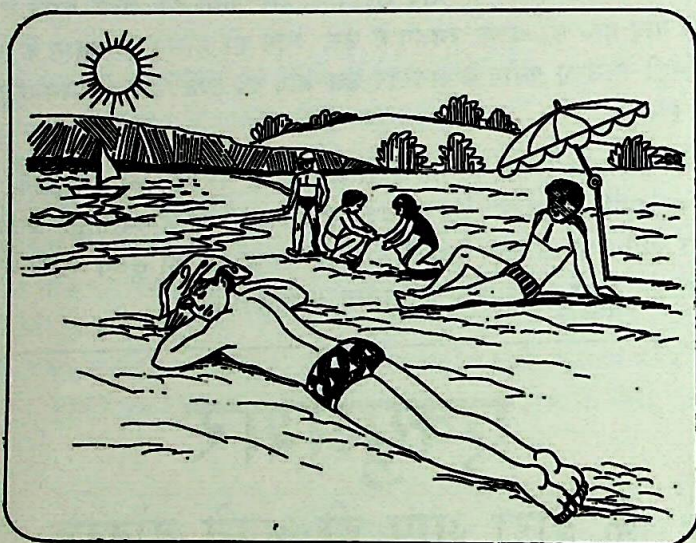
एक्युप्रेसर-पद्धति में त्वचा पर रहे कुछ खाम बिन्दुओं को दबाकर शरीर के भीतरी अवयवों पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव डाला जाता है।

● एक्युप्रेसर के लाभ ●

- * पीडा-रहित और सलामत
- * त्वरित और अचूक
- * घर पर ही उपचार हो सकता है
- * प्रति-प्रभावों से सर्वथा मुक्त
- * व्यय-रहित—एक पैसे का भी खर्च नहीं
- * अत्यंत सरल—छोटा बच्चा भी सीख सकता है।

‘एक्युप्रेसर के द्वारा आप ही अपने डॉक्टर’ अर्थात् एक्युप्रेसर-विषयक संपूर्ण, अचूक और वैज्ञानिक जानकारी को सरल भाषा में, रोचक शैली में तथा अनेक चित्रों द्वारा प्रस्तुत करनेवाली एकमेव पुस्तक।

१२. सूर्यस्नान



चित्र १२.१

पूर्ण स्वास्थ्य के लिए सूर्य-प्रकाश का बड़ा महत्त्व है। इस विषय का उल्लेख स्कूल की पुस्तकों में भी होता है; किन्तु पाठ्यपुस्तकों से सीखी हुई वे बातें स्कूल में ही छूट जाती हैं। जीवन में सूर्य-प्रकाश कितना अनिवार्य और उपयोगी है इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप सर्वत्र निःशुल्क प्राप्त होनेवाले इस आरोग्यप्रद प्रकाश से दूर रहकर या उसका उचित उपयोग न करके हम रोगों को निमंत्रण देते हैं।

सूर्य हमें तीन प्रकार की किरणें प्रदान करता है :

(१) दृश्यमान (visible) श्वेत किरणें : श्वेत रंग सात भिन्न-भिन्न रंगों से मिलकर बना है। भिन्न-भिन्न रंग शरीर पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालते हैं।

(२) अधोरक्त (infra-red) किरणें : ये किरणें गर्मी प्रदान करती हैं। इन किरणों से प्राप्त होनेवाली उष्मा शीत ऋतु में अत्यन्त सुखकर लगती हैं। तदुपरान्त ये किरणें स्नायुओं को शिथिल और शान्त बनाती हैं, सूजन कम करती हैं और पीड़ा में राहत पहुंचाती हैं।

(३) पारजामुनी (ultra-violet) किरणें : इन किरणों का सविशेष महत्त्व है। ये किरणें जब त्वचा पर पड़ती हैं तो शरीर में विटामिन 'डी' बनता है। वास्तव में सूर्य-प्रकाश विटामिन 'डी' का सर्वश्रेष्ठ प्राप्तिस्थान है। शरीर में विटामिन 'डी' की कमी हो तो हड्डियों का 'रिकेट्स' नामक रोग होता है। कॉलंबिया युनिवर्सिटी के डॉ. हेंस ने

ऐसा निष्कर्ष निकाला है कि न्यूयॉर्क शहर में शीतऋतु के दौरान पर्याप्त धूप के उपलब्ध न होने के कारण रिकेट्स का रोग जोर पकड़ता है।

पारजामुनी किरणें त्वचा के स्वास्थ्य के लिए भी अनिवार्य हैं। प्रायः चौबीसों घण्टे शरीर को वस्त्रों से पूर्णतः ढँका हुआ रखनेवाले सभ्य लोगों में चर्मरोग की मात्रा विशेष दिखाई पड़ती है।

सूर्यप्रकाश की उपेक्षा करने की वृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। त्वचा काली पड़ जाने के भय से 'सौन्दर्य के प्रति जाग्रत' महिलाएँ धूप में बाहर नहीं निकलतीं या छाता लेकर निकलती हैं !

सूर्यकिरणों से केवल त्वचा को ही नहीं, अपितु शरीर को समग्रतया लाभ ही होता है। सूर्यकिरणों के सेवन से सामान्य स्वास्थ्य में सुधार होता है और शरीर की रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है।

सूर्यप्रकाश से स्नायुओं को पुष्टि मिलती है। सभी खिलाड़ी धूप का सेवन नियमित रूप से करते रहते हैं, क्योंकि ऐसा करने से स्नायुओं के आकार और बल में वृद्धि होती है; उनमें कॅल्शियम की मात्रा बढ़ती है। ऐसा होने से उनकी सहनशक्ति बढ़ती है। वस्त्रों से ढँककर यदि त्वचा को सूर्यप्रकाश से वंचित रखा जाए तो स्नायु निर्बल हो जाते हैं।

सूर्यप्रकाश से दाँतों की संरचना योग्य रूप में होती है; बाल जल्दी बढ़ते हैं, श्वासोच्छ्वास की क्रिया तेज और गहरी बनती है। रक्त का दबाव नीचे आता है और मूत्रपिण्ड अधिक कार्यक्षम बनते हैं। सूर्यप्रकाश से चर्मरोग दूर होते हैं, फफोले फूट जाते हैं और घाव शीघ्रता से भर जाता है। सूर्यप्रकाश रक्त के क्षारत्व की रक्षा करता है और उसमें वृद्धि करता है।

शिशु-जन्म के पहले यदि सगर्भा स्त्रियाँ सूर्यस्नान करती रहें तो उन्हें स्तन्य (दूध) पर्याप्त मात्रा में होता है। सूर्यस्नान के सेवन से सगर्भा स्त्री को थकावट, पीठ की पीड़ा, कै या उत्तेजना जैसी तकलीफों में राहत मिलती है।

संक्षेप में, बच्चों का विकास-काल हो या रोग-नियंत्रण के बाद का समय हो, सूर्य-प्रकाश शरीर को बल और पुष्टि प्रदान करने में सहायक होता है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध दार्शनिक और चिकित्सक प्लिनी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि, "रोम एक शक्तिशाली राष्ट्र बन पाया है इसका कारण यह है कि रोम के लोग अपने घरों की छतों पर जाकर नियमित रूप से सूर्यस्नान करते हैं।"

सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. आर. टी. ट्रॉल के सर्वेक्षण के अनुसार खानों में काम करनेवाले या अन्य किन्हीं कारणों से अंधकार में रहनेवाले लोगों में सामान्य रोग भी उग्र स्वरूप धारण कर लेते हैं। सूर्यप्रकाश की कमी होने पर रक्त में फाइब्रिन और लालकण कम हो जाते हैं, साथ ही श्वेतकणों की संख्या और रक्त में पानी की मात्रा बढ़ जाती है।

अपनी पुस्तक में डॉ. हर्वर्ट शॉल्टन लिखते हैं कि 'पृथ्वी के जिन हिस्सों में बारह महीने सूर्यप्रकाश उपलब्ध रहता हो, वहाँ कैंसर की मात्रा कम पाई जाती है। जिन घरों में प्रकाश का प्रवेश नहीं होता वहाँ रोग आसानी से प्रविष्ट हो जाते हैं। अंधकारपूर्ण आवासों में रिकेट्स और क्षयरोग अपना अड्डा जमा देते हैं, न्युमोनिया का जोर बढ़ता है और शिशुमरण का प्रतिशत ऊँचा हो जाता है। संक्रामक रोग तंग और अँधेरी गलियों में तेजी के साथ फैलते हैं।'

सूर्यस्नान के लिए सुझाव :

(१) सूर्यस्नान के समय शरीर पूर्णतः निर्वस्त्र हो तो और भी अच्छा है; किन्तु यदि ऐसा संभव न हो तो कम-से-कम कपड़े पहनकर सूर्यस्नान करें।

(२) सूर्यस्नान के समय सिर ढंका हुआ और आँखें बन्द रहें। चेहरा न ढँकें और सीधी दृष्टि से सूर्य के सामने कभी न देखें।

(३) प्रभातकालीन या संध्याकालीन धूप शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं करती, बल्कि उससे लाभ ही होता है। दोपहर की प्रखर धूप शरीर पर न ली जाए।

(४) प्रारंभ में ५ से १० मिनट तक धूप शरीर पर पड़ने दें। इसमें भी आधा समय शरीर के आगे के हिस्से पर और आधा समय शरीर के पीछेवाले हिस्से पर सूर्यकिरणों का सेवन करें। बाद में अनुकूलता के अनुसार समय में वृद्धि करते हुए एकाध घण्टे तक सूर्यस्नान किया जा सकता है।

(५) सूर्यस्नान करते-करते या करने के बाद सिर चकराने लगे, थकावट या बेचैनी महसूस होने लगे अथवा त्वचा में जलन होने लगे तो यह सूर्यस्नान के अतिरेक की निशानी है।

(६) सूर्यकिरणों के सेवन के बाद ठण्डे पानी से स्नान करें अथवा भीगे-ठण्डे कपड़े से शरीर को पोंछ डालें।



चित्र १३.१

जीवन के लिए हवा का महत्त्व सर्वोपरि है। आहार और पानी के बिना शायद कुछ दिनों तक जीवित रहा जा सकता है, किन्तु हवा के बिना एक-दो मिनट से अधिक नहीं रहा जा सकता।

शरीर के विभिन्न कोषों में होनेवाली दहनक्रिया के लिए प्राणवायु (ऑक्सिजन) आवश्यक है। यह प्राणवायु हम हवा में से प्राप्त करते हैं। हम साँस लेते हैं तब हवा में स्थित प्राणवायु फेफड़ों की सूक्ष्म केशवाहिनियों के द्वारा रक्त में मिलकर प्रत्येक कोष तक पहुँच जाती है।

कोषों में दहनक्रिया तथा अन्य प्रक्रियाओं के अंत में अंगारवायु (कार्बन डायॉक्साइड) और अन्य विषैले पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अंगारवायु कोषों में से अलग होकर रक्त में मिलता है। यह अशुद्ध रक्त जब फेफड़ों में पहुँचता है तब अंगारवायु रक्त से पृथक् होकर उच्छ्वास के साथ बाहर निकल जाता है।

इस प्रकार हम साँस लेते हैं तब हवा में स्थित प्राणवायु फेफड़ों में प्रवेश कर रक्त में मिलती है। जब साँस फेफड़ों के द्वारा बाहर निकलती है तब अंगारवायु का निष्कासन होता है। संक्षेप में, फेफड़ों में रक्त का शुद्धीकरण होता है। इतनी हकीकत गहरे श्वासोच्छ्वास का महत्त्व स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

पृथ्वी पर प्राणवायु का मुख्य स्रोत वृक्ष एवं पौधे इत्यादि वनस्पति है। वनस्पति अपने पोषण और विकास के लिए हवा में से अंगारवायु खींच लेती है और प्राणवायु हवा में छोड़ती है। इसी कारण से हरे-भरे क्षेत्रों के वातावरण में प्राणवायु की मात्रा कुछ अधिक होती है, दूसरी ओर घनी बस्तीवाले और औद्योगिक शहरों का वातावरण कम प्राणवायु वाला और प्रदूषित होता है। आजकल वनराजि का अविवेकपूर्ण होनेवाला विनाश भी इसके लिए कारणभूत है।

उपर्युक्त हकीकत को ध्यान में रखते हुए बड़े सबेरे प्रातःकाल बागवगीचे जैसी खुली जगहों में घूमने से और गहरी सांस लेने से अच्छा लाभ होता है। बड़े सबेरे प्रातःकाल की ताजी, शुद्ध, शीतल और प्राणवायु से भरपूर हवा से शरीर और रक्त का शुद्धीकरण होता है। शीतल हवा मन को भी प्रसन्न कर देती है। इस प्रकार मन, शरीर और आरोग्य पर ताजी हवा का अच्छा प्रभाव पड़ता है यह बात सर्वस्वीकृत है।

कुछ सुझाव : (१) हमेशा नाक से सांस लीजिए। नाक में स्थित बाल हवा में मिले हुए रजकणों को छानने का कार्य करते हैं। साथ ही नाक से सांस ली जाए तो हवा में साधारण उष्मा उत्पन्न होती है जो फेफड़ों के लिए हितकारी है।

(२) हमेशा गहरी सांस लीजिए। बैठे-बैठे कामकाज करनेवाले नगरवासियों के श्वासोच्छ्वास उथले होते हैं; परिणामस्वरूप, फेफड़ों में से अंगारवायु का पूर्णतः निष्कासन न होने से उनके शरीर में विषद्रव्य बढ़ते रहते हैं।

(३) सिर पर ओढ़कर कभी न सोएं।

(४) आवश्यकता हो तो शीतकाल में उढ़ौना ओढ़ें, किंतु खिड़कियाँ तो खुली ही रखें।

१४. मालिश

प्राकृतिक चिकित्सा के उपायों में मालिश का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में मालिश का इतिहास बहुत पुराना है। भारत, चीन, ग्रीस, रोम, इजिप्त इत्यादि देशों में हजारों वर्षों से मालिश का उपयोग होता आया है।

शरीर के विभिन्न तंत्रों या अवयवों पर मालिश स्वास्थ्यप्रद प्रभाव डालती है, इसका वर्णन निम्नानुसार है—

(१) त्वचा : मालिश के द्वारा त्वचा को अप्रतिम लाभ होता है। त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं जिससे पसीने के द्वारा शरीर के विषद्रव्यों के निष्कासन में सहायता मिलती है।

(२) स्नायु : मालिश से स्नायुओं का तनाव कम होता है और उनकी पीड़ा में राहत मिलती है। अत्यधिक मेहनत का काम करने से स्नायुओं में लैक्टिक एसिड जमा होता है। मालिश करने से लैक्टिक एसिड स्नायुओं में से धुल जाते हैं और स्फूर्ति का अनुभव होता है।

(३) रक्त-परिभ्रमण : मालिश रक्त-परिभ्रमण को गतिशील बनाती है। परिणाम-स्वरूप शरीर के संबंधित हिस्से को अधिक पुष्टि प्राप्त होती है और उसकी रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। रक्त-परिभ्रमण में गति आ जाने से सूजन भी कम होती है। मालिश के कारण प्राणवायु वहन करने की और उसका उपयोग करने की रक्त की क्षमता बढ़ती है।

(४) ज्ञानतंतु : धीरे-धीरे और हल्के हाथों से मालिश करने से ज्ञानतंतुओं की उत्तेजना शांत होती है और उनका तनाव कम होता है। जोशीली मालिश सुस्त ज्ञानतंतुओं को उत्तेजित कर उन्हें कार्यक्षम बनाती है।

(५) पाचनतंत्र : पेट पर मालिश करने से पाचनतंत्र उत्तेजित होता है और मल का निष्कासन अच्छी तरह होने लगता है, यकृत की कार्यक्षमता बढ़ने से शरीर की रोग-प्रतिकारक शक्ति प्रबल होती है।

(६) मूत्रतंत्र : मालिश के कारण मूत्रपिंडों को उत्तेजना मिलती है। इससे मूत्र अधिक बनता है। इस प्रकार मूत्र द्वारा शरीर के विषद्रव्यों के निष्कासन की क्रिया को वेग मिलता है।

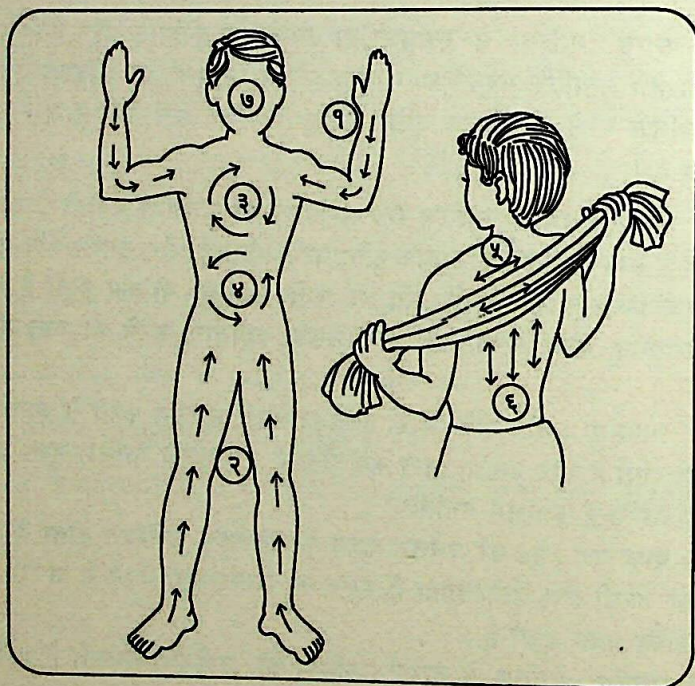
(७) हृदय : योग्य प्रकार से मालिश की जाए तो हृदय पर से अधिकांश बोझ कम हो जाता है और उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

सामान्यतः सूखे हाथों द्वारा मालिश की जाती है, किंतु त्वचा शुष्क हो या शरीर में अत्यधिक अशक्ति हो तो गीले कपड़े की सहायता से अथवा तेल से मालिश की जा सकती है। मालिश के लिए तिल का तेल सबसे अच्छा है। कुछ लोग मालिश करते समय

पावडर का उपयोग करते हैं, किन्तु यह पद्धति अभीष्ट नहीं है, क्योंकि उसके द्वारा त्वचा के छिद्र मुंद जाते हैं।

पद्धति : सबसे पहले हाथ और पैर पर मालिश करनी चाहिए। तत्पश्चात् क्रमशः छाती, पेट, पेड़ू, पीठ, कमर, कूल्हे, और अंत में चेहरे और सिर पर मालिश करनी चाहिए। पीठ की मालिश करने के लिए कपड़े का उपयोग करें। जहाँ तक हो सके स्वयं ही अपने हाथों से मालिश करें ताकि कुछ मात्रा में कसरत का भी लाभ प्राप्त हो। अशक्त व्यक्ति दूसरे की सहायता ले सकते हैं।

मालिश करने की दिशा नीचे के चित्र में बताई गई है—



चित्र १४-१ : मालिश करने की सही दिशा

मालिश करने के बाद समशीतोष्ण पानी से स्नान करना चाहिए। उच्च रक्तचाप हो तो सिर से पैर की तरफ मालिश करें।

टिप्पणी : नीचे की परिस्थितियों में मालिश न करें—

- (१) ज्वर में मालिश न करें।
- (२) सगर्भा स्त्रियाँ पेट पर मालिश न करें।
- (३) दस्त, पेट, या आंतों के उपदंश, ऐंफेण्डिस की सूजन अथवा पेट में गाँठ हो तो पेट की मालिश न करें।
- (४) सामान्यतः त्वचा के रोगों में भी मालिश नहीं करनी चाहिए।

लोहचुम्बक-चिकित्सापद्धति शीघ्रता से विश्वभर में लोकप्रिय होती जा रही है। लोहचुम्बक-चिकित्सा का मूल सिद्धांत यह है कि यदि मनुष्य के शरीर में प्रवहमान विद्युत-चुंबकीय शक्तियों का संतुलन बना रहे तो मनुष्य स्वस्थ रहेगा; यदि यह संतुलन बिगड़ जाए तो बीमारी उत्पन्न होगी।

सौंदर्य बनाए रखने और कुछ रोगों के उपचार के लिए सदियों से लोहचुंबक का उपयोग होता रहा है। प्राचीन वैद्यकग्रंथों में इससे संबंधित उल्लेख मिलते हैं, किंतु लोहचुम्बकों की रोगनिवारक शक्ति के परीक्षण से संबंधित वैज्ञानिक प्रयोग पिछले कुछ वर्षों में ही हुए हैं।

चुंबकों में से निकलनेवाली विद्युतचुंबकीय तरंगें जीवत वस्तुओं पर असर करती हैं यह बात अब संदेह से परे है। सूर्य पर यदा-कदा उग्र चुंबकीय तूफान चलते हैं। ये चुंबकीय तूफान पृथ्वी के प्राणीजगत पर गंभीर प्रत्याघात उत्पन्न करते हैं यह निर्विवाद है। हैद्राबाद और सिकंदराबाद की सरकारी हॉस्पिटलों में किये गए अध्ययन के द्वारा यह हकीकत प्रकट हुई है कि सूर्य पर जब उग्र चुंबकीय तूफान होते हैं तब अनेक लोग हृदयरोग के आक्रमण के शिकार होते हैं। भारतीय वायुसेना ने भी यह स्वीकार किया है कि जब सूर्य पर चुंबकीय तूफान होते हैं तब विमानचालक अधिक दुर्घटनाएँ करते हैं। इससे ऐसा फलित होता है कि जब सूर्य पर चुंबकीय तूफान होते हैं तब शारीरिक और मानसिक अस्थिरता निर्मित होती है। हृदय, रक्तनलिकाओं, मस्तिष्क और ज्ञानतंतुओं के विकार उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है।

कृत्रिम अर्थात् मानवसर्जित लोहचुंबकों के द्वारा वनस्पतिसृष्टि, प्राणीसृष्टि और मनुष्यों पर कैसा प्रभाव पड़ता है यह जानने के लिए अनेक प्रयोग हुए हैं।

लोहचुंबक के आसपास के स्थान को 'चुंबकीय क्षेत्र' कहते हैं। बीज को चार घंटे से अधिक समय तक चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाए तो वह अधिक शीघ्रता से उगता है। बीज बोने के पश्चात् यदि उस पर लोहचुंबकों से प्रभावित किया गया पानी सींचा जाए तो भी यही परिणाम आता है। मक्खी या मच्छर आदि जंतुओं को लोहचुंबक द्वारा प्रभावित आहार खिलाया जाए तो उनकी आयु बढ़ जाती है। लोहचुंबकीय क्षेत्र पक्षियों और प्राणियों पर भी अनुकूल परिणाम उत्पन्न करते हैं। ऐसे पक्षी बड़े कद के और शक्तिशाली होते हैं। गाय अधिक दूध देती है, घोड़े और बैलों की शक्ति में वृद्धि होती है आदि। शक्तिशाली लोहचुंबकों के द्वारा प्राणियों में कैंसर का विकास रोकने में या कई बार उसे मिटाने में भी वैज्ञानिकों को सफलता मिली है। जापान के जीकेई मेडिकल कॉलेज के डॉ. शीरो सईटो ऐसे प्रयोग बड़े पैमाने पर कर रहे हैं।

मनुष्य पर लोहचुंबकों का कैसा प्रभाव पड़ता है यह जानने के लिए भी प्रयोग किये गए हैं। अनेक नियंत्रित प्रयोगों के द्वारा ऐसा ज्ञात हुआ है कि लोहचुंबकों के उपचार के

बाद रक्तचाप नियंत्रित हो जाता है, रक्त में लालकणों की संख्या बढ़ती है और रक्त में से कॉलेस्ट्रॉल की मात्रा घटती है।

लोहचुंबकों के उपयोग की पद्धति—लोहचुंबकों के उपयोग की पद्धति के विषय में अभी सर्वसम्मति स्थापित नहीं हुई है। विभिन्न चिकित्सकों ने अपने-अपने प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ विकसित की हैं और रोग-निवारण में सफलता प्राप्त की है।

अब तक के प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि लोहचुंबकों का उपयोग चाहे जिस प्रकार से किया जाए, समग्र शरीर पर उसका प्रभाव निश्चित रूप से होता ही है। साथ ही इस चिकित्सा का कोई विशेष प्रतिप्रभाव नहीं होता।

लोहचुंबक उपचार-पद्धति के मुख्य दो प्रकार हैं—(१) किसी भी एक ध्रुव का उपयोग (unipolar method) अथवा (२) दोनों ध्रुवों का एकसाथ उपयोग (bipolar method), अर्थात् संपूर्ण क्षेत्रीय उपचार।

इन दोनों पद्धतियों के विषय में अधिक विचार करने से पहले प्रत्येक ध्रुव के गुण-धर्म जान लेना आवश्यक है।

दक्षिण ध्रुव के गुणधर्म—(१) दक्षिण ध्रुव में अवरोधक और वेग को मंद करने की शक्ति है। (२) यह ठंडक और शांति देता है। (३) 'दक्षिण ध्रुव' अर्थात् 'ठहरिए'। (४) इस ध्रुव को कुछ समय तक सादे पानी में रखा जाए तो पानी की क्षारीयता (alkalinity) बढ़ती है, अर्थात् दक्षिण ध्रुव अम्लता घटाता है। (५) इसमें संकोचन करने का गुण होता है। (६) यह बारीक केशवाहिनियों (capillaries) में रक्तपरिभ्रमण की गति को मंद करता है। (७) यह संक्रमण को नियंत्रित करता है और सूजन को कम करता है। (८) यह गाँठ आदि के विकास को रोकता है और उसे अंकुशित करता है। (९) दक्षिण ध्रुव के चुंबकीय क्षेत्र में रखे हुए फल, सागभाजी, दूध आदि अधिक समय तक ताजे रहते हैं।

उत्तर ध्रुव के गुणधर्म—उत्तर ध्रुव समग्रतया दक्षिण ध्रुव से विपरीत गुण रखता है। (१) यह गर्मी और शक्ति देता है तथा शरीर की क्रियाओं को उत्तेजित करता है। (२) 'उत्तर ध्रुव' अर्थात् 'आगे बढ़िए'। (३) इस ध्रुव को कुछ समय तक पानी में रखने के बाद यदि पानी का pH डिटेक्टर के द्वारा परीक्षण किया जाए तो वह अम्लीय मालूम पड़ता है। इस प्रकार, यह क्षारीयता (प्रतिअम्लता) कम करता है। (४) यह क्षेत्र में वृद्धि करता है। (५) यह बारीक केशवाहिनियों के रक्त-परिभ्रमण को वेगवान बनाता है। (६) यह संक्रमण फैलाता है, क्योंकि यह जीवाणुओं को भी शक्ति और गर्मी देता है। यह सूजन बढ़ाता है। (७) सामान्य एवं कैंसर की गाँठ के कोषों को भी यह उत्तेजित करता है। इस कारण गाँठ बढ़ती है या पककर फूट जाती है। (८) उत्तर ध्रुव के चुंबकीय क्षेत्र में रखे हुए फल जल्दी पकते हैं, सागभाजी कुछ समय में सड़ने लगती है और दूध खट्टा होने लगता है।

संक्रमण (infection) और सूजन (inflammatory conditions) में दक्षिण ध्रुव उपयोगी सिद्ध होता है। चर्मरोग, जोड़ों के रोग (arthritis), सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा फैलने वाला संक्रमण (infectious conditions), गाँठें (tumours), मानसिक अशांति (anxiety), मिर्गी (convulsions), आँखों की त्रुटियाँ, आँखों के रोग, ज्ञान-तंतुओं का दर्द (neuralgia), अनिद्रा (insomnia) आदि में दक्षिण ध्रुव लाभदायक है।

उत्तर ध्रुव में उत्तेजक शक्ति और गर्मी देनेवाले गुणधर्म होने से लकवा, अंत्रवृद्धि—हर्निया, त्वचा के सफेद दाग, ऐलोपेसिया (सिर पर केशविहीन चकत्ते), स्नायविक अशक्ति, सामान्य और बीमारी के बाद की दुर्बलता, मूच्छारोग इत्यादि में उपयोगी सिद्ध होता है।

डॉ. ए. के. भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक 'लोहचुंबक और चुंबकीय क्षेत्र' में दोनों ध्रुवों के प्रभाव का वर्णन निम्नानुसार किया है —

गुणधर्म	दक्षिण ध्रुव	उत्तर ध्रुव
विशेषता	शीतल	उष्ण
भाव	प्रेम	धिक्कार
आण्विक गुण	प्रोटीन	इलेक्ट्रॉन
ग्रह	बुध, शुक्र, चंद्र	सूर्य, मंगल
तत्त्व	मिट्टी, पानी	अग्नि
रंग	हरा, आसमानी, केसरी	लाल, पीला
वायु	प्राण, अपान	समान

ऊपर की हकीकतों से इतना स्पष्ट होता है कि किसी भी तकलीफ या रोग के लिए किसी भी एक ध्रुव का उपयोग अधिक तर्कसंगत है। लोहचुंबक का प्रयोग करने से पहले शरीर की तकलीफ का निश्चित कारण जानना अत्यधिक आवश्यक है। एक ध्रुव के द्वारा उपचार (unipolar method of treatment) देना हो तब सतर्कतापूर्वक किया गया निदान अत्यावश्यक है, क्योंकि गलत ध्रुव का उपयोग हानि भी पहुँचा सकता है।

कुछ लोहचुंबक-चिकित्सकों ने दोनों ध्रुवों का एक साथ उपयोग करने की पद्धति (bipolar method) अपनाई है। ऐसे चिकित्सकों को भी रोग-निवारण में सफलता मिली है। यद्यपि इस पद्धति के द्वारा रोग का निवारण करने में थोड़ा अधिक समय लगता है।

भारत में लोहचुंबक चिकित्सा के अग्रेसर, दिल्ली के डॉ. ठाकर और डॉ. बंसल दोनों ध्रुवों का एकसाथ उपयोग करने के हिमायती हैं।

लोहचुंबकों और लोहचुंबकत्व के प्रयोगों तथा अनुसंधानों के प्रणेता अमेरिका के डॉ. आल्बर्ट रॉय डेविस एवं भारत के डॉ. ए. के. भट्टाचार्य आदि एक ही ध्रुव के द्वारा उपचार करने के प्रखर और दृढ़ समर्थक हैं। उनके कथनानुसार जहाँ दोनों ध्रुवों का सहयोगी उपचार सफल न हुआ हो वहाँ एक ध्रुव का उपचार सफल सिद्ध हो सकता है।

इसके बावजूद, दोनों ध्रुवों के संयुक्त उपयोग के लिए अर्थात् संपूर्ण क्षेत्रीय उपचार के लिए योग्य कारण या संयोग हों तो निस्संकोच उनका उपयोग किया जा सकता है। जहाँ दर्द भी हो और दुर्बलता—अकड़न भी हो वहाँ दोनों ध्रुवों के द्वारा एक ही समय उपचार करने से लाभ होता है। अलवत्ता, जिस हिस्से का उपचार करना हो वहाँ संक्रमण (infection) की उपस्थिति नहीं होनी चाहिए। ऐसे उपचार में उत्तर ध्रुव उत्तर दिशा की ओर तथा दक्षिण ध्रुव दक्षिण दिशा की ओर हो तो अधिक लाभ होता है। स्वस्थता बनाए रखने के लिए मेरुदण्ड में स्थित कुछ चक्रों का दैनिक उपचार किया जाता है। इसमें स्वाधिष्ठान, मणिपूर और विशुद्ध चक्रों को उत्तर ध्रुव और आज्ञाचक्र को उसी समय दक्षिण ध्रुव से प्रभावित किया जाता है।

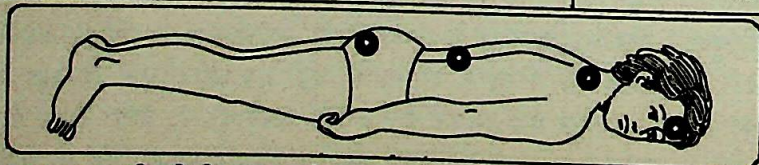
उत्तर और दक्षिण ध्रुव के द्वारा बारी-बारी से उपचार करना यह ध्रुवों के उपयोग की अन्य पद्धति है। यहाँ भी ऊपर लिखे अनुसार पीड़ा और दुर्बलता—अकड़न ये दोनों प्रकार की तकलीफें होनी चाहिए। चोट, गूढ़मार, मनके की पीड़ा, कमर की पीड़ा आदि में पहले १५-२० मिनट दक्षिण ध्रुव का और तत्पश्चात् इतना ही समय उत्तर ध्रुव का उपयोग किया जा सकता है। यह पद्धति प्राकृतिक उपचार-शास्त्र के एकसाथ किये जाने वाले ठंडे-गर्म प्रयोगों से मिलती-जुलती है।

चुंबकों के उपयोग की पद्धति, रोग के प्रकार और रोगी के द्वारा वर्णित लक्षणों पर आधारित है। चिकित्सक के साथ रोगी की यदा-कदा मुलाकात हो, उस समय लक्षणों में जो परिवर्तन मालूम हो उसके अनुसार चुंबकों की पद्धति में भी परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

लोहचुंबक-चिकित्सा के द्वारा स्वास्थ्य-रक्षा : योगशास्त्र के अनुसार हमारे शरीर में-मुख्यतः मेरुदण्ड में सात चक्र होते हैं—सहज्रार, आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार।

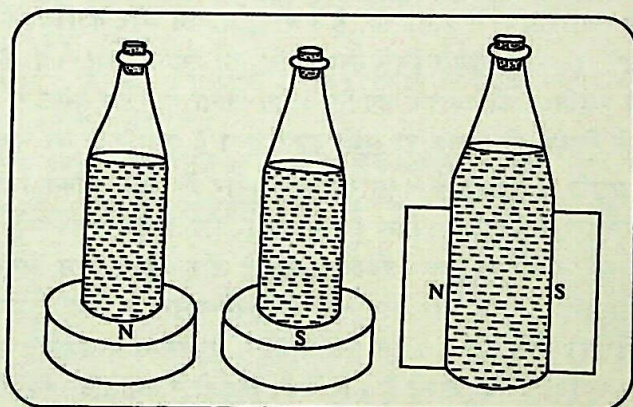
ये सात चक्र शरीर में प्रवहमान विद्युत्चुंबकीय शक्तियों का नियंत्रण करते हैं। उपर्युक्त चक्रों में से विशुद्ध, मणिपूर, स्वाधिष्ठान और आज्ञा इन चारों चक्रों को लोह-चुंबकों के द्वारा प्रतिदिन १५-२० मिनट उत्तेजित करने से शरीर में प्रवहमान विद्युत्-चुंबकीय शक्तियों का संतुलन बना रहता है और स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने में सहायता मिलती है। इससे संबंधित जानकारी नीचे के कोष्ठक में दी गई है—

चक्र	शरीर में स्थान	लोहचुंबक का ध्रुव
आज्ञा	ललाट के मध्य में	निर्बल दक्षिण ध्रुव
विशुद्ध	मेरुदण्ड पर, गर्दन के मूल के पास	शक्तिशाली उत्तर ध्रुव
मणिपूर	मेरुदण्ड पर, नाभि के ठीक पीछे	शक्तिशाली उत्तर ध्रुव
स्वाधिष्ठान	मेरुदण्ड के नीचे के सिरे से तीन इंच ऊपर	शक्तिशाली उत्तर ध्रुव



चित्र १५.१ : शरीर के वे भाग जहाँ स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए, लोहचुंबक रखे जाते हैं।

लोहचुंबक के दोनों ध्रुवों के द्वारा प्रभावित किया हुआ पानी दिन में तीन-चार बार पीने से भी आरोग्य बना रहता है। पानी को लोहचुंबकांकित करने के लिए लोहचुंबकों को पानी से भरी बोतल या गिलास के साथ कम-से-कम बारह घंटों तक संपर्क में रखना चाहिए। पीने के उपरांत इस पानी का उपयोग आँखें धोने के लिए, घाव साफ करने के लिए तथा जले हुए भागों पर भी किया जा सकता है।



चित्र १५२ : पानी को चुंबकांकित बनाने की विधि

लोहचुंबक चिकित्सा के द्वारा आप ही अपने डॉक्टर

लेखक : डॉ. ध. रा. गाला, डॉ. धीरेन गाला, डॉ. संजय गाला

अनुवादक : कु. अर्चना जैन

लोहचुंबक-चिकित्सा सरल, प्रति-प्रभावों से मुक्त और फिर भी अत्यंत प्रभावी उपचार-पद्धति है। स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए आज अधिकाधिक लोग लोहचुंबक-चिकित्सा की ओर मुड़ रहे हैं। लोहचुंबक-चिकित्सा केवल अच्छी ही नहीं, बरन् सस्ती भी है, क्योंकि एक बार खरीदे गए लोहचुंबक हमेशा के लिए आरोग्य के साथी बन जाते हैं।

यदि आप दवाओं से ऊब गए हों, दवाओं से आपका रोग मिटने की संभावना न हों, आपको दवाओं के प्रति-प्रभावों का भय सताता हों, आप स्वयं ही अपने आरोग्य की नाव के कप्तान बनना चाहते हों, छोटी-बड़ी बीमारियों का इलाज घर बैठे ही करना चाहते हों, आप सदा युवा बने रहना चाहते हों, तो लोहचुंबक-चिकित्सा अपनाइए।

मेंग्रेट थैरपी विषयक यह सर्वांगसंपूर्ण पुस्तक आज ही खरीदिए।

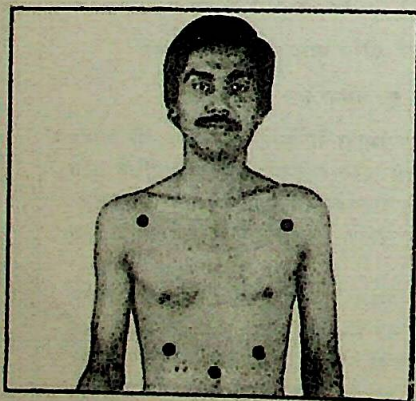
१६. ँक्युप्रेशर

शरीर पर स्थित निश्चित बिन्दुओं को दबाकर शरीर के आंतरिक अवयवों को प्रभावित करने के लिए ँक्युप्रेशर, ँक्युपंकचर, शिआत्सु, झोनथेरपी, रिफ्लेक्शॉलॉजी आदि जो पद्धतियाँ आज अस्तित्व में हैं उनमें ँक्युप्रेशर सबसे पुरानी और सरल पद्धति है।

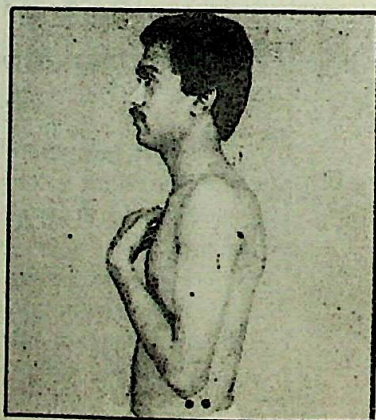
स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए और रोगों को मिटाने के लिए पूर्वोक्त देशों में ँक्यु-प्रेशर का उपयोग हजारों वर्षों से होता रहा है। चीन, जापान और कोरिया में तो ँक्यु-पंकचर और ँक्युप्रेशर को अधिकृत चिकित्सा-पद्धति का स्थान दिया गया है। वहाँ के हॉस्पिटलों में इन पद्धतियों का व्यापक उपयोग किया जाता है। इस दृष्टि से हमारे देश में इन पद्धतियों के विषय की जानकारी अभी बहुत अल्प है ऐसा कहा जा सकता है।

ँक्युप्रेशर पद्धति के सिद्धांत के अनुसार हमारे शरीर में स्थित शक्ति (प्राणशक्ति) दो प्रकार के बलों द्वारा बनी हुई है : यिन (ऋण बल) और यांग (धन बल)। शरीर में इन दो बलों का संतुलन हो तो मनुष्य स्वस्थ रहता है और यह संतुलन बिगड़ जाए तो बीमारी उत्पन्न होती है। यिन और यांग बलों के हलन-चलन के लिए हमारे शरीर में १४ मार्ग (मॅरिडियन) माने गए हैं। इन १४ मार्गों में प्रवहमान प्राणशक्ति का नियमन शरीर पर स्थित कुछ विशेष बिंदु करते हैं। निश्चित बिंदुओं को प्रतिदिन नियमित विधि-पूर्वक दबाने से यिन और यांग बलों के संतुलन को व्यवस्थित रखा जा सकता है और शरीर की प्राकृतिक रोगनिवारक शक्ति को प्रबल बनाया जा सकता है। तदुपरांत यदि कोई रोग हुआ हो तो संबंधित बिंदुओं को दबाकर उस रोग को दूर भी किया जा सकता है।

स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए ँक्युप्रेशर : सबसे पहले नीचे दर्शाए हुए बिन्दुओं को दबाकर यह निश्चय कर लीजिए कि वे दुखते तो नहीं हैं।



चित्र १६-१ : बिन्दु (१), (२), (३)

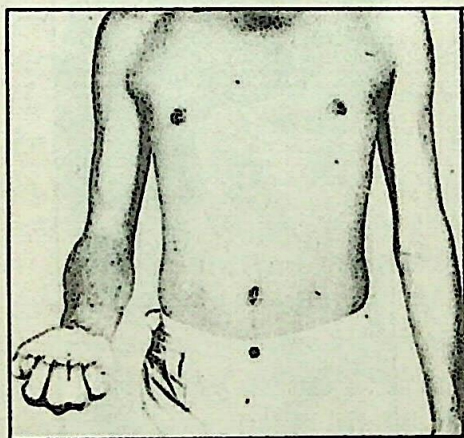


चित्र १६-२ : बिन्दु (४), (५)

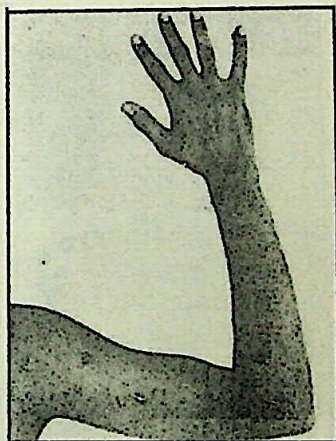
(१) छाती के बीच की हड्डी के नीचे के सिरे से तीन-चार अंगुल नीचे, मध्यरेखा पर स्थित बिंदु (२) स्तनाग्र भाग से तीन अंगुल बाहर और पाँच-छह अंगुल ऊपर, पहली और दूसरी पसलियों के बीच स्थित बिंदु (३) छाठी और सातवीं पसलियों के बीच स्तनाग्र की रेखा में स्थित बिंदु (४) पसलियों के नीचे के सिरे (सबसे नीचे के हिस्से) पर स्थित बिंदु (५) शरीर के बाजू में, नितम्ब की हड्डी के ऊपर की किनारी से दो अंगुल ऊपर स्थित बिंदु।

इन पाँच बिंदुओं में से कोई भी बिंदु दबाने से दुखता हो तो उस पर २-३ मिनट ऐक्युप्रेषण चिकित्सा लीजिए।

इसके पश्चात् निम्नलिखित बिंदुओं पर ऐक्युप्रेषण की चिकित्सा लीजिए :



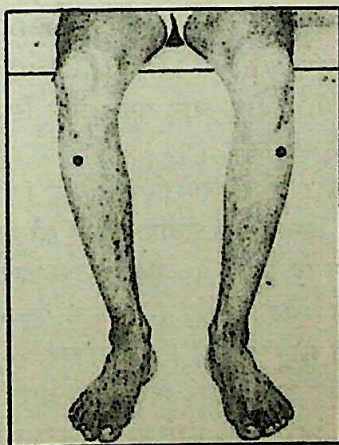
चित्र १६३ : बिंदु (१)



चित्र १६४ : बिंदु (२), (३), (४), (५)

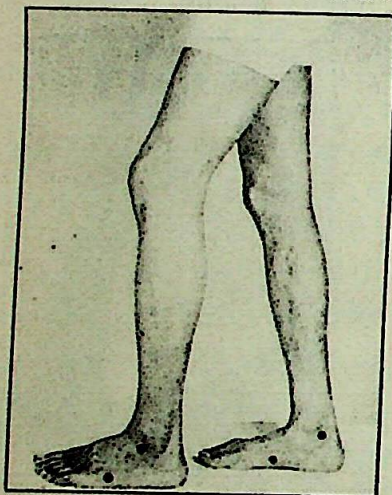


चित्र १६५ : बिंदु (६), (७)



चित्र १६६ : बिंदु (८)

एँक्युप्रेशर के बिन्दु : (१) नाभि से पाँच-छह अंगुल नीचे, मध्यरेखा पर स्थित बिन्दु (२) कुहनी को समकोण आकार में मोड़ने के बाद पड़ने वाली सिलवट के बाहर के सिरे से दो अंगुल दूर स्थित बिन्दु (३) कलाई के पीछे के भाग पर, मध्यरेखा पर स्थित बिन्दु (४) हाथ के अँगूठे और प्रथम उँगली के बीच के मांसल भाग पर स्थित बिन्दु (५) छिगुनी उँगली के नाखून के भीतरी कोने पर स्थित बिन्दु (६) हथेली की मूल सिलवट पर, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका उँगली की सीध में स्थित तीन बिन्दु (टिप्पणी : ये तीनों बिन्दु एकसाथ दबाये जा सकते हैं।) (७) हथेली की मूल की सिलवट से दो अंगुल दूर और तर्जनी उँगली की सीध में स्थित बिन्दु (८) घुटने को समकोण मोड़ने के बाद, घटने की गोलाकार हड्डी के नीचे की किनार से चार अंगुल नीचे



चित्र १६७ : बिन्दु (९), (१०), (११), (१२)

और जरा-सा बाहर स्थित बिन्दु (९) पाँव के टखने की भीतरी हड्डी के नीचे और जरा-सा पीछे स्थित बिन्दु (१०) पाँव के टखने की भीतरी हड्डी के शीर्ष भाग से तीन अंगुल नीचे और चार अंगुल आगे स्थित बिन्दु (११) पाँव के टखने की बाहरी हड्डी के आगे स्थित बिन्दु (१२) पाँव के टखने की बाहरी हड्डी के शीर्षभाग से तीन अंगुल नीचे और चार अंगुल आगे स्थित बिन्दु (१३) कान के बिन्दु-चित्र में बताए अनुसार।

चित्र १६८ : बिन्दु (१३)

बिन्दुओं पर दबाव डालने की पद्धति : अँगूठे या उँगली से अथवा किसी भी कुन्द वस्तु से बिन्दु पर १० सेकण्ड तक गहरा दबाव डालिए। इसके बाद ५ सेकण्ड तक दबाव डालना छोड़ दीजिए। फिर से १० सेकण्ड दबाव डालिए और ५ सेकण्ड तक दबाव डालना छोड़ दीजिए। इस प्रकार २-३ मिनट करते रहिए। ऊपर दर्शाए हुए प्रत्येक बिन्दु पर इसी प्रकार दिन में दो बार उपचार लेना चाहिए।

ऊपर केवल स्वास्थ्य की सुरक्षा के ही बिन्दु बताए गए हैं।

टिप्पणी : अलग-अलग रोगों के निवारण के लिए अलग-अलग बिन्दु पर उपचार लेना पड़ता है। इस विषय की विस्तृत जानकारी इन्हीं लेखकों की 'एँक्युप्रेशर के द्वारा आप ही अपने डॉक्टर' नामक पुस्तक में दी गई है।

विभाग ३ : प्राकृतिक चिकित्सा-व्यवहार में



१७. विविध रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा (वर्णानुक्रम से)

इस बात का उल्लेख आगे किया जा चुका है कि सर्दी, जुकाम, ज्वर, दर्द, सूजन इत्यादि लक्षण तीव्र रोग का निर्देश करते हैं। शरीर में एकत्रित विषों के खिलाफ रोग-प्रतिकारक शक्ति की युद्ध-घोषणा की यह प्रत्यक्ष निशानी है। प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. हेंन्रि-लिण्डल्हर् ने यथार्थ ही कहा है कि, “प्रत्येक तीव्र रोग शरीर की रोगनिवारक शक्ति के सक्रिय होने का प्रमाण है।” ऐसे समय रोगनिवारक शक्ति के कार्य में विक्षेप न डाला जाए तो रोग शीघ्रता से निर्मूल हो जाता है। इसी लिए तीव्र रोगों में आराम करना, आहार का त्याग करना और योग्य बाह्योपचार के द्वारा जीवन-शक्ति को आधार देना अनिवार्य है। सर्दी, जुकाम, ज्वर, खाँसी, फोड़े-फुंसी, उबकाई-उल्टी जैसी छोटी या तीव्र बीमारियाँ तो उपर्युक्त नियमों का पालन करने से दो-चार दिनों में ही विदा हो जाती हैं। वास्तव में इन नियमों को ध्यान में रखकर कोई भी व्यक्ति (इस पुस्तक में जिनका विवरण नहीं दिया गया है ऐसी) तीव्र बीमारियों का भी सफल इलाज कर सकता है।

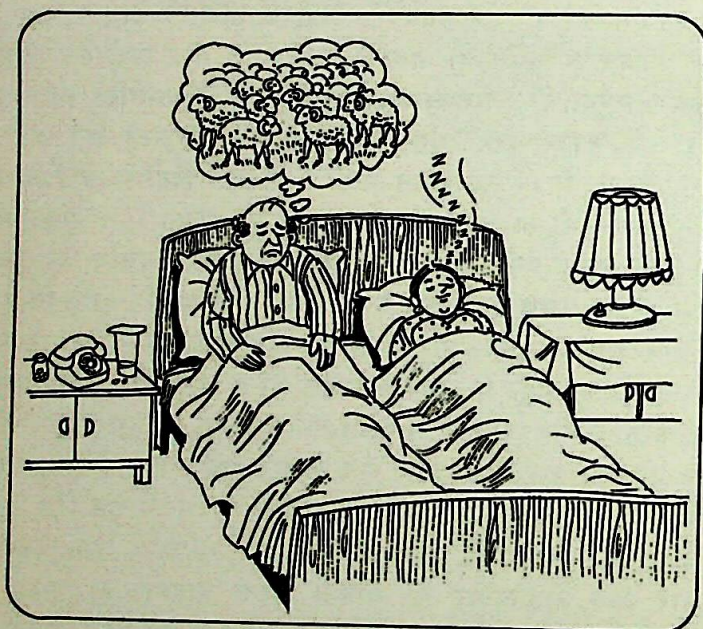
बीमारी के तीव्र लक्षण प्रकट होने के बाद भी व्यक्ति आहार का सेवन करता रहे, दवाओं का अविवेकपूर्ण उपयोग होता रहे अथवा अन्य प्रकार से स्वेच्छाचार चलता रहे तो शरीर विषद्रव्यों को बाहर निकालने के प्रयास करना छोड़ देता है। इस प्रकार रोग शरीर में घर करता है और पुराना-जीर्ण (chronic) बनता है। पुराना रोग तीव्र लक्षण प्रकट नहीं करता परंतु शरीर को अंदर से क्षीण कर डालता है। ऐसी पुरानी व्याधि को दूर करने में अधिक समय लगता है। उपचार के प्रारंभ में कुछ दिन अपक्वाहार (कच्चा आहार) और फिर क्रमशः उपवास, रसाहार, योगासन, लोहचुंबक-चिकित्सा, ऐंथुप्रेसर और अन्य बाह्योपचार की योजना करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे उपचारक्रम के दौरान उपद्रव या उफान प्रकट हो तो इसे एक शुभ चिह्न मानना चाहिए। जीर्ण व्याधि के पुनः तीव्र स्वरूप में बदलने की अर्थात् दबी हुई या सुषुप्त जीवनशक्ति के फिर से जाग्रत होने की यह निशानी है। तीव्र रोग को शीघ्रता से और संपूर्ण रूप से निर्मूल किया जा सकता है यह हम आगे देख चुके हैं। जब पुराना रोग उग्र स्वरूप धारण करता है उस समय अज्ञानवश या अन्य चिकित्सकों के भड़काने से रोगी ऐसा मान लेता है कि रोग ने पलटकर फिर आक्रमण कर दिया है या रोग की स्थिति अधिक बिगड़ गई है। इस प्रकार की भ्रान्तिपूर्ण मान्यता के कारण वह प्राकृतिक उपचारों का परित्याग कर देता है या उन पर से उसकी श्रद्धा जाती रहती है। ऊपर जो वास्तविकता प्रस्तुत की गई है यदि तत्सम्बन्धी उचित जानकारी हो तो गलतफहमी होने की संभावना नहीं रहती।

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ जीर्ण रोगों के अनुभवसिद्ध उपचारक्रम बताए गए हैं, किन्तु पुस्तक के प्रथम दो विभागों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेवाला और प्राकृतिक चिकित्सा

के सिद्धान्तों को भलीभाँति समझ लेनेवाला पाठक किसी भी जीर्ण रोग का इलाज विश्वासपूर्वक एवं सफलतापूर्वक कर सकेगा इसमें सन्देह नहीं।

(१) अनिद्रा : अनिद्रा आधुनिक जीवन-पद्धति एवं मानसिक तनाव का परिणाम है। आज असंख्य लोग अनिद्रा से पीड़ित दिखाई देते हैं। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार प्रतिवर्ष लाखों रुपयों की निद्राकारक गोलियाँ बिकती हैं। किन्तु ऐसी दवाओं के दो खतरे हैं : वे प्रतिप्रभाव उत्पन्न करती हैं और धीरे-धीरे उनका व्यसन हो जाता है।

उपाय : (१) शाम को जल्दी से भोजन कर लें। भोजन में हल्का-सुपाच्य आहार ग्रहण करें। जिन खाद्यपदार्थों से आपके पाचनतंत्र में गैस बनता हो उन्हें ग्रहण न करें।



चित्र १७.१

- (२) भोजनोपरान्त एक-डेढ़ मील पैदल परिभ्रमण करें।
- (३) रात को सोने से पहले गर्म पानी से स्नान करें।
- (४) अन्त में बिस्तर पर लेट जाएँ, ललाट पर निर्बल लोहचुंबक का दक्षिण ध्रुव रखें और दस-पन्द्रह मिनट श्वासन करें।

इतना करने से नींद आ जाती है। फिर भी यदि नींद न आए तो उसके बारे में विचार किये बिना ही पढ़ने के लिए बैठ जाएँ। थोड़ी देर में जब आँखें बोझिल होने लगें तो पुनः श्वासन करें।

(२) अनियमित मासिक स्राव : देखिए 'मासिक धर्म की तकलीफें'।

(३) अम्लता (Hyper acidity) : अनेक विशेषज्ञ इस तकलीफ को मानसिक तनाव के साथ जोड़ते हैं। अतिशय मिर्च-मसालेदार या प्रोटीन वाले आहार का सेवन करते रहने से भी अम्लता उत्पन्न हो सकती है। पेट में जलन और खट्टी डकारें इस व्याधि के मुख्य लक्षण हैं। यह व्याधि आगे जाकर पेट या आंतों के उपदंशों में परिणत हो सकती है।

उपाय : (१) सादा, कम मसाले वाला भोजन ग्रहण करें। तली हुई चीजों या मिठाइयों के सेवन पर अंकुश रखें।

(२) यदि कब्जियत रहती हो तो उसे दूर करें।

(३) दिन में एक-दो बार पेट-पेडू पर २५-३० मिनट तक भीगी मिट्टी रखें।

(४) लोहचुम्बक के दक्षिण ध्रुव से प्रभावित किया हुआ पानी दिन में चार-पाँच बार पिएँ।

(४) अल्प मासिक स्त्राव : देखिए 'मासिक धर्म की तकलीफें'।

(५) अस्थमा (दमा) : शरीर में संचित विषों या किसी बाहरी पदार्थ (allergen) के प्रति शरीर की विरोधी प्रतिक्रिया के कारण अस्थमा या दमा का उद्भव होता है। दमे के दो प्रकार हैं : (१) आक्रमणकारी (episodic) और (२) जीर्ण (chronic)। पहले प्रकार के दमे में अक्सर बहुत रात गए या बड़े सबेरे प्रातःकाल अचानक दमे का आक्रमण होता है, जो श्वासोच्छ्वास में बड़ी कठिनाई उत्पन्न करता है। रोगी उठकर पलंग पर बैठ जाता है और कुछ आगे को झुककर श्वासोच्छ्वास को आसान बनाने की कोशिश करता है। कुछ समय के बाद आक्रमण शान्त हो जाता है। दो आक्रमणों के बीच रोगी को कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। दूसरे प्रकार के दमे में कोई नाट्यात्मक लक्षण नहीं होते; किन्तु रोगी को हमेशा श्वासोच्छ्वास की थोड़ी तकलीफ रहती है। परिश्रम का कार्य करने से, पैदल चलने से या जीना चढ़ने से श्वासोच्छ्वास बहुत बढ़ जाते हैं।

उपाय : (१) दोनों प्रकार के दमे में राहत पाने के लिए आहार पर ध्यान देना चाहिए। दम के रोगी को कफवर्धक खाद्य पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए। चावल, मैदा, दलहन, दही, मिठाइयाँ, मांसाहार आदि पदार्थों का सेवन यथासंभव कम कर दें। भोजन में कच्ची साग-भाजी और फलों को प्रमुख स्थान दें, गेहूँ के चोकरवाले आटे की रोटियाँ खाएँ; आहार की कुल मात्रा मर्यादित रखें।

(२) कब्जियत न होने पाए इसका ध्यान रखें।

(३) आहार का पाचन अच्छी तरह हो इसके लिए पाचनशक्ति को सतेज बनाना चाहिए। इसके लिए पेट के आसन करें, बड़े सबेरे खुले में पैदल चलें और दिन में एक-दो बार ठण्डा कटिस्नान करें।

(४) प्रतिदिन प्रातःकाल १०-१२ मिनट गहरे श्वासोच्छ्वास की कसरतें करें।

(५) धूम्र पान की आदत हो तो उसे यथाशीघ्र छोड़ दें।

आक्रमणकारी दमे के रोगियों को चाहिए कि वे दमे के आक्रमणों के पुनरावर्तन को टालने का प्रयत्न करें। मानसिक अशान्ति के समय या भारी कसरतें करने के बाद दमे के आक्रमण होते देखे गए हैं; अतः इन दो चीजों से बचें। नियमित रूप से लोह-चुंबक चिकित्सा लेने से भी दमे के आक्रमण को टाला जा सकता है। दमे का आक्रमण उत्पन्न करनेवाले कुछ प्रसिद्ध पदार्थों की सूची और उनसे दूर रहने के उपायों की जानकारी का कोष्ठक नीचे दिया गया है।

क्रम	बाह्य पदार्थ	बचने के उपाय
१	फूल पराग	खेतों-बगीचों से दूर रहें, रात को शयनकक्ष की खिड़कियाँ बन्द रखें।
२	खटमल आदि सूक्ष्म जीवाणु	घर में धूल-कूड़ा जमा न होने दें; चादर-गद्दे-तकिये बराबर साफ रखें और प्रतिदिन उन्हें झटक डालें।
३	पशुओं की रूसी	कुत्ते, बिल्लियाँ, घोड़े आदि पशुओं का स्पर्श न करें।
४	कपास	कल्ये या फोम (जैसे डनलोप) के गद्दे-तकियों का उपयोग करें।
५	फफूंद	फफूंद वाली चीजों, फलों, पौधों आदि का स्पर्श न करें।
६	दवाएँ (जैसे ऐस्पिरिन)	ऐसी दवाओं का सेवन न करें।
७	खाद्य पदार्थ	अमुक खाद्य पदार्थ के सेवन से दमे का आक्रमण होता है ऐसा मालूम होने पर उस खाद्य पदार्थ का कभी सेवन न करें।
८	औद्योगिक रसायन	इनसे दूर रहने का प्रयत्न करें; व्यवसाय बदलने की आवश्यकता भी पड़ सकती है।

दमे का आक्रमण होने पर निम्नलिखित उपाय करें :

(१) मन को शान्त रखने का प्रयत्न करें।

(२) साँस छोड़ते समय मुँह को पूरी तरह न खोलें किन्तु होठ आधे बन्द रखें।

(३) गर्म पानी का पैरस्नान करने से आक्रमण शान्त हो जाता है।

(४) कुछ विशेषज्ञ आक्रमण को शान्त करने के लिए छाती की भीगी लपेट का भी उपयोग करते हैं। इसमें लगभग दस मिनट तक आक्रमण की तीव्रता बढ़ती हुई-सी मालूम होती है, किन्तु बाद में तेजी के साथ राहत मिलती है।

(५) ऐंक्थुप्रेषण पद्धति की सहायता लें। त्वचा पर अवस्थित कुछ खास बिन्दुओं को विधिवत् दवाने से आक्रमण शान्त हो जाता है ऐसा प्रयोगों से ज्ञात हुआ है। *

* विस्तृत जानकारी इन्हीं लेखकों की पुस्तक 'ऐंक्थुप्रेषण के द्वारा आप ही अपने डॉक्टर' में दी गई है।

(६) आँख की तकलीफें : आँख मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। यदि दृष्टि है तो सृष्टि है। दृष्टि के बिना समस्त सिद्धियाँ या सम्पत्ति व्यर्थ है। आँखों की तकलीफों के तीन प्रकार हैं :

(अ) सामान्य तकलीफें जैसे, जलन, प्रकाश-असहिष्णुता, खुजली, थकावट, आँखों का खिंचाव, आँखों से पानी बहना आदि।

(ब) आँखों या दृष्टि की खामियाँ जैसे, लघुदृष्टि (myopia), दीर्घदृष्टि (hypermetropia), अनियमित दृष्टि (astigmatism), बयालीसा, आँखों का तिरछापन आदि।

(क) आँखों के रोग जैसे, मोतियाबिन्दु, झामर, आँखों की विविध परतों की सूजन आदि।

उपाय : (१) अन्य रोगों की भाँति ही आँखों के रोगों में भी शुद्धिकारक आहार ग्रहण करना चाहिए। कच्ची साग-भाजी और फलों को पर्याप्त मात्रा में सेवन करने से आँखों को आवश्यक प्रजीवकों की प्राप्ति हो जाती है।

(२) प्रत्येक व्यक्ति को आँखों के उचित उपयोग करने की और उन्हें आराम देने की पद्धतियाँ सीख लेनी चाहिए। *

(३) आँखों या दृष्टि की खामियों में आँखों की योग्य कसरतें करना अनिवार्य है।

(४) आँखों के रोगों में लोहचुम्बक-चिकित्सा से भी अच्छा लाभ होता है। आँखों की लोहचुम्बक-चिकित्सा के लिए एक विशेष प्रकार के चश्मे मिलते हैं।

(५) आँखों के रोगों में निष्णात डॉक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

(७) आंत्रपुच्छ की सूजन : देखिए 'ऐपेण्डिक्स की सूजन'।

(८) इन्फ्लुएन्ज़ा (फ्लू) : शरीर में पीड़ा, सिर में दर्द, सर्दी-जुकाम और हल्का बुखार इन्फ्लुएन्ज़ा के प्रमुख लक्षण हैं।

उपाय : (१) जितने दिन लक्षणों में तीव्रता रहे उतने दिन (एक-दो दिन) उपवास करें। उपवास के दौरान बीच-बीच में पानी में नीबू या संतरे का रस मिलाकर पिया जा सकता है। उपवासकाल में पूर्ण आराम करें।

(२) दो-तीन दिनों तक रोजाना कुनकुने पानी का ऐनिमा लें।

(३) छाती की भीगी लपेट इन्फ्लुएन्ज़ा से फौरन राहत पाने का विशेष उपाय है। एक घण्टे की लपेट से ही इस रोग के उग्र लक्षणों से काफी राहत मिल जाती है।

(४) सर्दी कम करने के लिए चेहरे पर भाप का सेवन किया जा सकता है।

(९) उच्च रक्तचाप (रक्त का ऊँचा दबाव; हाई ब्लड प्रेशर) : लघुदृष्टि, मधु-प्रमेह, मानसिक तनाव या हृदयरोग के समान ही उच्च रक्तचाप भी आधुनिक जीवनक्रम

* विस्तृत जानकारी के लिए इन्हीं लेखकों की पुस्तक 'नेत्ररक्षा' पढ़ें।

का परिणाम है। मानव-जाति में उच्च रक्तचाप के प्रतिशत में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। उच्च रक्तचाप अधिकांश रूप में रक्तनलिकाओं के कठिनीकरण के कारण होता है और निरपवाद रूप से हृदयरोग में परिणत होता है।

उपाय : (१) रक्त के दबाव को नियंत्रित करने में आहार का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। उच्च रक्तचाप में उस आहार को आदर्श आहार माना जा सकता है जिसमें नमक और चरबी अत्यल्प मात्रा में तथा प्रजीवक बी, प्रजीवक ३, मैग्नेशियम विपुल मात्रा में हों। उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति को मिताहारी भी बनना चाहिए। मिताहारी बनने से ही अतिरिक्त वजन कम किया जा सकता है। उच्च रक्तचाप से पीड़ित लोग यदि मांसाहार छोड़ दें तो उन्हें अकल्प्य लाभ होता है।

(२) रक्त के ऊँचे दबाव को नीचा लाने के लिए श्वासन एक अमोघ उपाय है। दिन में दो-तीन बार १०-१० मिनट का श्वासन करना चाहिए। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति यदि सतर्कतापूर्वक अन्य आसन (सर्वांगासन एवं शीर्षासन को छोड़कर) और हल्की-फुल्की कसरतें अपनाए तो एक लम्बे समय के बाद उसे लाभ होता है।

(३) उच्च रक्तचाप को नियंत्रित रखने के लिए लोहचुम्बक-चिकित्सा भी अकसीर सिद्ध हुई है। उच्च रक्तचाप की लोहचुम्बक-चिकित्सा के लिए विशेष प्रकार का लोहचुम्बकीय पट्टा भी उपलब्ध है।

(१०) उपदंश :

उपाय : (१) उपदंश पर प्रतिदिन सूर्यकिरणों का सेवन करें। सूर्यस्नान का समय प्रारंभ में लगभग पाँच मिनट रखें और फिर बढ़ाते हुए २५-३० मिनट तक पहुँचें।

(२) उपदंश या व्रण को अच्छी तरह साफ करके उस पर भीगी मिट्टी की पट्टी या पानी की भीगी लपेट का प्रयोग करें।

(३) उपदंश को शीघ्र भरने के लिए लोहचुम्बक-चिकित्सा की सहायता लें।

(११) उबकाई-उल्टी :

उपाय : (१) उबकाई आती हो या उल्टियाँ होती हों तो सामान्यतः आहार का त्याग करना अभीष्ट है।

(२) वर्फ चूसने से भी उबकाई या उल्टी की भावना शांत हो जाती है।

(३) जिन्हें प्रतिदिन भोजनोपरान्त उल्टी होती हो उन्हें भोजन के समय से आधे-पौने घण्टे पहले पेट पर लगभग पन्द्रह मिनट तक बारी-बारी से गर्म-ठण्डा सेंक करना चाहिए।

(१२) **ऍनीमिया (पाण्डुरोग) :** रक्त में हीमोग्लोबिन की अल्पता को ही ऍनीमिया कहा जाता है। ऍनीमिया से पीड़ित व्यक्ति फीका या निस्तेज दिखाई देता है।

ऍनीमिया के प्रमुख तीन कारण हैं :

(१) रक्त का बह जाना।

(२) हड्डियों की मज्जा की निष्क्रियता के कारण लालकणों का निर्माण कम होना (यथा, शरीर में लोह की कमी के कारण) ।

(३) लालकणों का लगातार नष्ट होते रहना ।

उपाय : (१) ऐसा भोजन ग्रहण करें जिसमें लोहसम्पन्न एवं प्रजीवक 'बी' शरीर को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों । गेहूँ के जवारों का रस, भाजियों का कच्चा रस, भाजियों का सूप, ताजे फल, अंकुरित धान्य और दलहन आदि से प्रजीवक 'बी' पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है ।

(२) बड़े सवेरे प्रातःकाल या सन्ध्याकाल देर से १५-३० मिनट तक सूर्यस्नान करें । साथ ही गहरे श्वासोच्छ्वास लें ।

(३) मालिश और सूखी या भीगी रगड़ से भी ऐनीमिया में लाभ होता है ।

(१३) **एँजाइना (हृदयशूल)** : एँजाइना अर्थात् हृदय को पर्याप्त पोषण न मिलने के कारण होनेवाला सीने का दर्द । इसके लिए मुख्यतः रक्तनलिकाओं के सँकरे और कठोर हो जाने की प्रक्रिया जिम्मेदार है । एँजाइना हृदयरोग के आक्रमण की पूर्व-स्थिति है ।

उपाय : (१) इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को ऐसे आहार का सेवन करना चाहिए जिसमें नमक और चरबी कम हो । शक्कर और तम्बाकू के उपयोग में भी भारी कटौती आवश्यक है । अनेक निष्णातों की मान्यता है कि शरीर में मिथियोनाइन के अतिरेक और प्रजीवक बी_६ की कमी का रक्तनलिकाओं के सँकरेपन के साथ संबंध है । मांसाहार से मिथियोनाइन विशेष मात्रा में उपलब्ध होता है अतः मांस का सेवन कम-से-कम हो यह आवश्यक है । कच्ची साग-भाजी और फलों से प्रजीवक 'बी' पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाता है ।

(२) यदि वजन अधिक हो तो उसे कम करें ।

(३) उच्च रक्तचाप को नियंत्रण में रखें ।

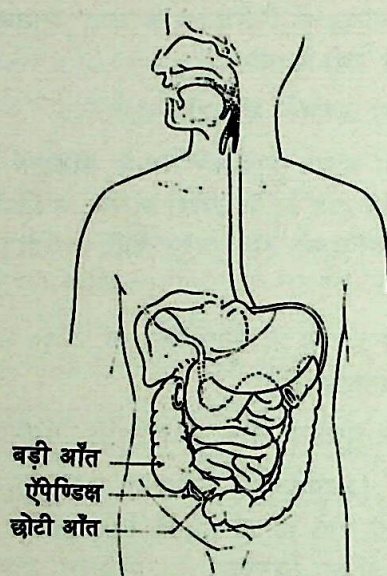
(४) दिन में दो-तीन बार १०-१० मिनट श्वासन करें ।

(५) एँजाइना में लोहचुम्बक चिकित्सा अच्छा लाभ देती है ।

(६) एँजाइना का दर्द कम करने में ऐक्युप्रेषर उपयोगी होता है । *

(१४) **ऐपेण्डिक्स की सूजन (ऐपेण्डिसाइटिस)** : छोटी आंत और बड़ी आंत के मिलन-स्थान के समीप स्थित एक छोटे-से अंग को ऐपेण्डिक्स कहा जाता है । लगभग तीन-साढ़े तीन इंच लम्बे और एकाध इंच के व्यासवाले इस नलाकार अंग को शरीर के लिए निकम्मा समझा जाता है ।

* विस्तृत जानकारी के लिए इन्हीं लेखकों की पुस्तक 'हृदयरोग को रोकिए, आयुष्य बढ़ाइए' पढ़िए ।



चित्र १७.२ : ऐपेंडिक्स

वर्तमान शताब्दी में ऐपेंडिसाइटिस के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। आधुनिक एवं मांसाहारी लोगों में इस रोग की मात्रा बहुत अधिक है; पिछड़ी या मांसाहार न करने-वाली जातियों में यह रोग क्वचित् ही देखने को मिलता है। प्रक्रियायुक्त एवं रेशाविहीन खाद्यपदार्थों के सेवन से उत्पन्न होने वाली कब्जियत और श्रम के अभाव को इस रोग के लिए जिम्मेदार माना जा सकता है (Davidson's Principles and Practice of Medicine, 1982)। आधुनिक औषधिशास्त्र कुछ सूक्ष्म जीवाणुओं को ऐपेंडिसाइटिस के लिए जिम्मेदार मानता है; किन्तु इन जीवाणुओं का अस्तित्व तो आंतों में हमेशा रहता ही है।

इस रोग का आरम्भ पेट के दर्द से होता है। धीरे-धीरे यह दर्द दाहिने कूल्हे में स्थानान्तरित होता है। रोगी का मुँह दुर्गन्धयुक्त हो जाता है, उसे उबकाई-उल्टी की इच्छा होती है, उसे सुस्ती या ज्वर का अनुभव होता है और उसकी नाड़ी की गति तेज हो जाती है। यदि ऐपेंडिक्स की सूजन बहुत बढ़ जाए और ऐपेंडिक्स फट जाए तो बड़ी विकट परिस्थिति का निर्माण होता है। इसलिए आधुनिक चिकित्साशास्त्र ऑपरेशन द्वारा ऐपेंडिक्स को निकाल देने का परामर्श देता है।



व्यक्ति (फोन से) : डॉक्टर, फौरन घर आइए; मेरी पत्नी को ऐपेंडिक्स का दर्द उठा है।

डॉक्टर : असंभव। अभी पिछले ही वर्ष तो मैंने आपकी पत्नी के ऐपेंडिक्स को ऑपरेशन करके निकाल दिया था। किसी भी व्यक्ति को दो ऐपेंडिक्स नहीं हो सकते।

व्यक्ति : साहब, माना कि दो ऐपेंडिक्स नहीं होते, किन्तु दो पत्नियाँ तो हो सकती हैं न!

चित्र १७-३

यद्यपि अनेक बार ऑपरेशन के बाद भी पेडू या जाँघ का दर्द नहीं मिटता। तदुपरान्त अनेक मरणोत्तर परीक्षणों में ऐसे रोगियों में भी ऐपेंडिक्स की पुरानी सूजन के लक्षण प्राप्त होते हैं जिन्हें ऐपेंडिक्स की तकलीफ कभी हुई ही न हो। इसीलिए हर बार ऐपेंडिक्स को काटकर निकाल फेंकने की वृत्ति को तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। किसी भी चिकित्सा के बिना ही ऐपेंडिक्स के अनेक केस ठीक होते देखे गए हैं (Fredrick Price, M. D., F. R. C. P. — A Textbook of Medicine)। ऐसे उदाहरणों में यदि ऐसा मान लिया जाए कि प्रबल बनी हुई जीवन-शक्ति ने ही रोग-निवारण किया तो इसमें तनिक भी अनुचित नहीं है।

उपाय : (१) दर्द के तीव्र लक्षणों में उपवास करना अनिवार्य है। उपवास-काल के दौरान सम्पूर्ण आराम करें। पानी यथेष्ट मात्रा में पिएँ, कभी-कभी बीच में पानी के अन्दर नीबू या संतरे का रस मिलाया जा सकता है।

(२) ऐंपेण्डिसाइटिस में कब्जियत का निवारण करना अत्यावश्यक है। इसके लिए जुलाब लगानेवाली औषधियों का सेवन कदापि न करें। ऐसा करने से सूजा हुआ ऐंपेण्डिक्स फट सकता है। कब्जियत दूर करने के लिए गर्म पानी का ऐनिमा लें। समय-समय पर (दिन में दो-तीन बार) गर्म ऐनिमा लेने से कब्जियत तो दूर होती ही है, साथ ही ऐंपेण्डिक्स की सूजन में भी राहत होती है। प्रत्येक ऐनिमा में आधा लिटर से अधिक पानी न चढ़ाएँ।

(३) ऐंपेण्डिसाइटिस में पेडू पर (बारी-बारी से) ठण्डे-गर्म सेंक का प्रयोग श्रेष्ठ बाह्योपचार है। १०-१५ मिनट के ठण्डे-गर्म प्रयोग के बाद पेट-पेडू पर भीगी मिट्टी रखें। सूखने से पहले ही इस मिट्टी को हटा दें। आवश्यकतानुसार समय-समय पर गर्म-ठण्डा सेंक और मिट्टी का प्रयोग करें।

(४) ऐंपेण्डिक्स की सूजन और पीड़ा कम होने के बाद दिन में दो-एक बार पेडू की भीनी लपेट अच्छा काम देती है।

(५) सूजन उतर जाने के बाद रोग पलट कर पुनः आक्रमण न करे इसके लिए रेशायुक्त आहार (फल, साग-भाजी आदि), पेट के आसन और कटिस्नान जारी रखें।

(१५) ऐंसिडिटी : देखिए 'अम्लता'।

(१६) कब्जियत : कब्जियत सर्वसामान्य रोग है। प्राकृतिक चिकित्साशास्त्र कब्जियत को अन्य अनेक रोगों की जननी मानता है।

ऐसे लोग बड़ी तादाद में मिल जाएंगे। जिन्हें कई वर्षों से प्राकृतिक ढंग से दस्त न हुआ हो। ऐसे लोगों को सोते समय प्रभुस्मरण के स्थान पर बादीस्मरण हुआ करता है—दूसरे दिन प्रातःकाल दस्त होगा या नहीं यही चिन्ता उन्हें सताया करती है। यही चिन्ता उन्हें जुलाब की गोलियों की ओर ले जाती है। संसार में लोग अन्य सभी प्रकार की दवाओं के पीछे कुल जितना खर्च करते हैं उससे ज्यादा खर्च कब्जियत की दवाओं के पीछे करते हैं। यदि जुलाब की दवाओं के पीछे बरबाद होनेवाली सम्पत्ति में कब्जियत दूर करने के लिए उपयोग में लिये जानेवाले त्रिफलाचूर्ण, किसमिस, गुलकन्द, चाय-कॉफी, बीड़ी-सिगरेट आदि के मूल्य को मिलाया जाए तो एक भारी रकम बन जाएगी।

कब्जियत से पेट-माथे का भारीपन, गैस, सुस्ती या अनिद्रा जैसे लक्षण एवं काल-क्रमानुसार अनेक रोग भी उत्पन्न होते हैं।

कब्जियत के कारण : (१) मलत्याग की सही आदत का अभाव कब्जियत का मुख्य कारण है। लोग खाने-पीने या सोने-जागने के समय का निर्वाह नहीं करते; परिणाम-स्वरूप मलविसर्जन भी प्रतिदिन नियत समय पर नहीं होता। जो लोग अपनी दिनचर्या में नियमितता बरतते हैं उन्हें नियत समय पर मल-विसर्जन की आदत पड़ जाती है—शरीर उसी ढंग से अभ्यस्त हो जाता है। बड़े परिवार में रहनेवाले, चालियों में रहनेवाले या यात्रा-प्रवास में रहनेवाले लोग अनेक बार मलविसर्जन की शंका जागने पर भी हाजत के लिए नहीं जा सकते। इस प्रकार प्राकृतिक हाजत रोकने के कारण भी कब्जियत की उत्पत्ति हो सकती है।

(२) रेशाबिहीन या छुंछरहित आहार भी कब्जियत पैदा कर सकता है। इसी प्रकार दिन के दौरान यदि पर्याप्त पानी न पिया जाए तो भी कब्जियत पैदा हो सकती है।

(३) शरीरश्रम का अभाव भी कब्जियत का एक कारण है। निष्क्रिय जीवन जीनेवाले लोगों को कब्जियत अधिक परेशान करती है। कदाचित् इसीलिए स्थितिसम्पन्न एवं केवल मानसिक श्रम करनेवाले लोगों को बीमारियाँ ज्यादातर अपना शिकार बनाती हैं।

उपाय : (१) कब्जियत दूर करने के लिए ऐनिमा श्रेष्ठ एवं तात्कालिक उपाय है। जुलाब की दवा लेने के बाद कितने समय में और कितनी मात्रा में दस्त होंगे इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। इस कारण कभी-कभी तो बड़ी विकट और हास्यास्पद परिस्थित उत्पन्न हो जाती है।



अरे नीचे वाले भाई, जल्दी से दूर हट जा; ऊपरवाला कहता है कि उसकी आँतों में जोरदार दर्द उठा है।

चित्र १७४

तदुपरांत जुलाब की दवाओं की धीमे-धीमे आदत पड़ती जाती है। इस प्रकार की दवाओं से आँतें अधिकाधिक कमजोर होती जाती हैं। दूसरी ओर ऐनिमा से आँतों को बल मिलता है और उसकी आदत नहीं पड़ती।

(२) रेशावाला या छूँछवाला आहार ग्रहण करें। कच्ची साग-भाजी, फल, चोकरवाली रोटियाँ आदि खाद्यपदार्थ यथेष्ट मात्रा में सेवन करें।

(३) प्रातःकाल नीबू के रसवाला एक गिलास पानी पिएँ। इसके अतिरिक्त दिन में खूब पानी पिएँ।

(४) पेट के आसन कब्जियत का निवारण करने में उपयोगी होते हैं। शारीरिक श्रम करनेवाले लोगों को कब्जियत नहीं सताती।

(५) मल-विसर्जन की सही आदत डालने का प्रयत्न करें। प्रतिदिन प्रातःकाल निश्चित समय पर, दस्त हों या न हों तो भी शौचालय में जाकर बैठना चाहिए। अलवत्ता, दस्त करने के लिए जोर न लगाएँ।

(६) कब्जियत न हो इसके लिए कटिस्तनान, पेट पर भीनी मिट्टी, पेट की भीगी लपेट आदि बाह्योपचार भी आजमाए जा सकते हैं।

(१७) कमला (या पीलिया) : शरीर के प्रवाहियों में बिलिरुबिन नामक स्राव की मात्रा बढ़ने से त्वचा एवं श्लेष्मावरण (mucous membranes) पीले पड़ जाते हैं। इस रोग को कमला या पीलिया कहा जाता है। सामान्यतः पित्तनली (bile duct) के अवरोध के कारण कमला होता है। अवरोध के कारण पित्त (bile) छोटी आँत में पहुँचने के बदले रक्त में मिलता है जिससे शरीर पीला दिखता है। छोटी आँत में चरबी के पाचन में पित्त सहायता करता है। कमला में पित्त के अभाव के कारण चरबी का उचित पाचन नहीं होता, परिणामस्वरूप मल चरबीयुक्त होता है।

लक्षण : उबकाई-उलटी, अशक्ति, भूख की कमी, कब्जियत, सफेद दस्त, हल्का बुखार, आँख-मूत्र का पीलापन, यकृत के भाग में दर्द इत्यादि कमला के लक्षण हैं।

उपाय : (१) प्रतिदिन प्रातःकाल सादे ठण्डे पानी का एँनिमा लें। बीच-बीच में एँनिमा के पानी में नीबू का रस मिलाएँ। एँनिमा कब्जियत के निवारण का श्रेष्ठ उपाय है।

(२) दो-एक दिन उपवास करने के बाद क्षारप्रधान आहार लेना शुरू करें। प्रारंभ में खट्टे-मीठे फलों का रस, करेलों का रस, मूली के पत्तों का रस, जामुन आदि रसाहार या फलाहार का अवलम्बन लें। धीरे-धीरे ठोस आहार पर आएँ। कमला के रोगी के लिए चरबीवाले खाद्यपदार्थ वर्ज्य हैं।

(३) पेट से सम्बन्धित योगासन करें।

(४) दिन में तीन-चार बार पेट-पेडू पर (विशेषतः दाहिनी ओर) १०-१० मिनट गर्म-ठण्डा सेंक करें। सेंक करने के बाद पेट-पेडू पर भीगे कपड़े की लपेट करें। इस प्रकार की भीगी लपेट दिनभर रखी जा सके तो अधिक अच्छा है।

(५) दिन में दो बार ठण्डे पानी का कटिस्तनान करें।

(६) पेट पर भीगी पट्टी का प्रयोग भी कमला में उपयोगी होता है।

(१८) कौए या काकल की सूजन (टॉन्सिलाइटिस) : गले के ऊपरी हिस्से में स्थित विशेष प्रकार की लिम्फ ग्रन्थियों को 'टॉन्सिल' या काकल कहा जाता है। काकल की सूजन विशेषतः बच्चों का रोग है।

प्रकृति ने शरीर का कोई भी अंग निकम्मा नहीं बनाया। काकल तो श्वसनतंत्र और पाचनतंत्र के द्वार पर खड़े प्रहरी हैं। एक समय ऐसा था जब तनिक भी सूजन

मालूम होते ही काकल को काटकर निकाल दिया जाता था। किन्तु काकल को निकाल देने से खाँसी-सर्दी से मुक्ति पाई जा सकती है इस मान्यता के लिए प्रमाण नहीं मिलते। सच तो यह है कि काकल को निकाल देने के बाद श्वसनतंत्र के रोग अधिक आसानी से हो जाते हैं। (Hobart Reimann, M. D.—Treatment in General Practice, 1948)। यही कारण है कि काकल को निकाल फेंकने की मनोवृत्ति कुछ कम हुई है।

लक्षण : गले की पीड़ा, किसी पदार्थ को निगलने में तकलीफ और ज्वर काकल की सूजन के प्रमुख लक्षण हैं।

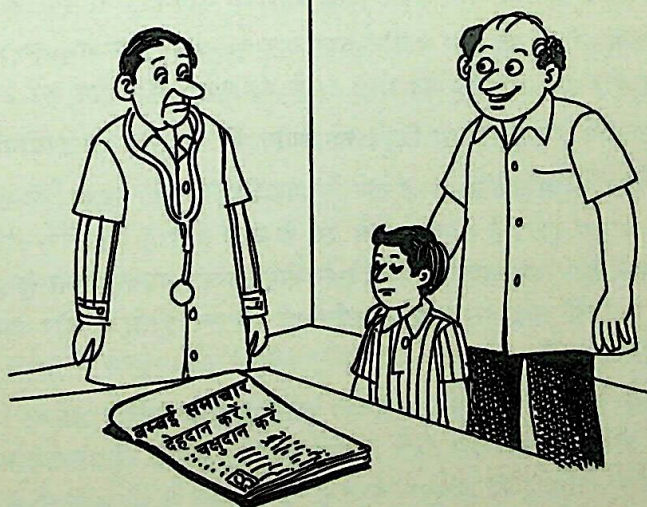
उपाय : (१) इस रोग के तीव्र लक्षणों का नियमन होने तक आहार का त्याग करना अभीष्ट है। इस दौरान पानी में नीबू या संतरे का रस मिलाकर पिया जा सकता है। दो-तीन दिनों के बाद फल, फलों के रस आदि क्षारप्रधान आहार लेना शुरू करें। कुछ दिनों के लिए तले हुए मसालेदार व्यंजनों, मिठाइयों और अधिक कार्बोहाइड्रेट्स वाले खाद्य पदार्थों का त्याग करें। उपवास या अल्पाहार के काल में एनिमा लेने से कब्जियत नहीं होती।

(२) गर्म पानी के कुल्ले करने से गले की पीड़ा कम होती है।

(३) गले पर बाहर की ओर भीगी मिट्टी रखने से सूजन और पीड़ा में शीघ्र आराम मिलता है।

(४) काकल की सूजन में भीगे कपड़े की लपेट से भी अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

(५) पीड़ा नियंत्रित हो जाने के बाद खुले में घूमने तथा गहरी साँस लेने से लाभ होता है।



व्यक्ति (अस्पताल के डॉक्टर से) : डॉक्टर साहब, मेरे बेटे को अपने काकलों का दान करना है!

(१९) कान की तकलीफें : कान की पीड़ा, कान से मवाद बहना और बहरापन कान की मुख्य तकलीफें हैं ।

उपाय : कान की तकलीफों में विशेषज्ञ डॉक्टर से मिलकर उपचार करना चाहिए । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित उपाय करें :

(१) दो-तीन दिनों तक रोजाना एंनिमा लें ।

(२) कान पर गर्म-ठण्डा सेंक करें ।

(३) कान की तकलीफों में लोहचुम्बक-चिकित्सा अच्छे परिणाम लाती है ।

(४) सामान्य स्वास्थ्य-मुधार के लिए पेडू पर मिट्टी अथवा भीगे कपड़े की लपेट का प्रयोग करें ।

(२०) कोलाइटिस : कोलाइटिस पुराने दस्त का रोग है । पेडू में दर्द उठने के साथ चिकने दस्त होना कोलाइटिस का प्रमुख लक्षण है । रोग के उग्र आक्रमण में थका डालनेवाले दस्त होते हैं, नाड़ी की गति तेज हो जाती है, शरीर का तापमान बढ़ता-घटता रहता है और पेट फूल जाता है । ऐसे समय में यदि दवाओं का अविवेकपूर्ण उपयोग किया जाए तो रोग जीर्ण स्वरूप धारण करता है । बड़ी आंत अपनी स्थितिस्थापकता खोकर पाइप की तरह कठोर हो जाती है, रोगी बेचैनी और रक्ताल्पता का शिकार हो जाता है ।

उपाय : (१) दस्त चालू हों तब तक उपवास करें । इस दौरान पानी में नीबू या संतरे का रस मिलाकर उसका सेवन किया जा सकता है । दस्त नियंत्रित हो जाने के बाद रोगी को आहार में मुख्यतः मट्ठा (गाढ़ी छाछ) देने से अप्रतिम लाभ होता है ।

(२) उपवास-काल में और उसके बाद प्रतिदिन एंनिमा लेना इष्ट है ।

(३) पेट में दर्द हो तब दिन में तीन-चार बार १०-१० मिनट गर्म-ठण्डा सेंक करें । सेंक के बाद हर बार पेट और पेडू पर भीगे कपड़े की लपेट का प्रयोग करें ।

(४) पेट और पेडू पर भीगी मिट्टी का प्रयोग भी इस रोग में उपयोगी होता है ।

(२१) हैजा : हैजा एक संक्रामक रोग है । पेट-सिर में दर्द, उबकाई-उल्टी और दस्त से इस रोग का आरंभ होता है । पहले पीले रंग के दस्त होते हैं जो धीरे-धीरे चावल के पानी जैसे हो जाते हैं । बार-बार दस्त होने से रोगी ठण्डा पड़ता जाता है । यदि रोग नियंत्रित न हो पाए तो तन्द्रावस्था या मूर्च्छावस्था उत्पन्न होती है और अन्त में रोगी मृत्यु का ग्रास हो जाता है ।

जिस समय हैजे का रोग फैला हो उस समय प्रत्येक व्यक्ति उसका शिकार नहीं होता । जिनकी जीवन-शक्ति प्रबल होती है उन्हें यह रोग तनिक भी परेशान नहीं करता । वास्तव में, जो लोग रोगियों की शुश्रूषा करते हैं उनके मल में भी कॉलेरा के तथाकथित जीवाणु पाए जाते हैं । हैजे से मुक्त होने के दो महीने बाद भी रोगी के मल में जीवाणु दिखाई दे सकते हैं । संक्षेप में, जिन व्यक्तियों के शरीर में पहले से ही बहुत अधिक विषद्रव्य हों या आंतों में मल का संचय हो ऐसे व्यक्ति ही इस रोग के शिकार बनते हैं ।

जीवाणु जिन विषों का निर्माण करते हैं उनके निष्कासन के लिए ही शरीर को दस्त का आधार लेना पड़ता है ।

उपाय : (१) रोग की शुरुआत का पता चलते ही पहले तो रोगी को पर्याप्त गर्म पानी का एंनिमा दे दें । एंनिमा में जितना अधिक पानी चढ़ सके उतना ही अच्छा है । कॉलेरा के जीवाणु छोटी आंत के अन्तिम हिस्से में और बड़ी आंत में होते हैं । उन्हें साफ करने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है । पानी अधिक मात्रा में चढ़ने से आंतों की सतह पर जमा हुआ मल भी निकल जाता है । इसके बाद हर आठ-दस घण्टे के बाद एंनिमा देते रहें । केवल दो-तीन एंनिमा से ही रोग की वृद्धि रुक जाती है ।

(२) दस्त चालू हों ऐसे समय में आहार का त्याग अनिवार्य है । इस स्थिति में रोगी को यथेष्ट मात्रा में पानी पिलाएँ । सामान्य पानी के स्थान पर नीबू या अन्य फलों के रसवाला अथवा नमकमिश्रित पानी दें । लोहचुम्बकांकित पानी देने से काफी लाभ होता है ।

(३) कटिस्नान और मिट्टी की पट्टी कॉलेरा के लिए खास उपाय हैं । रोगी को प्रति दो घण्टे पर ठण्डे पानी का कटिस्नान कराएँ । कटिस्नान के दौरान रोगी के पैर गर्म पानी के बर्तन में डुबोए रखें । दो कटिस्नानों के बीच कभी-कभी २०-३० मिनट के लिए पेट-पेड़ पर भीगी मिट्टी रखें ।

(४) यदि रोगी का शरीर ठण्डा रहता हो तो तीन-चार ऊनी कम्बल लपेटें ।

(२२) खाँसी : खाँसी श्वसनतंत्र का सामान्य रोग है । यह शरीर की स्वरक्षात्मक क्रिया का एक रूप है । फेफड़ों या श्वासनलिका में स्थित विजातीय पदार्थों या प्रवाहियों को बाहर निकालने का शारीरिक प्रयत्न ही खाँसी है । यदि बहुत उग्र न हो तो खाँसी हानिकारक नहीं है और उसे दबाना नहीं चाहिए ।

उपाय : (१) एक-दो दिनों के उपवास करना खाँसी दूर करने का सर्वाधिक प्रभावकारी उपाय है । उपवास-काल में एंनिमा लेकर पेट साफ रखें । उपवास के बाद सादा, शुद्धिकारक आहार ग्रहण करें; ठण्डे खाद्यपदार्थों का सेवन न करें ।

(२) खाँसी में सीने पर भीगे कपड़े की लपेट से चमत्कारिक लाभ होता है; दिन में दो-तीन बार लपेट का प्रयोग करें ।

(३) फेफड़ों में स्थित प्रवाहियों के शीघ्र निष्कासन के लिए भाप (नास) एक अच्छा उपाय है ।

(४) खाँसी में लोहचुम्बक-चिकित्सा से भी अच्छा लाभ होता है ।

(५) गहरे श्वासोच्छ्वास खाँसी को शीघ्रता से दूर करने तथा उसके पुनरागमन को रोकने में सहायक होते हैं ।

(२३) गले की सूजन/पोड़ा :

उपाय : (१) एक दिन का उपवास करने से और तत्पश्चात् एक दिन प्रवाही आहार ग्रहण करने से गले की पोड़ा कम हो जाती है ।

(२) गर्म पानी के कुल्ले करें।

(३) गले और सीने पर भीगे कपड़े की लपेट का प्रयोग करें।

(४) गले की पीड़ा में लोहचुम्बक-चिकित्सा से अच्छा लाभ होता है।

(२४) गुच्छेवाली नसें : गुच्छेवाली नसें मन्द रक्तप्रवाह की निशानी है। घण्टों तक एक ही जगह खड़े होकर काम करनेवाले लोगों को यह रोग अधिक परेशान करता है। प्रायः पैरों की पिंडलियों में गुच्छेवाली, फूली हुई नसें देखी जा सकती हैं।

उपाय : इस रोग के लिए दीर्घकालीन चिकित्सा की जरूरत पड़ती है।

(१) सर्वप्रथम तो एक सप्ताह के लिए शरीर की सफाई का कार्यक्रम बनाना चाहिए। इस कार्यक्रम में एक-दो दिनों के उपवास एक-दो दिनों के रसाहार और एक-दो दिनों के अपक्वाहार का समावेश करना चाहिए। इस एक सप्ताह के दौरान प्रतिदिन ऐनिमा का प्रयोग करें। तत्पश्चात् क्षारप्रधान आहार का सेवन करें।

(२) बाह्योपचारों में रीढ़ की ठण्डी पट्टी और गर्म-ठण्डा कटिस्नान मुख्य हैं।

(३) यदि पैरों की नसें फूली हुई हों तो पैरों को (तकियों के सहारे) ऊँचाई पर टिकाकर पंजों का हलन-चलन करने का व्यायाम रोज दिन में तीन-चार बार १०-१० मिनट करें।

(४) इस रोग में लोहचुम्बक-चिकित्सा से भी अच्छा लाभ होता है।

(२५) गॅस (वायु) : यह तकलीफ अनपच या कब्जियत की निशानी है और निष्क्रिय जीवन जीनेवाले लोगों को ज्यादा परेशान करती है।

उपाय : (१) सुपाच्य, हल्का, रेशाप्रचुर आहार का सेवन करें। दिनभर में तीन बार से अधिक न खाएं।

(२) मलविसर्जन की योग्य आदत डालें। यदि कब्जियत रहती हो तो उसके निवारण के लिए प्रयत्नशील रहें; आवश्यकता पड़ने पर ऐनिमा का प्रयोग करें।

(३) पेट के आसन नियमित रूप से करें।

(४) इस रोग में कटिस्नान या पेड़ पर भीगी मिट्टी जैसे प्रयोगों से बहुत लाभ होता है।

(२६) घाव (या जख्म) :

उपाय : (१) यदि रक्त बह रहा हो तो सर्वप्रथम उसे रोकने का प्रयत्न करें। छोटी रक्तनलिकाओं का रक्तस्राव उँगली या अँगूठे के दबाव से और बड़ी रक्तनलिकाओं के रक्तस्राव को कपड़े या डोरी से घाववाले भाग को दबाकर बाँधने से रोका जा सकता है। यदि रक्तस्राव बन्द न हो तो अविलम्ब डॉक्टर की सहायता लें।

(२) रक्तस्राव बन्द होने के बाद घाव की पीड़ा कम करने और उसके शीघ्र ठीक होने के लिए लोहचुम्बक-चिकित्सा की सहायता लें।

(३) घाव पर प्रतिदिन ५-१० मिनट सूर्यकिरणों का सेवन करें।

(२७) चर्मरोग : चर्मरोग शरीर और रक्त में विषद्रव्यों के संचय की बाह्य अभिव्यक्ति है। सामान्यतः इस तथ्य की अवगणना करके चर्मरोगों के लिए केवल स्थानीय बाह्य उपचार किये जाते हैं। इसीलिए चर्मरोग जल्दी अच्छे नहीं होते। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा चर्मरोग दूर करने में जल्दी सफलता मिलती है।

उपाय : (१) चर्मरोगों में लम्बे समय तक केवल क्षारांत अर्थात् शुद्धिकारक आहार लेना चाहिए। खट्टे-मीठे फलों का अधिक उपयोग करें; मसाले, तली हुई चीजें, मिठाइयों और मैदे के व्यंजनों का उपयोग बहुत कम कर दें।

(२) प्रतिदिन या एकान्तर से ठण्डे पानी के एंनिमा का प्रयोग करें।

(३) चर्मरोगों में प्रतिदिन सूर्यस्नान अनिवार्य है। सूर्यस्नान लगभग पाँच मिनट से शुरू करें और समय बढ़ाते हुए २५-३० मिनट तक पहुँचें।

(४) शरीर में खास तौर से त्वचा के नीचे संचित विषों को बाहर निकालने के लिए वाष्पस्नान और सम्पूर्ण शरीर पर भीगी लपेट के प्रयोग उपयोगी हैं। एक दिन वाष्पस्नान तो दूसरे दिन भीगी लपेट इस प्रकार से क्रम रखें।

(५) जलन, पीड़ा, खुजली या मवाद जैसी तकलीफों से राहत प्राप्त करने के लिए भीगी मिट्टी की स्थानीय पट्टी या भीगे कपड़े की लपेट उपयोगी सिद्ध होती है।

(२८) जल जाना :

उपाय : (१) जले हुए हिस्से को फौरन अत्यन्त ठण्डे (बर्फिले) पानी में डुबो दें। जब तक पीड़ा और जलन शांत न हो तब तक उस हिस्से को पानी में डुबोए रखें।

(२) पीड़ा शांत होने के बाद जले हुए अंग को पानी से बाहर निकालकर उस पर भीगी मिट्टी की (खुली) पट्टी रखें। एक-एक घण्टे के बाद यह पट्टी बदलते रहें।

(३) जले हुए अंग पर यदि फफोले पड़ गए हों तो उन्हें फोड़ें नहीं।

(४) अधिक जल जाने से यदि रोगी को आघात (shock) लगा हो और उसके हाथ-पैर ठण्डे पड़ गए हों तो उपर्युक्त शीतल प्रयोग सावधानीपूर्वक करें और रोगी के हाथ-पैर पर गर्म पानी की थैलियाँ या बोतलें रखें।

(५) घाव में शीघ्र आराम लाने के लिए लोहचुंबक-चिकित्सा की सहायता लें।

(२९) ज्वर : ज्वर कोई स्वतंत्र रोग नहीं है, किन्तु किसी रोग का लक्षण मात्र है। ऊँचे तापमान में शरीर के विष जल जाते हैं।

उपाय : ज्वर में शरीर-शुद्धि के उपायों का आयोजन करें।

(१) ज्वर के शान्त होने तक आहार का त्याग करें।

(२) प्रतिदिन एंनिमा लेकर आंतों को साफ रखें।

(३) दिन में दो-तीन बार पेड़ पर भीगी मिट्टी की पट्टी रखें।

(४) तापमान अत्यधिक बढ़ जाने पर मस्तक पर खूब ठण्डी पट्टी रखें या फिर पूरे शरीर पर भीगी लपेट करें (भीगे कपड़े पर कम्बल न उड़ाएँ)।

(३०) टॉन्सिलाइटिस : देखिए 'काकल की सूजन' ।

(३१) डंक :

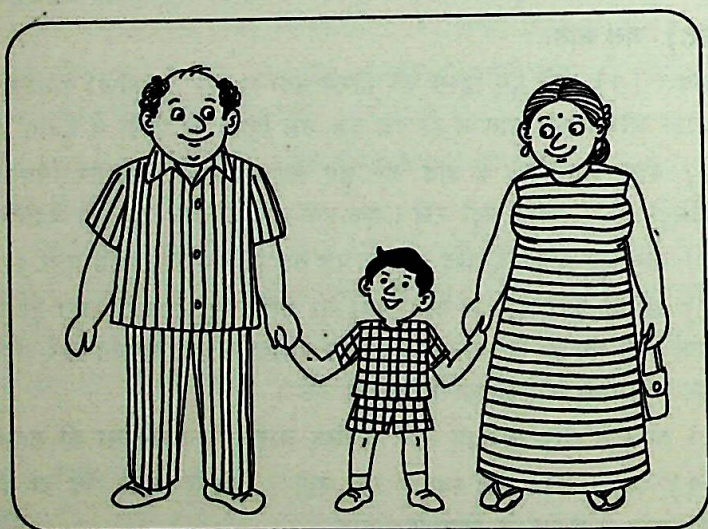
उपाय : (१) यदि दंश के स्थान पर जन्तु के डंक या काँटे का कोई हिस्सा चुभा हुआ मालूम हो तो त्वचा पर अगल-बगल से दबाव देकर उस काँटे को निकाल डालना आवश्यक है ।

(२) डंक के स्थान पर भीगी मिट्टी की पट्टी बाँधें । एक-एक घण्टे में यह पट्टी बदलते रहें ।

(३) यदि डंक का भाग पक जाए तो फोड़े की तरह ही उसकी भी चिकित्सा करें ।

(४) सर्पदंश जैसी गंभीर परिस्थिति में हॉस्पिटल की चिकित्सा अनिवार्य है ।

(३२) डायबिटीस (मधुमेह) : यह रोग कुछ अंशों में वंशानुगत है और शक्कर को पचानेवाले स्राव (हॉर्मोन) 'इन्स्युलिन' की कमी का परिणाम है । डायबिटीस को मिटाया नहीं जा सकता, केवल नियंत्रण में रखा जा सकता है । इसीलिए इस रोग की रोकथाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है । डायबिटीस के पारिवारिक इतिहास वाले व्यक्तियों को बचपन से ही शक्कर-कार्बोहाइड्रेट्स का कम सेवन और नियमित शरीरश्रम-कसरतों का अवलम्ब लेना चाहिए ।



चित्र १७-६ : वंशानुगत बीमारी

उपाय : (१) डायबिटीस को नियंत्रण में रखने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपाय आहार है । आहार में कार्बोहाइड्रेट्स का उपयोग कम-से-कम करें ।

(२) विभिन्न आसन (विशेषतः पेट से सम्बन्धित) और कसरतों के अन्य प्रकार नियमपूर्वक करें ।

(३) यदि वजन अधिक हो तो कम करें ।

(४) डायबिटीस को नियंत्रित रखने में लोहचुंबक-चिकित्सा से अच्छी सहायता मिलती है।

(३३) दमा : देखिए 'अस्थमा'।

(३४) दर्द (या पीड़ा) : आजकल लोग दर्द के प्रति कुछ अधिक संवेदनशील या सचेत हो गए हैं। अलबत्ता, दर्द की अवगणना करना उचित नहीं है, किन्तु दर्द के प्रथम लक्षण से ही पीड़ाशामक गोलियों के लिए भाग-दौड़ शुरू कर देना योग्य नहीं है।

उपाय : (१) जिस जगह दर्द होता हो उस अंग पर गर्म सेंक करें।

(२) उस अंग पर भीगे कपड़े की लपेट करने से भी फौरन लाभ होता है।

(३) पीड़ा-निवारण के लिए ऐंक्थुप्रेशर अमोघ उपाय है।*

(४) दर्द में राहत पाने के लिए लोहचुम्बकों का उपयोग भी किया जा सकता है।

(३५) दस्त (डायरीआ) :

उपाय : (१) जब तक दस्त बन्द न हों तब तक आहार का त्याग करना चाहिए। पानी यथेष्ट पिएँ; बीच-बीच में पानी में नीबू या संतरे का रस मिलाएँ। लोहचुम्बकांकित पानी से भी अच्छा लाभ होता है।

(२) दस्त बन्द होने तक प्रतिदिन ऐंनिमा लें। यह प्रयोग प्रथम दृष्टि में विरोधाभासी लगता है; किन्तु इससे इस रोग में अत्यधिक लाभ होते देखा गया है।

(३) पेड़ पर भीगी मिट्टी की पट्टी रखें। यदि पेड़ में दर्द हो तो पहले गर्म सेंक करें; इसके बाद मिट्टी की पट्टी रखें।

(४) दस्त कुछ नियंत्रित हो जाने के बाद कटिस्तान किया जा सकता है।

(५) दस्त बन्द हो जाने और भूख खुलने के बाद पहले एक-दो दिन प्रवाही लें और फिर ठोस आहार शुरू करें।

(३६) नपुंसकता : नपुंसकता के उपाय के लिए देखिए 'यौन निर्बलता'।

(३७) नींद न आना : देखिए 'अनिद्रा'।

(३८) पाण्डुरोग : देखिए 'ऐंनीमिया'।

(३९) पेचिश : पेचिश या मरोड़ की चिकित्सा कोलाइटिस की चिकित्सा के अनुसार ही करें।

(४०) पेट या पेड़ का दर्द :

उपाय : (१) एक-दो दिन उपवास करें।

(२) दो-तीन दिन रोज और इसके बाद एकांतर से गर्म पानी का ऐंनिमा लें।

(३) पेट पर ५-१० मिनट गर्म सेंक करके भीगी मिट्टी की पट्टी रखें या भीगे कपड़े की लपेट करें।

(४) गॅस के कारण दर्द हुआ हो तो ५-१० मिनट पवनमुक्तासन करें।

* विशेष जानकारी के लिए देखें 'ऐंक्थुप्रेशर' के द्वारा आप ही अपने डॉक्टर पढ़ें।

(५) पेट या पेड़ू का दर्द कम हो जाने के बाद पहले रसाहार, फिर क्रमशः अपक्वाहार और अन्त में पकाए हुए आहार पर आएँ ।

(४१) पेट (जठर) के उपदंश : अतिशय मसालेदार आहार और मानसिक तनाव के कारण पेट में उपदंश हो सकते हैं ।

उपाय : (१) सादा, मसालारहित आहार ग्रहण करें ।

(२) आहार ग्रहण करने के पूर्व आधे घण्टे तक पेट पर भीगी मिट्टी की (खुली) पट्टी रखें ।

(३) पेट के उपदंश में लोहचुंबक-चिकित्सा (विशेषतः लोहचुंबकांकित पानी) अच्छा लाभ करता है ।

(४२) पौरुषग्रंथि (प्रॉस्टेट) की वृद्धि :

उपाय : (१) प्रतिदिन प्रातःकाल गर्म पानी का एनिमा लें ।

(२) पेड़ू पर पन्द्रह मिनट तक गर्म-ठण्डा सेंक करके भीगी मिट्टी की पट्टी बाँधें । ये प्रयोग दिन में दो-तीन बार किये जा सकते हैं ।

(३) प्रॉस्टेट की वृद्धि में लोहचुंबक-चिकित्सा से अच्छा लाभ होता है ।

(४३) प्लीहा (स्प्लीन) की तकलीफें :

उपाय : (१) एक-दो दिन उपवास करें ।

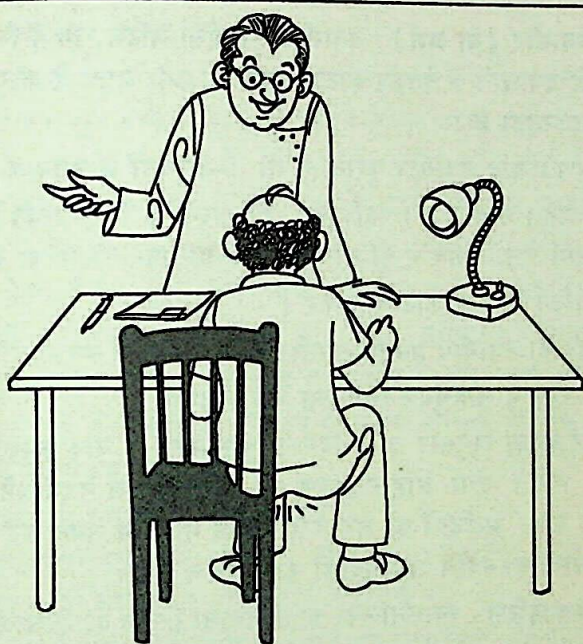
(२) उपवास-काल के दौरान प्रतिदिन एनिमा लें ।

(३) दिन में एक-दो बार ठण्डे पानी का कटिस्नान करें ।

(४) पेट पर गर्म-ठण्डे सेंक करके भीगे कपड़े की लपेट बाँधें या पेड़ू पर भीगी मिट्टी रखें ।

(४४) फलू : देखिए 'इन्फ्लुएन्ज़ा' ।

(४५) फिशर (मलद्वार के चीरे) : फिशर कब्जियत के कारण होनेवाला रोग है । प्रतिदिन मलत्याग के समय होने वाली रगड़ के कारण ये चीरे भर नहीं पाते और भारी पीड़ा के कारण बनते हैं ।



जी हाँ, अब कहिए कि वह फोड़ा वास्तव में है कहाँ?

चित्र १७-७

उपाय : (१) दो-तीन दिन उपवास करें। इस समयावधि में अत्यंत सावधानी-पूर्वक प्रतिदिन ऐंनिमा लें।

(२) ठण्डा कटिस्नान करने से फिशर में अच्छा लाभ होता है।

(३) पीड़ा और सूजन कम करने के लिए भीगी मिट्टी का स्थानीय प्रयोग करें।

(४) इस रोग में लोहचुंबक-चिकित्सा भी उपयोगी है।

(४६) **फोड़े-फुंसी :** फोड़ों को शरीर के भीतर एकत्र विषों की बाह्य अभिव्यक्ति माना जा सकता है। फोड़ों को त्वचा का स्थानीय दर्द मानकर केवल स्थानीय उपचार करने के बदले सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध करने के प्रयत्न अधिक निश्चित और शीघ्र लाभ प्रदान करते हैं।

उपाय : (१) एक-दो दिनों के उपवास करने से शरीर-शुद्धि का कार्य अच्छी तरह होता है। उपवास-काल के दौरान ऐंनिमा के द्वारा आँतें स्वच्छ रखें। तत्पश्चात् दो-तीन दिन केवल अपक्वाहार (कच्चे आहार) का सेवन करें। खट्टे-मीठे फल यथेच्छ मात्रा में लें। नमक के उपयोग पर एकदम नियंत्रण लगा दें। मँदे के व्यंजनों, मिठाइयों और तले हुए खाद्य पदार्थों का सेवन कम करें।

(२) फोड़े को पकाने के लिए गर्म सेंक काफी उपयोगी है।

(३) फोड़े का मुँह दिखते ही उस पर भीगी मिट्टी रखने से वह जल्दी फूटता है और उसमें स्थित विषों का शोषण हो जाता है।

(४७) बवासीर (या अर्श) : बवासीर एक ऐसा जटिल रोग है जिसका रोगी एक दवाखाने से दूसरे दवाखाने के चक्कर काटता रहता है, ठगा जाता है और अपनी जेब का बोझ हल्का करता रहता है ।

उपाय : (१) यदि बवासीर पुराने हों तो ३-४ दिनों के उपवास करें ।

(२) कब्जियत न होने दें । कब्जियत दूर करने के लिए अत्यंत सावधानीपूर्वक ऐनिमा लें । ऐनिमा लेना संभव न हो तो इसबगोल का सेवन किया जा सकता है ।

(३) प्रतिदिन दो बार कटिस्नान करें ।

(४) मिट्टी का स्थानीय प्रयोग बवासीर में अच्छा लाभ करता है ।

(५) इस रोग में लोहचुंबक-चिकित्सा भी आजमाएँ ।

(६) ऊपर बताए अनुसार ३-४ दिन उपवास करने के बाद क्रमशः रसाहार और ठोस आहार शुरू करें । ऐसा आहार ग्रहण करें जिसका मल नरम बने । चोकरयुक्त आटे की रोटियाँ, फल, भाजियों की तरकारी यथेच्छ मात्रा में सेवन करें । दलहन, मैदे के व्यंजन आदि वादी करनेवाले खाद्यपदार्थों का सेवन न करें ।

(४८) ब्रॉन्काइटिस : श्वासनलिका का नीचेवाला हिस्सा दो शाखाओं में बँटता है । ब्रॉन्काय नामक इन शाखाओं की जलन को ब्रॉन्काइटिस कहा जाता है । खाँसी, ज्वर और कफ ब्रॉन्काइटिस के प्रमुख लक्षण हैं ।

उपाय : (१) इस रोग के तीव्र लक्षण विद्यमान हों तब तक आहार-त्याग करें । कब्जियत से बचने के लिए ऐनिमा लें ।

(२) सीने पर लगभग दस मिनट गर्म सेंक करके गर्म पानी में भिगोए हुए कपड़े की लपेट इस रोग में बड़ा अच्छा काम करती है ।

(३) दिन में दो-एक बार नास लें ।

(४) पैरों पर भीगे कपड़े की लपेट बाँधने से भी ब्रॉन्काइटिस में त्वरित आराम मिलता है ।

(५) लोहचुंबक-चिकित्सा की सहायता भी लें ।

(४९) ब्लडप्रेशर : देखिए 'उच्च रक्तचाप' ।

(५०) भूख की कमी : भूख की कमी अनपच, कब्जियत या निष्क्रिय जीवन का परिणाम है ।

उपाय : (१) दो-तीन दिन केवल रसाहार या फलाहार पर रहें ।

(२) रसाहार या फलाहार के कार्यक्रम के दौरान प्रतिदिन ऐनिमा लें ।

(३) पानी खूब पिएँ ।

(४) प्रातःकाल पेट से सम्बन्धित आसन करें और संध्याकाल लम्बे अन्तर तक पैदल चलें ।

(५) दिनभर में एक बार ठण्डे पानी का कटिस्नान करें ।

(६) दो जून के भोजनों के बीच यदि खाने की आवश्यकता हो तो उसे छोड़ दें ।

(५१) मधुप्रमेह : देखिए 'डायबिटीस' ।

(५२) मलेरिया : मलेरिया के सूक्ष्म जीवाणु एंनोफिलिस मच्छरों के दंश द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते हैं । जिस व्यक्ति की जीवन-शक्ति प्रबल होती है उसका शरीर इन जीवाणुओं को तुरन्त नष्ट कर देता है । किन्तु यदि शरीर और रक्त में विषद्रव्य संचित हुए हों तो ये जीवाणु फूलते-फलते हैं और रक्त के लाल कणों पर आक्रमण करते हैं ।

मलेरिया के रोगी को सर्वप्रथम अत्यधिक ठण्ड लगती है, उसके दाँत किटकिटाते हैं और शरीर कांपता है । धीरे-धीरे ज्वर चढ़ने लगता है । साथ ही आँखों में जलन, सिर में पीड़ा और शरीर में वेदना होती है । अमुक समय के बाद पसीना निकलने के साथ ज्वर उतर जाता है । किन्तु निश्चित कालावधि के बाद ज्वर पुनः चढ़ता है ।

उपाय : ज्वर के दो आक्रमणों के बीच का समय उपचार के लिए आदर्श समय है । इस समय में निम्नलिखित उपचार करें :

(१) नीबूवाले गर्म पानी का एंनिमा दें ।

(२) पूरे शरीर पर भीगे कपड़े की लपेट का प्रयोग करें । इस समय हाथ और पैरों को गर्म पानी की थैलियों या बोतलों से गर्म रखें ।

(३) पूरे शरीर की भीगी लपेट के स्थान पर वाष्पस्नान भी कराया जा सकता है । वाष्पस्नान पूर्ण होने के बाद गर्म पानी में भिगोए हुए कपड़े से शरीर को पोंछ डालें ।

(४) यकृत पर गर्म-ठण्डा सेंक करें ।

ये सारे उपाय ज्वर चढ़ने के निश्चित समय से दो घण्टे पहले पूरे हो जाने चाहिए । ज्वर का आक्रमण शुरू होने से पहले शरीर में बेचैनी महसूस होने लगे कि फौरन रोगी को नीबू का गर्म पानी पिलाकर १५-२० मिनट तक गर्म पानी का पैरस्नान कराएँ । तत्पश्चात् रोगी को कम्बल उढ़ाकर सुला दें । ऐसा करने से ज्वर नहीं चढ़ता । नियत समय पर ज्वर न चढ़ने देना, यही उद्देश्य होना चाहिए ।

फिर भी यदि ज्वर चढ़े तो रोगी को गर्म पानी पिलाकर आराम करने दें । प्रायः तापमान अधिक नहीं बढ़ता और ज्वर अधिक देर तक ठहरता नहीं है अर्थात् शीघ्रता से उतर जाता है । ज्वर उतर जाने के बाद शरीर को गर्म पानी में भिगोए हुए कपड़े से पोंछ डालें ।

अनुभव से ज्ञात हुआ है कि ऊपर बताए अनुसार उपचार करने से मलेरिया अपेक्षा से भी पहले विदा हो जाता है ।

मलेरिया एक बार नाबूद हो जाने के बाद दुबारा आक्रमण न करे इसके लिए शुद्धिकारक आहार और लोहचुंबकांकित पानी का सेवन करते रहें ।

(५३) मलद्वार के चोरे : देखिए 'फिशर' ।

(५४) मासिक स्त्राव की तकलीफें : मासिक धर्म की तकलीफों में रक्त का कम या अधिक वहना, अनियमितता या पीड़ा का समावेश होता है । इन सभी तकलीफों की प्राकृतिक चिकित्सा लगभग समान है ।

उपाय : (१) शुद्धिकारक आहार का सेवन करें। आहार में कच्ची साग-भाजी और फलों को प्रमुख स्थान दें। मैदे के व्यंजनों, तली हुई चीजों और मिठाइयों का उपयोग न करें।

(२) कब्जियत न रहे इसका ध्यान रखें।

(३) प्रतिदिन कटिस्नान करें। अल्प या पीड़ादायक मासिक स्त्राव में गर्म अथवा गर्म-ठण्डा कटिस्नान उपयोगी है। अतिशय या अनियमित मासिक स्त्राव में ठण्डा कटिस्नान करें।

(४) इन रोगों में जननांगों एवं पेडू को आवृत्त कर लेनेवाली 'I' आकार की भीगी लपेट बहुत अच्छा लाभ करती है।

(५) पेट से सम्बन्धित आसन नियमित रूप से करें।

(६) मासिक धर्म की तकलीफों में लोहचुंबक-चिकित्सा से अच्छा लाभ होता है।

(७) अन्य स्थानीय उपचारों में पेडू पर गर्म सेंक (पीड़ाकारक मासिक में) अथवा पेडू पर भीगी मिट्टी की पट्टी (अत्यधिक मासिक में) का समावेश करें।

(५५) मूत्र-मार्ग की जलन : मूत्रनलिका या मूत्राशय के दाह के कारण यह रोग होता है। मूत्र-त्याग के समय जलन होती है; पेशाब कर चुकने के बाद भी शंका नष्ट नहीं होती; पेडू में दर्द रहता है।

उपाय : (१) एक-दो दिन केवल प्रवाही आहार ग्रहण करें।

(२) खूब पानी पिएँ। लोहचुम्बकांकित पानी अधिक लाभ प्रदान करता है।

(३) प्रतिदिन गर्म पानी का पैरस्नान करें।

(४) दिन में दो-तीन बार ४५-६० मिनट तक पैरों पर भीगे कपड़े की लपेट करें।

(५) यदि पेडू में दर्द हो तो गर्म-ठण्डा सेंक करें।

(५६) यकृत (लिवर) की तकलीफें :

उपाय : (१) एक-दो दिन उपवास करें। इस दौरान नीबू के रसवाला पानी पिएँ। तत्पश्चात् क्रमशः रसाहार और ठोस आहार ग्रहण करें। अपने आहार से चरबीयुक्त खाद्यपदार्थों और मदिरा का त्याग कर दें।

(२) कब्जियत न होने दें। इसके लिए प्रतिदिन ऐनिमा लें।

(३) पेडू पर १०-१५ मिनट तक गर्म-ठण्डा सेंक लेकर भीगे कपड़े की लपेट का प्रयोग करें।

(४) पेडू पर भीगी मिट्टी की पट्टी भी खूब लाभ पहुँचाती है।

(५) लोहचुंबक-चिकित्सा द्वारा भी यकृत की तकलीफों में राहत मिलती है।

(५७) यौन निर्बलता : यौन निर्बलता प्रायः मानसिक होती है।

उपाय : (१) इस प्रकार की तकलीफों में लोहचुंबक-चिकित्सा अच्छा लाभ करती है।

(२) ज्ञानतंतु-तंत्र को उत्तेजना देने के लिए ठण्डे पानी का रीढ़-स्नान या रीढ़ की भीगी लपेट उपयोगी है।

(३) स्थानीय उपायों में मेहन स्नान और T आकार की लपेट का समावेश करें।

(४) यौन शक्ति बढ़ाने के लिए और उसे प्रौढ़ अवस्था तक बनाए रखने के लिए ऐंक्युप्रेशर भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

(५८) रक्तस्राव : रक्तस्राव का उपचार 'घाव' के उपचार के अनुसार ही करें।

(५९) रक्त का ऊँचा दबाव : देखिए 'उच्च रक्तचाप'।

(६०) लहू का बहना : देखिए 'घाव'।

(६१) लिबर की तकलीफें : देखिए 'यकृत की तकलीफें'।

(६२) वजन की अधिकता * : वजन का अतिरेक अत्यधिक आहार एवं अपर्याप्त शरीरश्रम का परिणाम है।

उपाय : (१) वजन कम करने के लिए आहार-नियंत्रण अनिवार्य है। अपने आहार से कार्बोहाइड्रेट्सवाले खाद्य पदार्थ अत्यंत कम कर डालें। फलों और कच्ची या उबाली हुई साग-भाजियों का सेवन यथेष्ट मात्रा में करें।

(२) शरीर की चरबी जलाने के लिए श्रमसाध्य कसरतें करें।

(३) वजन कम करने के लिए लोहचुम्बक-चिकित्सा लाभप्रद सिद्ध हुई है।

(४) खाने की लालसा और भूख की भावना पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए ऐंक्युप्रेशर अनिवार्य है।

(६३) वायु : देखिए 'गैस'।

(६४) सर्दी (या जुकाम) : सर्दी एक सर्वसामान्य रोग है। आधुनिक औषधि-शास्त्र के पास सर्दी के लिए कोई भी संतोषप्रद उपाय नहीं है। सर्दी के लिए एक कहावत प्रचलित है कि, 'किसी भी उपचार के बगैर यदि सर्दी सात दिनों में मिटनेवाली हो तो दवाओं के सेवन से वह आठ दिनों में मिटती है।' किन्तु, प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सर्दी एक-दो दिनों में ही दूर हो जाती है। सर्दी का आक्रमण होने की आशंका हो अर्थात् छींकें आने लगें कि फौरन गर्म पानी पिएँ और गर्म पानी का पैरस्नान करें। ऐसा करने से प्रायः सर्दी का आक्रमण आगे नहीं बढ़ता। (William Bierman M. D., and Sidney Licht, M. D.—Physical Medicine in General Practice, 1952)

उपाय : सर्दी होते ही निम्नलिखित उपचार करें :

(१) एक-दो दिनों के उपवास करें। इस दौरान नीबू के गर्म पानी का ऐनिमा लें।

(२) सर्दी से पीड़ित व्यक्ति ठण्डी चीजें खाएँ-पिएँ नहीं।

* विस्तृत जानकारी के लिए इन्हीं लेखकों की पुस्तक 'चरबी घटाइए; चुस्नी बढ़ाइए' पढ़ें।

(३) सर्दी से शीघ्र आराम पाने के लिए चेहरे पर वाष्प भी ली जा सकती है।

(४) यदि जीर्ण सर्दी हो तो शुद्धिकारक आहार, ठण्डी चीजों का त्याग, कटि-स्नान, वाष्पस्नान, पूरे शरीर की भीगी लपेट आदि उपायों का आयोजन करें।

(६५) शीघ्रस्खलन : इस तकलीफ के लिए 'यौन निर्बलता' के जैसे ही उपचार करें। यौन समागम के समय मन को यथाशक्ति शान्त रखने का प्रयत्न करें।

(६६) श्वेत प्रदर (सफ़ेद पानी का स्राव) : इस व्याधि के लिए 'मासिक धर्म की तकलीफें' जैसे ही उपचार करें।

(६७) साइनस की तकलीफ (साइन्युसाइटिस) : नाक की हड्डी के आसपास कुछ पोले भाग हैं जिन्हें साइनस कहा जाता है।

उपाय : (१) एक-दो दिनों के उपवास करें। इस दौरान ऐनिमा द्वारा आँतों को स्वच्छ रखें।

(२) सीने पर भीगे कपड़े की लपेट से अच्छा परिणाम मिलता है।

(३) चेहरे पर गर्म पानी की भाप लें।

(४) साइनस की तकलीफ में लोहचुंबक-चिकित्सा से भी अच्छा लाभ होता है।

(६८) सूजन :

उपाय : (१) एकाध दिन का उपवास करें।

(२) दो-तीन दिनों तक रोज ऐनिमा लें।

(३) सूजनवाले भाग पर पहले भाप लें, फिर उस पर भीगी मिट्टी की पट्टी रखें। यह क्रिया दिन में तीन-चार बार करें।

(४) पैरों पर सूजन हो तो पैरों को ऊँचाई पर टिकाकर पैरों के पंजों की हलन-चलनवाली कसरत लगभग दस मिनट करें।

(५) इस व्याधि में लोहचुंबक-चिकित्सा से भी अच्छा लाभ होता है।

(६९) स्थूलता : देखिए 'वजन की अधिकता।'

(७०) स्वप्नदोष : स्वप्नदोष का उपचार 'यौन निर्बलता' के उपचार की तरह ही करें।

(७१) हृदयशूल : देखिए 'ऐन्जाइना।'

2360364
009

७. स्थूलता

(१)

श्री हसमुख शाह मेरे पास आए तब बहुत ही घबराए हुए और चिंतित दिखाई दे रहे थे।

वे बहुत स्थूल थे, किंतु उस विषय में न पूछते हुए मैंने उनकी चिंता के विषय में पूछा। उन्होंने बताया कि उनके फॅमिली डॉक्टर के सुझाव के अनुसार उन्होंने दो महीने पहले 'फ्लेबोलिन' (फेनफ्लूरामाइन) नाम की एक चरबी-निवारक दवा लेना प्रारंभ किया था। धीरे-धीरे उनका वजन घटने लगा था। किंतु साथ ही साथ उनकी नींद बहुत ही कम हो गई थी। नींद कम होने का कारण यह दवा हो सकती है ऐसी कोई कल्पना तक उन्होंने नहीं की थी। इसके बाद पिछले चार दिनों में पेट में तीव्र पीड़ा, बार-बार दस्त होना, छाती में घबराहट, गला सूखना, थोड़ी-थोड़ी देर में प्यास लगना आदि तकलीफों से वे परेशान हो गए। उन्होंने अपने फॅमिली डॉक्टर को फोन पर यह हकीकत बताई। डॉक्टर ने उन्हें तुरंत ही दवा बंद कर देने की सूचना दी।

हसमुखभाई खाने-पीने के बहुत शौकीन थे। इसी कारण वजन उतारने के लिए उन्होंने दवाओं का आश्रय लिया था। किंतु अब उन्हें दवाओं की भयंकरता का खयाल आया। वे चिंतित दशा में मेरे पास आए। उनका वजन ९० किलो था। उनकी ऊँचाई के अनुपात में उनका वजन ६० किलो से अधिक नहीं होना चाहिए। इस प्रकार उनका वजन आदर्श वजन से लगभग ३३ प्रतिशत अधिक था। मैंने उन्हें वजन कम करने में रही निरापदता के विषय में धीरे-धीरे समझाया और ८०० से १००० कॅलरीवाले आहार का कार्यक्रम तैयार कर दिया। उनका ब्लडप्रेशर सामान्य होने से मैंने उन्हें प्रतिदिन प्रातःकाल थोड़ा-थोड़ा दौड़ने की भी सलाह दी।

एक महीने के कार्यक्रम के पश्चात् भी उनके वजन में विशेष कमी नहीं आई, इसलिए मैंने उनके आहार में विशेष कटौती की। पंद्रह दिन और बीत गए, किंतु उनके वजन में बिल्कुल कमी नहीं हुई। इससे मुझे आश्चर्य हुआ। हसमुखभाई खाने के शौकीन थे इसलिए उपचार के दौरान भी वे अपना यह शौक अंशतः पूरा कर लेते थे। उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया कि तीव्र भूख और जीभ की लालसा के कारण वे आहार-नियंत्रण को उचित ढंग से कार्यान्वित नहीं कर सके।

मैंने उन्हें इस प्रकार सलाह दी :

(१) शक्कर के स्थान पर सॅकरीन का उपयोग करें।

(२) दोपहर और रात को भोजन से पहले तीन-चार ककड़ियाँ खाएँ। ककड़ी के टुकड़े वे स्वयं ही करें। छोटे-छोटे टुकड़े करते जाएँ और एक-एक टुकड़ा मुँह में डालते जाएँ। प्रत्येक टुकड़े को दस-बारह बार चबाएँ। इस प्रकार कम-से-कम दस मिनट का समय उसमें लगाएँ। इसके बाद भोजन करते समय प्रत्येक ग्रास को उसी प्रकार दस-बारह बार चबाएँ। तीन-चार ग्रास खाने के बाद थोड़ा पानी पिएँ।

(३) दो जून के भोजनों के बीच के समय में यदि भूख बहुत सताए तो ककड़ी, गाजर, मूली और टमाटर जैसे पदार्थ ही खाएँ ।

(४) दिनभर में खाए हुए आहार को एक कागज पर नोट कर लें ।

(५) बड़े सवेरे और रात को भोजन के एक घण्टे बाद डेढ़-दो मील पैदल चलें ।

(६) हर तीसरे दिन वजन कराएँ ।

इस परामर्श के अनुसार ही आचरण करने के लिए मैंने उन्हें कठोर सूचना दी । अन्ततः यह प्रयोग सफल हुआ । हसमुखभाई का वजन शीघ्रता से कम होने लगा । जैसे-जैसे उनका वजन कम होता गया, वैसे-वैसे उनके उत्साह और सावधानी में वृद्धि होने लगी । बड़े सवेरे पैदल टहलने की क्रिया में भी वे थोड़ी-थोड़ी वृद्धि करते गये । चार महीने के अन्त में उनका वजन ६५ किलो के लगभग हो गया ।

(२)

पचास वर्ष की आयु के श्री प्रवीणचन्द्र शाह चार्टर्ड ऐंकाउण्टण्ट थे । बम्बई के प्रतिष्ठित फोर्ट इलाके में उनका ऑफिस था ।

एक बार रक्त-मूत्र के सामान्य परीक्षण के समय अचानक ही उन्हें डायबिटीस का रोग होने का निदान हुआ । प्रवीणभाई भारी चिन्ता में पड़ गए । डायबिटीस कितनी गंभीर बीमारी है इसे वे जानते थे । उनके परिवार के कई सदस्य पहले इस रोग का शिकार हो चुके थे ।

डायबिटीस के औषधीय उपचार के अलावा प्रवीणभाई को वजन कम करने की भी सलाह दी गई । वजन कम करने के उत्साह के अतिरेक में श्री प्रवीणचन्द्र ने अपने खानपान को लगभग भुखमरी के जैसा ही बना डाला । अत्यन्त कम आहार और डायबिटीस की दवाओं का सेवन करने से तीन ही दिन में उन्हें सिर का भारीपन, चक्कर आना, अशक्ति का अनुभव होना आदि तकलीफें शुरू हो गईं । एक दिन चक्कर आने से वे अचानक ही ऑफिस में लुढ़क पड़े । भाग्यवशात् उन्हें कोई चोट नहीं आई ।

किन्तु इस घटना के बाद प्रवीणभाई घबरा गए और तुरन्त मेरे पास आए । वजन कम करना अनिवार्य था यह बात तो मैं भी समझ रहा था । मैंने उन्हें बताया कि वजन कम करने की उचित पद्धति अपनानी चाहिए । आहार की मात्रा बढ़ाने तथा अमुक कसरतें अपनाने की मैंने उन्हें सलाह दी । यदि संभव हो तो कसरतों के लिए अपने केन्द्र में ही आने की भी मैंने उन्हें सलाह दी । इसके लिए उन्होंने स्वीकृति भी दी ।

इस प्रकार आहार के योग्य नियमन और कसरतों के परिणामस्वरूप उनके वजन को किसी भी तकलीफ के बिना कम करने में सफलता प्राप्त हुई ।

८. एँसिडिटी

कुछ समय पहले एक नौजवान उद्योगपति से मुलाकात हो गई। तीव्र औद्योगिक स्पर्धा, आर्थिक अभाव और कर्मचारियों की समस्याओं के कारण यह उद्योगपति एक जबर्दस्त मानसिक तनाव से परेशान हो गया था। तदुपरांत अनुचित और अनियमित खानपान के कारण वह जठर के उपदंश का शिकार हो गया था।

प्रतिअम्ल गोलियों (antacids) का सेवन और खान-पान में परिवर्तन करने से उन्हें साधारण आराम मिल जाता; किन्तु वह अस्थायी सिद्ध होता। कभी-कभी तो पेट की पीड़ा और जलन इतना उग्र रूप धारण करतीं कि वे रात को सो भी नहीं सकते थे। दस्त की जाँच में रक्त की उपस्थिति भी मालूम हुई थी। संक्षेप में, वे व्यग्र और पस्त दिखाई देते थे।

इस प्रकार की तकलीफ के लिए कोई उपाय बताने की उन्होंने मुझसे प्रार्थना की।

मैंने उन्हें सादा भोजन ग्रहण करने की सलाह दी। साथ ही दिन में चार-पाँच बार अल्प मात्रा में पत्ता गोभी का कच्चा रस पीने की सलाह दी। इस प्रकार उन्हें दिनभर में आधा-पौना लिटर गोभी के रस का सेवन करना था। तदुपरांत मैंने उन्हें बीच-बीच में पपीते का रस और अल्प मात्रा में आलू का कच्चा रस पीने की भी सूचना दी। मानसिक तनाव के निवारण संबंधी उपायों के विषय में भी मैंने उन्हें कुछ सूचनाएँ दीं।

एक सप्ताह के बाद उनका टेलिफोन आया। बातचीत से पता चला कि वे काफी राहत का अनुभव कर रहे थे। खाने-पीने के शौकीन इस नौजवान के लिए गोभी और आलू के रस का स्वाद अत्यन्त अरुचिकर था। किन्तु इससे उन्हें सुधार मालूम हुआ अतः वे उत्साहपूर्वक रसपान करने लगे। इसके बाद तो उन्हें इन रसों का स्वाद भी अच्छा लगने लगा।

कुछ दिनों के बाद वे स्वयं मुझसे मिलने आए। उनकी सारी तकलीफें लगभग दूर हो चुकी थीं। रसाहार के चमत्कार से वे इतने प्रभावित हुए थे कि घर के अन्य व्यक्तियों को भी रसाहार अपनाने का आग्रह करने लगे थे।

९. एँपेंडिक्स की सूजन

शीला को एक वर्ष से अक्सर पेट में दर्द उठा करता था। उल्टी-उबकाई-सी भी महसूस होती थी। औषधीय उपचारों से थोड़ा-बहुत लाभ होता था, किन्तु कुछ समय के बाद फिर वही तकलीफ शुरू हो जाती। अन्त में फेमिली डॉक्टर ने एँपेंडिक्स की सूजन की शंका प्रकट की और सर्जन को दिखाने की सलाह दी। एक्स-रे लिया गया। सर्जन डॉक्टर ने तात्कालिक ऑपरेशन करवाने की सलाह दी। उन्होंने यह भी बताया कि इसके अलावा अन्य कोई इलाज नहीं है। उनका सिफारिशी पत्र हॉस्पिटल में दिखाकर ऑपरेशन की तारीख ली गई। ठीक पन्द्रह दिनों के बाद ऑपरेशन होने वाला था।

दो-तीन दिनों के बाद शीला के पिताजी को अचानक ही अपने गाँव का कार्यक्रम बनाना पड़ा। वहाँ जाने से पहले उसके पिता यह कहकर गए थे कि ऑपरेशन की तारीख तक यदि वे गाँव से न लौट सकें तो कोई अन्य तारीख निश्चित कर ली जाए।

पिता की अनुपस्थिति में फिर शीला के पेट में जोरदार दर्द उठा। तात्कालिक राहत प्राप्त करने और नया उपचार कराने के आशय से वह मेरे पास आई।

एपेंडिक्स शरीर के लिए आवश्यक नहीं है और उसका ऑपरेशन कराने में तनिक भी जोखिम नहीं है यह कहते हुए मैंने केस हाथ में लेने की अनिच्छा प्रकट की।

उसके साथ आए हुए सज्जन ने कहा कि, 'हम ऑपरेशन ही करानेवाले हैं; किन्तु अभी कुछ दिन शेष हैं और पेट का दर्द जारी है, अतः दर्द में कुछ आराम मिल जाए इसके लिए यदि कोई उपचार हो सके तो अच्छा है।'

मैंने तत्काल उपवास शुरू करने की सलाह दी। दिन में चार-पाँच बार गर्म पानी पीने को कहा। साथ ही अन्य उपचारों में पेट पर गर्म-ठण्डा सेंक करने और मिट्टी रखने की क्रिया भी शुरू करवाई। कुछ आराम हुआ। चौथे दिन से गर्म-ठण्डा कटिस्तान भी चम्लू करवाया। सप्ताहभर में पेट का दर्द मिट गया।

आठ दिनों के बाद उपवास छुड़ाकर उसे रसाहार पर रखा गया।

तब तक उसके पिता गाँव से लौट आए थे। शीला को दर्द में इतना अधिक आराम हो चुका था कि सभी इस द्विधा का अनुभव करने लगे कि ऑपरेशन कराया जाए या नहीं; फिर भी परिवार के लोगों ने चर्चा के अन्त में उक्त सर्जन से पुनः मिलने का निर्णय किया। लक्षण शान्त हो चुके थे। पुनश्च, पेट का निश्चित भाग दवाने से दर्द भी नहीं होता था। यह देखकर सर्जन ने दुबारा ऐक्स-रे लिया और अन्य जाँच भी की। जाँच की रिपोर्ट इतनी अच्छी आई कि उस सर्जन ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि अब तो ऑपरेशन की कोई आवश्यकता नहीं।

१०. मलेरिया

वम्बई निवासी श्री देवकीप्रसाद पाण्डे चाय के व्यापारी थे। वे लगभग एक वर्ष पूर्व व्यावसायिक प्रयोजन से आसाम गए थे। वे जहाँ ठहरे थे उस बँगले के आस-पास घनी झाड़ी थी। पास में ही एक छोटी तलैया थी। वहाँ के खुशनुमा वातावरण एवं प्राकृतिक सौन्दर्य ने उन्हें मुग्ध कर दिया; किन्तु वहाँ मच्छरों का भारी आतंक था। अतः वे रात को सो नहीं पाते थे। प्रातःकाल उठने पर उन्हें थकान और सुस्ती का अनुभव होता। वे वहाँ लगभग एक सप्ताह रुके और प्रतिदिन उन्हें यही अनुभव होता रहा। वहीं वे ज्वर के शिकार हो गए। गोलियों के सेवन से ज्वर उतर गया तो फौरन ही वे वम्बई लौट आए। किन्तु वम्बई में फिर उन्हें ज्वर आने लगा।

डॉक्टर ने मलेरिया का निदान किया और दवाएँ लिख दीं। श्री पाण्डेजी कामकाज में इतने व्यस्त रहते कि उचित रूप में दवाओं का सेवन नहीं कर पाते थे। कुछ दिनों

बाद ज्वर ने पलटकर फिर आक्रमण कर दिया। इस बार ज्वर के लक्षण अधिक उग्र थे। खूब ठण्ड लगकर ज्वर चढ़ता। ज्वर के साथ सख्त सिरदर्द भी उठता। कभी-कभी उल्टियाँ भी होतीं। पुनः प्रचलित दवाएँ शुरू की गईं। इससे आक्रमणों की उग्रता कुछ कम हुई। किन्तु इसके बाद ज्वर ने अँतरे का रूप धारण कर लिया।

पाण्डेजी ने अनेक डॉक्टर बदले। वैद्यों और हकीमों की दवाएँ भी आजमाईं। कभी किसी दवा से थोड़े दिन ठीक रहता, किन्तु बाद में फिर वही क्रम शुरू हो जाता।

एक दिन उनके एक परिचित सज्जन उन्हें मेरे पास ले आए। उनका शरीर निर्बल हो चुका था। चेहरा फीका पड़ गया था। आँखें बाहर को निकल आई थीं। रह-रहकर उन्हें खाँसी भी आती थी। जाँच करने पर मालूम हुआ कि उनकी प्लीहा (तिल्ली) काफी बढ़ गई थी। वह भाग नरम भी हो गया था।

परिस्थिति गंभीर मालूम होने पर मैंने उन्हें किसी हॉस्पिटल में दाखिल होने और परंपरागत इलाज करवाने की सलाह दी; किन्तु देवकीप्रसादजी दवाओं से ऊब चुके थे। वे फिर से दवाएँ आजमाने को तैयार नहीं थे। अब वे प्राकृतिक चिकित्सा के लिए आग्रह कर रहे थे।

मैंने उन्हें उपवास की सलाह दी। शुरुआत में पूर्वतैयारी के रूप में उन्हें पाँच दिन केवल प्रवाही आहार पर रखा गया। इस दौरान उन्हें फल और साग-भाजियों के कच्चे रस एवं भाजियों के सूप दिये गए। अन्य उपचारों में हर तीसरे दिन ऐनिमा एवं वाष्प-स्नान तथा पेड़ पर मिट्टी रखने का प्रयोग किया जाता। इतने उपचारों से उन्हें सिरदर्द में उल्लेखनीय आराम मिल गया।

छठे दिन से वास्तविक उपवास का प्रारंभ हुआ। दिन में चार-पाँच बार गर्म पानी और बीच में प्यास महसूस होने पर थोड़ा-थोड़ा ठण्डा पानी पीने की सलाह दी। उनकी इच्छा के अनुसार दिन में दो-एक बार पानी में आधे नींबू या दो चम्मच मोसंबी या संतरे का रस मिलाने की इजाजत दे दी।

केवल चार ही दिनों के बाद ज्वर का जोर कम हो गया। खाँसी तो अब क्वचित् ही आती। उन्हें स्वयं भी अब पहले की अपेक्षा अधिक स्फूर्ति का अनुभव होने लगता था।

उपवास के आठवें दिन के बाद ज्वर चढ़ना बन्द हो गया। वजन में पाँच किलो की कमी होने के बावजूद अभी थोड़े दिन और उपवास जारी रखने की मैंने उन्हें सलाह दी।

बारहवें दिन प्रातःकाल उन्होंने घबराहट, उबकाई और चक्कर आने की शिकायत की। साँस तेज गति से चल रही थी। नाड़ी अनियमित थी। इसके बाद उन्हें एक जबर्दस्त कै हुई जिसमें भारी मात्रा में खराबियाँ निकल गईं। इस परिस्थिति में उपवास की पूर्णाहुति कर देना उचित लगा। मुझे पिछले चार दिनों में ज्वर फिर दिखाई नहीं दिया था। मैंने उन्हें पुनः फलों और साग-भाजियों के रस पर निर्भर रखा। रात को सोने से पहले उनके सारे उपद्रव शान्त हो गए थे। साँस सामान्य हो गई थी और हृदय की धड़कनें भी नियमित हो गई थीं।

उन्हें दो दिन रसाहार पर रखने के बाद क्रमशः ठोस आहार देने की शुरुआत की गई। क्रमशः आहार के प्रकार एवं मात्रा में परिवर्तन हुए। आठवें दिन उन्हें सामान्य आहार तक लाया गया। सतर्कता की दृष्टि से मैंने उन्हें सादा आहार लेते रहने और सप्ताह में एक उपवास करते रहने की सलाह दी।

दो माह के पश्चात् एक बार जब अचानक ही उक्त सज्जन से मेरी मुलाकात हो गई। वे बहुत ही खुशमिजाज लग रहे थे। मुझसे हाथ मिलाते हुए उन्होंने बताया कि, “बुखार दुबारा फिर नहीं आया। अब तो मैं एकदम स्वस्थ हूँ।”

११. ज्वर

कुछ साल पहले २३-२४ वर्ष का एक युवक मेरे पास आया। उसे हर दस-बारह दिनों की अवधि में ज्वर हो आता था। यह ज्वर १०२-१०३ तक पहुँच जाता और लगभग तीन दिन तक बना रहता। दवाओं से उतर अवश्य जाता था, किन्तु समूल नष्ट नहीं होता था। यह स्थिति दो-ढाई वर्षों से चली आ रही थी। लगातार जहरीली दवाओं के सेवन से उसका शरीर बिल्कुल निर्बल हो चुका था।

डॉक्टरों की सूचना से उसने विविध प्रकार की दवाएँ और इंजेक्शन लिये, एक्स-रे निकलवाए, रक्त-थूक आदि की जाँच करवाई; किन्तु उसकी तकलीफ़ दूर नहीं हुई। किसी डॉक्टर की सूचनानुसार उसने टॉन्सिल का ऑपरेशन भी कराया; किन्तु बुखार नहीं गया। इस ज्वर का वास्तविक कारण किसी को मालूम नहीं हो पाता था।

रोग के कारण अगम्य होते से यह केस लेने से मैंने इन्कार कर दिया! जब रोग का निदान ही न हो पाता हो तो उसका इलाज कैसे किया जाए? किन्तु उस युवक का आग्रह जारी रहा।

अन्त में मैंने उसे दो दिनों के जल-उपवास करने के बाद रसाहार पर निर्भर रहने की सूचना दी। साथ ही दो-तीन दिनों तक प्रतिदिन ऐनिमा लेने के लिए भी कहा। तीसरे दिन से खाली पेट आधा कप कड़वे नीम का रस, दिनमें तीन बार एक-एक गिलास मोसम्बी-संतरे का किचित् गर्म किया हुआ रस तथा दो बार उबाली हुई भाजियों का गर्म सूप पीने के लिए कहा। साथ ही यह सूचना भी दी कि यदि फिर से ज्वर आए तो इतने दिन जल-उपवास करें। ज्वर उतरने के बाद पुनः रसाहार पर आ जाएँ।

उसके आश्चर्य के बीच इस बार लगभग बीस दिनों के बाद उसे ज्वर आया; किन्तु अन्तिम अवशेष की तरह ही। ज्वर भी १००° फे. के लगभग ही चढ़ा और सो भी दूसरे दिन उतर गया। लगभग छह महीनों के बाद जब वह मुझसे मिलने आया, लाल सुर्ख दिखाई दे रहा था। मैंने पूछा, “कहिए, आजकल कैसा है स्वास्थ्य तुम्हारा?” “बहुत अच्छा। अब ज्वर नहीं आता। मेरा फीका और जर्जर शरीर देखकर सब यही मानने लगे थे कि मैं किसी भयंकर रोग का शिकार हो गया हूँ। इस कारण कोई मुझसे अपनी

लड़की की शादी करने को तैयार नहीं होता था । ” और इसके बाद मुझे कुमकुम-पत्रिका देते हुए उसने कहा, “अब यह प्रश्न हल हो चुका है । मेरे विवाह के अवसर पर अवश्य पधारिएगा । ”

१२. कैंसर

अमेरिका के कैंसास शहर के निवासी मि. ज्यॉर्ज स्मिथ जब ५१ वर्ष के थे उस समय उनके बाएँ जबड़े के नीचे, गले पर एक गाँठ उभर आई । यह गाँठ धीरे-धीरे बड़ी होती गई । उसमें दर्द भी होने लगा । उनके फ़ेमिली डॉक्टर ने अनुमान किया कि ज्यॉर्ज को श्वसनतंत्र का कोई संक्रमण हो गया है जिससे गले की लिम्फ ग्रन्थियाँ बड़ी हो गई हैं । किन्तु एण्टिबायोटिक दवाओं से भी गाँठ के आकार या पीड़ा में कोई सुधार नहीं हुआ । अतः एक बड़े डॉक्टर की सलाह ली गई । उन्हें भी इस केस में कोई गंभीरता मालूम नहीं हुई, फिर भी सन्देह-निवारण के लिए उसने रक्तपरीक्षण तथा गाँठ की बायोप्सी कराने का परामर्श दिया । इस परीक्षण के आधार पर उक्त गाँठ कैंसर की है ऐसा निदान किया गया ।

फिर तो विविध प्रकार के जलद और कातिल उपचारों का सिलसिला शुरू हुआ । पहले ज्यॉर्ज को कुछ दवाएँ दी गईं ; किन्तु गाँठ बढ़ती ही गई । थोड़े दिनों के बाद किरणोत्सर्ग (radiotherapy) का उपचार शुरू हुआ । इस उपचार से तीन ही दिनों में ज्यॉर्ज के बाल झड़ने लगे और चेहरे की त्वचा काली पड़ने लगी । अब गाँठ इतनी बड़ी हो चुकी थी कि उन्हें बोलने और आहार गले के नीचे उतारने में भी तकलीफ होने लगी । कैंसर धीरे-धीरे फैलने लगा था । नीचे के जबड़े और बाएँ गाल में अब कैंसर की उपस्थिति साफ दिखाई देने लगी थी । अन्त में डॉक्टरों ने इस गाँठ को ऑपरेशन द्वारा निकाल डालने का निर्णय किया । उपचारों की इस भूल-भुलैया में बेचारे ज्यॉर्ज तो केवल एक निष्क्रिय प्रेक्षक ही बन कर रह गए थे । उन्होंने अधिक विचार किये बिना ऑपरेशन के लिए हामी भर दी । फ़लतः ऑपरेशन के द्वारा उनके गले की गाँठ और जबड़े की हड्डी का कुछ हिस्सा काटकर दूर कर दिया गया । अब मुँह से आहार लेना अशक्य हो जाने से पोषण के लिए एक रबर की नली उनके गले से होकर पेट के भीतर उतारी गई । पन्द्रह दिनों के बाद उन्हें बताया गया कि उनका कैंसर मिट गया है और वे अब सामान्य जीवन जिएँ । ऑपरेशन के घाव मरहम-पट्टी करने से थोड़े ही दिनों में भर जाएँगे । तत्पश्चात् हॉस्पिटल से छुट्टी दे दी गई ।

किन्तु ऑपरेशन के घाव भर नहीं सके । बाद में तो घावों में मवाद भी बहने लगा । फिर भी इस उम्मीद पर कि घाव अवश्य भर जाएँगे उन्होंने चेहरे की विकृतियों को दूर करने के लिए एक अग्रगण्य प्लास्टिक सर्जन का सम्पर्क स्थापित किया । सर्जन ने ऑपरेशन के लिए सम्मति दे दी । सामान्य प्रणाली के अनुसार मल-मूत्र की जाँच की गई तथा सीने का एक्स-रे लिया गया । इस जाँच के द्वारा यह आघातजनक तथ्य मालूम हुआ कि कैंसर फेफड़ों में भी फैल चुका है । अतः चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी कराने का

अब कोई प्रश्न ही नहीं रहा। ज्यॉर्ज के जीवन के लिए अब डॉक्टरों को तनिक भी आशा शेष नहीं रह गई थी; फिर भी किसी अज्ञात कारणवशात् वे जीवित रहे। मौन रहकर और खबर की नली से आहार लेते हुए उन्होंने चौदह वर्ष यों ही बिता दिए। यदा-कदा उन्हें आत्महत्या करके जीवन का अन्त कर डालने का भी विचार आता; किन्तु फिर पत्नी का खयाल आते ही वे अपने मन को रोक लेते।

चारों ओर से हताश इस रोगी ने एक दिन अचानक ही डॉ. विग्मोर और गेहूँ के जवारों के विषय में सुना। 'डूबते को तिनके का सहारा' इस कहावत के अनुसार ज्यॉर्ज ने जवारों का उपचार आजमाने का निश्चय किया। वे डॉक्टर विग्मोर से मिले। उस समय उनका विकृत चेहरा बहुत ही भयानक लग रहा था। डॉ. विग्मोर ने ज्यॉर्ज का इतिहास सुना। उनकी शारीरिक जाँच की। ऐसा केस हाथ में लिया जाए या नहीं इस द्विधा का डॉ. विग्मोर ने अनुभव किया। अन्त में ज्यॉर्ज के अत्यन्त आग्रह के कारण डॉ. विग्मोर उन्हें हॉस्पिटल में भर्ती करने के लिए सम्मत हुई। दूसरे दिन से ही जवारों का रस देने की शुरुआत हुई। पहले दिन तीन-तीन घण्टे के अन्तर पर चार बार एक-एक कप जवारे का रस दिया गया। किन्तु दूसरे दिन ज्यॉर्ज को दस्त और सर्दी की शिकायत हो गई; साथ ही कुछ ज्वर भी चढ़ गया। डॉ. विग्मोर को घबराहट हुई; किन्तु ज्यॉर्ज ने तो निश्चय कर लिया था कि अब तो इस पार या उस पार ! उनकी हिम्मत और निश्चय देखकर डॉ. विग्मोर ने उपचार चालू रखा। दूसरे दिन जवारों का रस पानी मिलाकर दिया गया।

तीसरे दिन भी पानी मिलाया हुआ पतला रस ही दिया गया। तीसरे दिन शाम को सर्दी-दस्त बन्द हो गए और ज्वर भी उतर गया। साथ ही सुधार का प्रथम चिह्न भी दिखाई दिया। कैंसरवाले हिस्से से उठनेवाली दुर्गन्ध बन्द हो गई थी। अब पुनः उन्हें पानीरहित विशुद्ध रस देने की शुरुआत की गई।

आठ दिनों के बाद गले और चेहरे के घावों पर जवारों के रस में भिगोई हुई कपड़े की पट्टी बाँधना शुरू किया। इससे पन्द्रह दिनों में ही घाव से मवाद बहना बन्द हो गया।

तीसरे सप्ताह के अन्त में काफी सुधार मालूम होने लगा। अब ज्यॉर्ज थोड़ी-थोड़ी बातचीत भी करने लगे। इस प्रकार निराशा के बादलों के बीच आशा का सूर्य झाँकने लगा था।

चौथे सप्ताह के अन्त में असंभव लगने वाली एक घटना घटित हुई। जबड़े और गले के चौदह वर्ष पुराने घाव धीरे-धीरे भरने लगे थे। कुछ समय के पश्चात् तो वे घाव पूर्णतः भर गए। अब ज्यॉर्ज मुँह से आहार ले सकते थे।

इस समय के दौरान ज्यॉर्ज के वजन में भी कुछ वृद्धि हुई थी। सात सप्ताहों के अन्त में उनका वजन सात किलो बढ़ गया। अब ज्यॉर्ज को हॉस्पिटल में रहने की आवश्यकता नहीं थी। अतः डॉ. विग्मोर के प्रति आभार व्यक्त करके वे वहाँ से विदा हुए।

घर लौटने के कुछ दिनों के बाद उन्होंने आधुनिक पद्धतियों की सहायता से संपूर्ण शारीरिक जाँच करवाई। इस जाँच में कैंसर के कोष दिखाई नहीं दिये। डॉक्टर आश्चर्य-चकित हो गए। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं होता था; किन्तु वास्तविकता का स्वीकार किये बिना छुटकारा भी तो नहीं था। ज्यॉर्ज ने ये समाचार डॉ. विग्मोर को फोन पर सुनाए तो उन्हें भी आश्चर्य हुआ।

कुछ महीनों के बाद जब ज्यॉर्ज डॉ. विग्मोर से दुबारा मिले तो उन्हें पहचानना भी मुश्किल हो गया था। चेहरे की विकृतियों को ज्यॉर्ज ने प्लास्टिक सर्जरी के द्वारा दूर करवा लिया था। उन्होंने डॉ. विग्मोर को बताया कि इस समय वे पेंन्सिलवेनिया में स्थित अपने पुराने मकान की मरम्मत करवा रहे हैं और भावी जीवन के लिए योजनाएँ बना रहे हैं। इस प्रकार उनके भीतर अभी कई वर्षों तक जीवित रहने की श्रद्धा प्रकट हो चुकी थी।



मंगल कामनाएँ व्यक्त करने का श्रेष्ठ तरीका

यह पुस्तक उपहार-स्वरूप दीजिए

पृथ्वी की संजीवनी

गेहूँ के जवारे

लेखक

डॉ. ध. रा. गाला, डॉ. धीरेन गाला, डॉ. संजय गाला

अनुवादक

कृ. अर्चना जैन

आप से हमारा सविनय अनुरोध है कि : जन्मदिन, विवाह या अन्य किसी शुभ प्रसंग पर आप अपने इष्ट मित्रों, स्नेहीजनों तथा रिश्तेदारों को जो भी चीज-वस्तुएँ उपहार-स्वरूप देते हैं वे सभी प्रायः नाशवान् होती हैं। परंतु प्रस्तुत पुस्तक उपहार-स्वरूप देकर मानो आप अपने आत्मीय जनों को दीर्घायुष्य ही उपहार में देते हैं। इस पुस्तक का उपहार निस्सन्देह आपकी शुभेच्छाओं को सार्थक एवं साकार करेगा।

हृदयरोग को रोकिए, आयुष्य बढ़ाइए

जीवन के लिए हृदय सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है।
यदि उसका धड़कना थोड़ी देर के लिए भी रुक जाए तो मनुष्य
की मृत्यु हो जाती है।

फिर भी आप अपने हृदय के बारे में कितना जानते हैं? क्या आप जानते हैं कि—

- हृदय-रोग का प्रमाण आश्चर्यजनक गति से बढ़ रहा है?
- भारत के शहरों में होनेवाली कुल मौतों की ३३ प्रतिशत (!) मौतें हृदयरोग के कारण होती हैं?
- हृदयरोग के आक्रमण का शिकार बने हुए लोगों में से आधे तो अस्पताल पहुँचने के पहले ही परलोक सिंघार जाते हैं?
- अज्ञान के कारण हृदयरोग का बीजारोपण बचपन में ही हो जाता है?

वास्तव में हृदयरोग का आक्रमण होने तक बहुत लंबा हो चुका होता है। हृदय की मांसपेशियाँ विशिष्ट प्रकार की होती हैं। हृदय-रोग के आक्रमण के कारण ही मांसपेशियाँ निर्जीव हो जाती हैं; उनके स्थान पर वैसी ही नई मांसपेशियों का नवसर्जन संभव नहीं है। इसीलिए, हृदय के मामले में तो उसकी तकलीफों को रोकना ही एकमात्र उपाय है। उचित कदम उठाने से हृदयरोग के आक्रमण को रोका जा सकता है।

इस पुस्तक में आप इस प्रकार के सभी उपायों की विस्तृत और अधिकृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस पुस्तक की विशिष्टताएँ :

- * हृदय और हृदयरोग के विषय में नवीन, वैज्ञानिक और सचित्र जानकारी।
- * हृदयरोग के आक्रमण के कारणों की तलस्पर्शी छानबीन।
- * हृदयरोग के आक्रमण के लक्षणों और बाद में किये जानेवाले उपचार की चर्चा।
- * हृदय-गति अचानक रुक जाने पर एक सामान्य मनुष्य को तात्कालिक जो उपाय करने चाहिए उनकी विस्तृत जानकारी। इस जानकारी के आधार पर आप संकट के समय किसी व्यक्ति को जीवन-दान दे सकेंगे।
- * हृदय के लिए 'कोरोनरी बायपास सर्जरी' और 'ट्रांसक्यूमिनल कोरोनरी एंजियोप्लास्टिक' के लाभालाभ की विशद छानबीन।

संक्षेप में, अपने और अपने प्रियजनों के स्वास्थ्य के लिए संचित
प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक अद्वितीय और अनिवार्य पुस्तक

नवनीत पब्लिकेशन्स (इं) लि.

चरबी घटाइए, चुस्ती बढ़ाइए

(From Fat to Fit)

इस पुस्तक को पढ़कर आपको कुछ भी खोना नहीं है—सिवा कद्रूप चरबी के क्या आप जानते हैं कि यदि वजन बहुत अधिक होता है तो आदमी की केवल शक्ल ही बेढंगी नहीं लगती; परंतु—

- अच्छी नोकरी या योग्य जीवन-साथी पाने के अवसर भी नष्ट हो जाते हैं,
- अनेक गंभीर रोग होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं,
- पित्ताशय की व्याधियों के कारण होनेवाली मौतों के प्रमाण में वृद्धि हो जाती है,
- गर्भधारण नहीं हो सकता,
- डायबिटीस होने की संभावना बढ़ जाती है।
- उच्च रक्तचाप और हृदयरोग के आक्रमण की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं,
- कैंसर अधिक प्रमाण में होता है।
- आयु कम हो जाती है।

अतिरिक्त चरबी को कम करना केवल सुन्दरता के लिए नहीं, अपितु तन्दुरुस्ती के लिए भी अनिवार्य है। यह पुस्तक आपको चरबी घटाने का वैज्ञानिक और सचोट मार्ग बताएगी।

इस पुस्तक की विशेषताएँ :

- * अभिनव, वैज्ञानिक जानकारी
- * चरबी बढ़ने के कारणों की विस्तृत छानबीन
- * चरबी-निवारण के लिए दैनिक आहार-योजना
- * शरीर को सुगठित और सुडौल बनाने के लिए सचित्र कसरतें
- * कदम-कदम पर व्यावहारिक सुझाव
- * सुन्दर, सुघड़ और क्षतिरहित मुद्रण

यह पुस्तक आपको केवल चरबी घटाना ही नहीं, अपितु वजन की उस कमी को बनाए रखना भी सिखाएगी!

यदि आपके पास यह पुस्तक हो, तो चरबी-नियंत्रण के लिए अन्य कोई पुस्तक खरीदने की आवश्यकता नहीं है।

नवनीत पब्लिकेशन्स (इं) लि.

नेत्ररक्षा

क्या आप अपनी आँखों के स्वास्थ्य के लिए चिंतित हैं? आँखों को निरोगी रखने के लिए सक्रिय कदम उठाते हैं या फिर आपने अपनी आँखों का आरोग्य भाग्य के भरोसे छोड़ दिया है?

प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व, उसका व्यवसाय, उसकी जीवन-शैली यहाँ तक कि उसका संपूर्ण जीवन उसकी आँखों की कार्यक्षमता पर अवलंबित है। इसीलिए आँखों की देख-भाल करना प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है।

पिछले बीस वर्षों से डॉ. गाला नेत्रोपचार के क्षेत्र में कार्यरत हैं। आँखों की विशिष्ट प्रकार की कसरतों तथा अन्य उपायों द्वारा दृष्टि-सुधार का कार्य वे सफलतापूर्वक कर रहे हैं। आँखों को सुदृढ़ बनाने के लिए उनका चार सप्ताहों का कार्यक्रम अत्यंत लोकप्रिय हुआ है। हजारों व्यक्तियों ने इस कार्यक्रम का लाभ लिया है। अपनी सुदीर्घ कारकिर्दी का निचोड़ डॉ. गालाने इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

बचपन से ही आँखों की देखभाल कैसे करें, क्या खाएँ—क्या न खाएँ, आँखों का उपयोग किस प्रकार करें, आँखों को आराम किस प्रकार दें, नेत्ररक्षा के लिए कैसी आदत डालें या कैसी कसरतें करें इत्यादि उपयोगी बातों की चर्चा इस पुस्तक में की गई है।

इस पुस्तक की विशिष्टताएँ :

- * उम्रभर आँखों को स्वस्थ और सुदृढ़ रखने के उपायों के विषय में वैज्ञानिक और सचित्र जानकारी
- * पृष्ठ-पृष्ठ पर व्यावहारिक सुझाव
- * कॉन्टेक्ट लेंस तथा चश्मे के नंबर घटाने के लिए आवश्यक ऑपरेशन के विषय में तलस्पर्शी जानकारी
- * दूर और नजदीक की दृष्टि-शक्ति परखने के लिए पूर्ण कद के नक्शे

जीवनभर आँखों को निरोगी रखने के इच्छुक लोगों के लिए यह पुस्तक अनिवार्य है। इस पुस्तक में सूचित प्रयोगों-उपायों की सहायता से माता-पिता अपने बच्चों की आँखों के आरोग्य और सौंदर्य में अभिवृद्धि करें। — **दैनिक लोकसत्ता**



जन सामान्य के लिए इंस्टीट्यूट ऑफ ऑल्टरनेटिव मेडिसिन द्वारा संयोजित :

1. सुई-रहित ऍक्युपंचर (ऍक्युप्रेशर) डिप्लोमा कोर्स
2. लौह-चुंबकीय चिकित्सा (मैग्नेट थैरेपी) डिप्लोमा कोर्स

ऍक्युप्रेशर एवं ऍक्युपंचर, दो ऐसी प्राचीन चिकित्सा पद्धतियाँ हैं, जिनके द्वारा शरीर की त्वचा पर स्थित निश्चित बिंदुओं को उत्तेजित करके आंतरिक अवयवों पर प्रभाव डाला जाता है। तरह तरह की बीमारियों के उपचार में जहाँ अन्य सभी पारंपरिक चिकित्सा-पद्धतियाँ निष्फल हो गयी हों, वहाँ इस चिकित्सा पद्धति को कामयाबी हासिल हुई है। इन दोनों पद्धतियों का विश्व स्तर पर क्लीनिकल परीक्षण किया जा चुका है, जिसमें इन्हें अन्य चिकित्सा पद्धतियों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली पाया गया। सन १९७९ में चीन की राजधानी पेकिंग में आयोजित परिषद में विश्व आरोग्य संस्था (W. H. O.) के प्रतिनिधियों ने भी अनेक रोगों में इस पद्धति को आजमाने की सिफारिश की थी।

औषधियों का उपयोग न करनेवाली चिकित्सा पद्धतियों में लौह-चुम्बकीय चिकित्सा-पद्धति का विशिष्ट स्थान है। विश्व की विभिन्न प्रयोगशालाओं में वनस्पतियों, पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों पर लौह-चुम्बकों की रोगनिवारक क्षमता की जाँच-परख के लिए जो भी प्रयोग किये गये हैं, उनके अत्यंत आशाप्रद परिणाम सामने आये हैं। रूस, अमरीका, जर्मनी, फ्रांस तथा जापान जैसे देशों में लौह-चुम्बकीय चिकित्सा काफी लोकप्रिय है। हमारे यहाँ भी इसके प्रचार-प्रसार में वृद्धि होती जा रही है।

ऍक्युप्रेशर व मैग्नेट थैरेपी प्रभावशाली, प्रतिप्रभाव-मुक्त तथा खर्च-रहित चिकित्सा पद्धतियाँ हैं। दोनों ही पद्धतियाँ रोग-निवारण के रूप में जितनी प्रभावशाली हैं, उतनी ही उपयोगी रोगों की रोकथाम के लिए भी वे हैं। आज के युग की आवश्यकता भी यही है। इन चिकित्सा पद्धतियों से आप न सिर्फ अपनी (या घर के लोगों की) बीमारियों का इलाज कर सकेंगे, बल्कि औरों की भी सहायता कर सकते हैं।

- ऍक्युप्रेशर कोर्स चार रविवारों का कोर्स है और इसका आयोजन हर दो महीनों में एक बार किया जाता है।
- मैग्नेट थैरेपी कोर्स सिर्फ एक दिन (रविवार) का कोर्स है और यह भी हर दो महीने में एक बार आयोजित किया जाता है।

विशेष सूचना : बम्बई से बाहर रहनेवाले लोग ये कोर्स पत्र-व्यवहार द्वारा भी पूरे कर सकते हैं।

डॉ. धीरेन गाला, B. Sc., DHMS, D. Ac., D. O., CGO, CCH, ARSH.,

२/२४, विजय चैम्बर्स, ड्रीमलैंड सिनेमा के सामने, पदमजी मार्ग, बम्बई-४०० ००४।

फोन : ३८६ ७२ ७५

समय : सुबह ९ से १२ बजे; संध्या ४ से ७ बजे।



१. मॅग्नेटिक चश्मा



२. मॅग्नेटिक ब्लड प्रेशर पट्टा



रोग-निवारण की वैकल्पिक पद्धतियों में लोहचुंबक चिकित्सा का स्थान ऊँचा है। लोहचुंबकों की रोग-निवारक शक्ति के प्रमाण विश्व की असंख्य प्रयोगशालाओं से मिलते जा रहे हैं। औषधियों से निराश अथवा उनके प्रतिप्रभावों से भयभीत अनेक लोग लोहचुंबक चिकित्सा की ओर मुड़ रहे हैं।

१. लोहचुंबकीय चश्मा : आँखों और दृष्टि को कार्यक्षम रखने में तथा नेत्ररोगों की रोक-थाम में लोहचुंबक चिकित्सा को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। नेत्र-चिकित्सा के लिए योग्य शक्तिवाले लोहचुंबक अब अत्यंत सुविधापूर्ण चश्मा के स्वरूप में उपलब्ध हैं।

१५-१५ मिनट तक, दिन में दो बार इस चश्मे का उपयोग करें।

मूल्य : रु. ६०.०० (डाक-खर्च : रु. १२.०० अतिरिक्त)

२. लोहचुंबकीय ब्लड प्रेशर पट्टा : रक्तचाप को नियंत्रण में रखने के लिए भी लोहचुंबक चिकित्सा उपयोगी मालूम हुई है। जापान में हुए प्रयोगों द्वारा ऐसा सिद्ध हुआ है कि उच्च रक्तचाप से पीड़ित लोगों में ६० प्रतिशत लोगों को लोहचुंबक चिकित्सा से लाभ होता है। उच्च रक्तचाप की चिकित्सा के लिए उचित शक्तिवाले लोहचुंबक अब अत्यंत सुविधापूर्ण कलाई-पट्टे के स्वरूप में उपलब्ध हैं।

यह पट्टा दाईं कलाई पर (जहाँ नाड़ी-परीक्षा की जाती है उसी स्थान पर) लगातार पहने रखें

मूल्य : रु. ३५.०० (डाक-खर्च : रु. १२.०० अतिरिक्त)

प्राप्ति-स्थान :

डॉ. गाला

२/२४, विजय चैम्बर्स,
ड्रीमलैण्ड सिनेमा के सामने, पदमजी मार्ग,
बम्बई-४०० ००४।

फोन : ३८६ ७२ ७५

नवनीत पब्लिकेशन्स (इं) लि.

नवनीत हाउस
गुरुकुल रोड, मेमनगर,
अहमदाबाद-३८० ०५२।

फोन : ४५ ३९ ९५/४९ २८ ०६



गाला की आरोग्यविषयक श्रेष्ठ पुस्तकें

१. डायबिटीस, हाई ब्लड प्रेशर दूर रखिए जीवनभर
२. हृदयरोग को रोकिए, आयुष्य बढ़ाइए
३. लोहचुंबक चिकित्सा के द्वारा स्वयं ही अपने डॉक्टर बनें
४. एक्जुप्रेशर के द्वारा आप ही अपने डॉक्टर
५. स्वास्थ्य की सही दिशा : प्राकृतिक चिकित्सा
६. चरबी घटाइए, चुस्ती बढ़ाइए
७. सहज-सुलभ संजीवनी : स्वमूत्र
८. नेत्ररक्षा
९. रसाहार के द्वारा तन्दुस्ती और रोगमुक्ति
१०. उपवास की सफलता
११. पृथ्वी की संजीवनी : गेहूँ के जवारे
१२. स्वयं स्वस्थ रहने की कला
१३. आहार ही औषधि है
१४. १०० वर्ष निरोगी रहिए
१५. योगासन-प्राणायाम कीजिए और निरोगी रहिए
१६. आपका आरोग्य आपके हाथ में
१७. सगर्भविस्था और आपका बालक
१८. तुलसी
१९. रोग के अधीन रहोगे या रोग को अधीन करोगे ?

ये पुस्तकें अंग्रेजी, मराठी और गुजराती भाषा में भी सभी पुस्तक-विक्रेता के पास से मिल सकती हैं।

‘चरबी घटाइए, चुस्ती बढ़ाइए’; ‘हृदयरोग को रोकिए, आयुष्य बढ़ाइए’;
‘ऐक्युप्रेसर’ इत्यादि लोकप्रिय पुस्तकों के लेखकों की ओर से

एक नई उपयोगी पुस्तक

स्वास्थ्य की सही दिशा प्राकृतिक चिकित्सा

क्या आपका पेट साफ रहता है?
क्या आपको जमकर भूख लगती है?
क्या आपको गहरी नींद आ जाती है?
क्या आपको काम करने में उत्साह रहता है?
क्या आप दिनभर स्फूर्ति का अनुभव करते हैं?
क्या आप कुटुंबीजनों से मधुरतापूर्वक व्यवहार करते हैं?
क्या आपकी आँखों में और चेहरे पर तेज झलकता है?
क्या आपके सीने का घेरा पेट के घेरे से अधिक है?
क्या बीमार न पड़ने के नियमों के विषय में आपको ज्ञान है?
आपके साथी जब सर्दी या फ्लू जैसी बीमारियों के शिकार हों,
उस समय भी क्या आप निरोगी रहते हैं?

यदि उपर्युक्त तमाम प्रश्नों के उत्तर ‘हाँ’ में ही आते हों,
तो आप तंदुरुस्त हैं और आपको इस पुस्तक की आवश्यकता नहीं है।

यदि आपको जीभ के चटखारे जान से भी ज्यादा प्यारे हों
दवाएँ आपको अत्यंत रुचिकर लगती हों
दवाएँ सभी रोग मिटा देंगी ऐसा आपको विश्वास हो
अपने रोग का रोना रोने में आपको मजा आता हो
बीमारी के कारण प्राप्त फुरसत और हमदर्दी आपको बहुत प्रिय हो
बीमारियों का जोखिम सर पर लेकर घूमने में आपकी साहसवृत्ति संतुष्ट होती हो
आप बुढ़ापे की आतुरता से राह देखते हों

◆ तो यह पुस्तक आप न पढ़ें ◆